संसदीय प्रक्रिया

डॉ. सुभाष काश्यप की कुछ रचनाएँ

हिन्दी में

मूल रचनाएँ

हमारी ससद, ससदीय प्रक्रिया, भारतीय सरकार एवं राजनीति, भारतीय राजनीति के नए मोड-दल बदल और राज्यों की राजनीति, राजनीतिकोश, जवाहरलाल नेहरू और भारत का सविधान, सविधान की आत्मा, सविधान की कहानी, सवैधानिक विकास और स्वाधीनता सघर्ष, स्वाधीनता सघर्ष, स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास (1857–1947)

सम्पादित

भारतीय राजनीति और राजनीतिक दल, भारत मे निर्वाचन, भारत का सविधान—नई चुनौतियाँ, नये उत्तर, राष्ट्रमण्डल की ससदें, नेहरू और ससद, लोकतन्त्र समीक्षा—त्रैमासिक (1969–1973), ससदीय पत्रिका—त्रैमासिक (1984–), प्रभात—मासिक (1947–48), परिवर्तन—दैनिक (1947)

In English

Original Works

Our Parliament, History of the Freedom Movement (1857-1947), The Political System and Institution Building under Jawaharlal Nehru, Parliament of India — Myths and Realities, Parliamentary Practice and Procedure with Kaul & Shakdher, Jawaharlal Nehru, the Constitution and the Parliament, Human Rights and Parliament, The Ministers and the Legislators, The Politics of Defection, The Politics of Power, The Unknown Nietzsche, Tryst with Freedom, The Framing of India's Constitution—A Study (with Shiva Rao Committee), Govind Ballabh Pant—Parliamentarian, Statesman and Administrator

Edited

Nehru and Parliament, Parliaments of the Commonwealth, Union State Relations in India, The Union and the States, The Framing of India's Constitution—Select Documents in 4 Volumes (with the Shiva Rao Committee), Elections and Electoral Reforms in India, Parliamentary Committees in India, Indian Political Parties, Bangladesh, Indian Parties and Politics, Journal of Constitutional and Parliamentary Studies - quarterly (1967–1973), Journal of Parliamentary Information-quarterly (1984–)

संसदीय प्रक्रिया

लेखक
डॉ० सुभाष कश्यप



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रथम संस्करण : 1991

मूल्य : **37.00 रुपये मात्र**

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए–26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर
जयपुर-302 004

मुद्रक :
झूलेलाल प्रिण्टर्स
जयपुर

मानव संसाधन विकास मन्त्रालय भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित ।

प्रकाशकीय भूमिका

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी अपनी स्थापना के 22 वर्ष पूरे करके 15 जुलाई, 1991 को 23वें वर्ष में प्रवेश कर चुकी है। इस अवधि में विश्व साहित्य के विभिन्न विषयों के उत्कृष्ट ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद तथा विश्वविद्यालय के शैक्षणिक स्तर के मौलिक ग्रन्थों को हिन्दी में प्रकाशित कर अकादमी ने हिन्दी जगत के शिक्षकों, छात्रों एवं अन्य पाठकों की सेवा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी में शिक्षण के मार्ग को सुगम बनाया है।

अकादमी की नीति हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन करने की रही है जो विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के अनुकूल हों। विश्व-विद्यालय स्तर के ऐसे उत्कृष्ट मानक ग्रन्थ जो उपयोगी होते हुए भी पुस्तक प्रकाशन की व्यावसायिकता की दौड़ में अपना समुचित स्थान नहीं पा सकते हों, और ऐसे ग्रन्थ भी जो अंग्रेजी की प्रतियोगिता के सामने टिक नहीं पाते हों, अकादमी प्रकाशित करती है। इस प्रकार अकादमी ज्ञान-विज्ञान के हर विषय में उन दुर्लभ मानक ग्रन्थों को प्रकाशित करती रही है और करेगी जिनको पाकर हिन्दी के पाठक लाभान्वित ही नहीं, गौरवान्वित भी हो सकें। हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि अकादमी ने 350 से भी अधिक ऐसे दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन किया है जिनमें से एकाधिक केन्द्र, राज्यों के बोर्डों एवं अन्य संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं तथा अनेक विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा अनुशंसित।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को अपने स्थापना काल से ही भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त होता रहा है तथा राजस्थान सरकार ने इसके विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अतः अकादमी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में दोनों सरकारों की भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

स्वतन्त्रता के बाद भारत में स्वेच्छा से संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है। यह नितान्त आवश्यक है कि देश के समस्त नागरिक संसदीय प्रक्रिया के बारे में पूर्ण जानकारी रखें। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में इस महत्त्वपूर्ण विषय के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था नहीं है। सच तो यह है कि इस विषय पर जानकारी और पठन सामग्री की भारी कमी है। इसी कमी को पूरा करने हेतु विद्वान लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में संसदीय प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण आयामों पर बहुत ही सरल और रोचक भाषा में प्रकाश डाला है।

हम पुस्तक के विद्वान लेखक डॉ. सुभाष काश्यप, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त सहयोग हेतु आभारी हैं।

भैरोंसिंह शेखावत	डॉ. वेद प्रकाश
मुख्यमन्त्री, राजस्थान सरकार एवं	सहायक निदेशक
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर	जयपुर

आमुख

भारत में हमने अपनी स्वेच्छा से संसदीय व्यवस्था को स्वीकारा—अपनाया है। हम भारत के लोग, अपने जीवन का क्षण क्षण संसदीय शासन प्रणाली की सरकार के अधीन रहकर बिताते हैं। किन्तु, आश्चर्य और दुर्भाग्य का विषय है कि संसदीय प्रक्रिया के बारे में आवश्यक जानकारी जन-साधारण को देने की कोई समुचित व्यवस्था आज तक नहीं हो पाई है। स्कूल, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों तक में इस महत्त्वपूर्ण विषय के अध्ययन-अध्यापन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। हमारे पाठ्यक्रमों में इस विषय की पूर्ण अवहेलना की जाती है। सच तो यह है कि इस विषय पर जानकारी और पठन सामग्री की भी भारी कमी है। इसी कमी को पूरा करने की दिशा में प्रस्तुत पुस्तक एक विनीत प्रयास है।

क्योंकि पुस्तक स्नातकोत्तर स्तर के पाठकों के लिए भी है, इसके अन्त में "लोकसभा का विघटन" और "दल सचेतक" संसदीय विशेषाधिकार और दल-परिवर्तन विरोधी कानून" शीर्षक दो विशेष लेख जोड़े जा रहे हैं जो उन समस्याओं के उदाहरण हैं जो संसदीय प्रक्रिया के क्षेत्र में समय-समय पर उठती रहती हैं और जिनको सुलझाना होता है। साथ ही यह ध्यान रखते हुए कि "संसदीय प्रक्रिया" नितान्त शुष्क और बोझिल न लगे, दो रोचक लेख "संसद और हास्य विनोद" तथा "लोक सभा में कविता और शेर ओ-शायरी"—भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

आशा है पाठकों को पुस्तक उपयोगी, रुचिकर और पठनीय लगेगी और जन-साधारण, सचेत नागरिक और जिज्ञासु विद्यार्थीगण इसका स्वागत करेंगे।

मैं राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी का विशेष रूप से आभारी हूँ क्योंकि यह पुस्तक उन्हीं के आग्रह का परिणाम है।

—सुभाष काश्यप

33 औरंगजेब रोड,
नई दिल्ली।

अनुक्रम

संसदीय व्यवस्था अन्य तंत्रों की अपेक्षा अधिक सुसभ्य और सुसंस्कृत है क्योंकि इसमें लोग संसद् में मिल-बैठ कर बातचीत के द्वारा अपने मतभेदों का हल खोजने का प्रयास करते हैं तथा राजनीतिक शक्ति के लिए सतत् संघर्ष भी या तो आम चुनावों में मतपेटियों के माध्यम से होता है या फिर संसद् के सदनों में वाद-विवाद के द्वारा। संसदीय व्यवस्था का मूलमन्त्र यही है कि स्वतंत्र चर्चा हो। हर राष्ट्रीय महत्त्व के मामले पर खुले आम बहस हो, आलोचना की पूरी छूट हो और विभिन्न मतों में टकराव, सभी पक्षों द्वारा आपसी बातचीत और वाद-विवाद के बाद देश हित में निर्णय लिये जायें।

संसद् की संरचना

संविधान के अनुसार भारत गणराज्य (Republic of India) के संघीय विधान मण्डल (Union Legislature) को संसद् (Parliament) कहा जाता है। संविधान के संसद् सम्बन्धी अध्याय 2 में अनुच्छेद (Article) 79 स्पष्ट रूप से कहता है कि संघ के लिए एक संसद् होगी जो राष्ट्रपति (President) और दो सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम राज्य सभा (Council of States) और लोक सभा (House of the people) होंगे।

राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा = संसद्

राष्ट्रपति यह ध्यान देने की बात है कि राष्ट्रपति संसद् का उसी प्रकार अनिवार्य अंग है जैसे संसद् के दो सदन। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचन मण्डल (Electoral college) द्वारा किया जाता है। संसद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य मिलकर निर्वाचन मण्डल का निर्माण करते हैं। राष्ट्रपति संसद् के किसी भी सदन में न तो बैठता है न उनकी चर्चाओं में भाग लेता है, तथापि संसद् से संबंधित कुछ ऐसे सांविधानिक कृत्य हैं जिनका उसे समय-समय पर निर्वहन करना होता है। यह ध्यान रखने की बात है कि राष्ट्रपति प्रायः अपने सभी कृत्यों का निर्वहन प्रधानमंत्री अथवा मंत्री परिषद् के परामर्श से ही करता है। वह समय-समय पर संसद् के दोनों सदनों की बैठक के लिये ऐसे समय और स्थान पर जो वह उचित समझे, आमंत्रित (Summon) करता है। सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिये नियत तारीख के बीच छः मास से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। राष्ट्रपति दोनों सदनों का समय-समय पर सत्रावसान (Prorogation of the session) करता है और लोक सभा को उसका नियत कार्यकाल (Prescribed term) समाप्त होने से पूर्व भी भंग (Dissolve) कर सकता है। किसी भी विधेयक (bill) को कानून अथवा विधि (Act) बनने के लिए दोनों सदनों के द्वारा पारित हो जाने के बाद राष्ट्रपति की अनुमति (Assent) प्राप्त होना जरूरी है। जब संसद् के दोनों सदन अधिवेशन (Session) में न हों और ऐसी स्थिति पैदा हो

जाये जिसमें राष्ट्रपति की राय में तुरन्त कुछ कार्यवाही किया जाना जरूरी हो तो राष्ट्रपति अध्यादेश (Ordinance) द्वारा अस्थायी कानून बना सकता है। इन कानूनों की शक्ति और प्रभाव वही होता है जो संसद् द्वारा पारित विधि का होता है। किन्तु इन अध्यादेशों के स्थायी कानून का रूप पाने के लिए संसद् का अनुमोदन और उनका साधारण संसदीय प्रक्रिया (Parliamentary procedure) के द्वारा विधि के रूप में पारित किया जाना आवश्यक है।

लोक सभा के लिए प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् प्रथम अधिवेशन के प्रारम्भ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम अधिवेशन के प्रारम्भ में, राष्ट्रपति एक साथ समवेत संसद् के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करता है और सदनों की बैठक के लिए आमंत्रित करने के कारणों (Causes of summons) की संसद् को सूचना देता है। इसके अतिरिक्त, वह संसद् के किसी एक सदन के समक्ष अथवा एक साथ समवेत दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण कर सकता है और इस प्रयोजन के लिए सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकता है। उसे संसद् में उस समय लम्बित किसी विधेयक संबंधी संदेश (Message) या कोई अन्य संदेश किसी भी सदन को भेजने का अधिकार है और जिस सदन को कोई संदेश इस प्रकार भेजा गया हो वह सदन उस संदेश द्वारा जिस विषय पर विचार करना अपेक्षित हो उस पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करता है। कुछ प्रकार के विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश प्राप्त करने के पश्चात् ही पेश किए जा सकते हैं और उन पर आगे कार्यवाही की जा सकती है।

संसद् के दोनों सदनों के प्रत्येक सदस्य को सदन में अपना स्थान ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के सामने शपथ (Oath) लेनी पड़ती है अथवा प्रतिज्ञान (Solemn affirmation) करना पड़ता है।

संविधान के अनुसार संसद् संबंधी कुछ अन्य कृत्य भी हैं जिनका निर्वहन राष्ट्रपति में अपेक्षित है। जब कभी आवश्यक हो वह लोक सभा का अस्थाई अध्यक्ष (Speaker pro-tem) और राज्य सभा का कार्यकारी सभापति (Acting chairman) नियुक्त करता है। किसी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति होने की स्थिति में वह उनकी संयुक्त बैठक (Joint-sitting) बुलाता है। राष्ट्रपति प्रत्येक वर्ष सरकार का बजट, जिसे संविधान में 'वार्षिक वित्तीय विवरण' (Annual financial statement) कहा गया है, और भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor-General), वित्त आयोग (Finance Commission), संघ लोक सेवा आयोग (Union public Service Commission), अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी (Special Officer for Scheduled Castes and Scheduled Tribes) तथा पिछड़े वर्ग आयोग (Backward Classes Commission), जैसे संवैधानिक प्राधिकरणों (Constitutional functionaries) के कुछ अन्य प्रतिवेदन (Reports) संसद् के

समक्ष रखवाता है। यदि उसकी राय हो कि आंग्ल-भारतीय समुदाय (Anglo-Indian Community) का लोक सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह सदन के लिए उस समुदाय के दो से अनधिक सदस्य मनोनीत कर सकता है। राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा जैसे मामलों के विषय में विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से 12 सदस्य राज्य सभा के लिए भी मनोनीत करता है। इसके अतिरिक्त, उसे निर्वाचन आयोग (Election Commission) की राय प्राप्त करने के पश्चात् फैसला करने की शक्ति प्राप्त है कि क्या विधिवत् निर्वाचित कोई सदस्य संविधान के अनुच्छेद 108 में निर्धारित अनर्हताओं (Disqualifications) से ग्रस्त होता है अथवा नहीं। इस विषय में उसका फैसला अन्तिम होता है। राष्ट्रपति अपने पद का कार्यभार संभालने की तिथि से पांच वर्ष तक अपने पद पर रहता है। कार्यकाल समाप्त होने से पहले कभी भी उपराष्ट्रपति के नाम पत्र लिखकर पद त्याग कर सकता है। ऐसे पदत्याग की सूचना तुरन्त लोक सभा अध्यक्ष को दिया जाना होता है। राष्ट्रपति को उसका कार्यकाल समाप्त होने से पहले महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया के द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। महाभियोग संविधान का उल्लंघन करने पर चलाया जा सकता है और उसके लिए संसद् के किसी एक सदन में दो-तिहाई बहुमत से दोषारोपण का प्रस्ताव संकल्प द्वारा किया जाना चाहिये तथा दूसरे सदन द्वारा अनुसंधान के पश्चात् दो-तिहाई बहुमत से ही यह संकल्प पास होना चाहिये कि राष्ट्रपति पर लगाया गया दोष सिद्ध हो गया है।

राज्य सभा राज्य सभा (Council of States) राज्यों की परिषद् है। संविधान के अनुसार राज्य सभा में 250 तक सदस्य हो सकते हैं जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत (Nominated by the president) होते हैं और शेष 238 राज्यों (States) और संघ राज्य क्षेत्रों (Union Territories) द्वारा चुने हुए। राज्य सभा के चुने गये सदस्य राज्य विधान सभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Proportional Representation System) के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) से निर्वाचित किये जाते हैं। राज्य सभा का सदस्य चुने जाने के लिए 30 वर्ष का न्यूनतम आयु का प्रावधान है।

संघ के विभिन्न राज्यों को राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। भारत में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या ज्यादातर उसकी जनसंख्या पर निर्भर करती है। इस प्रकार, जबकि राज्य सभा में उत्तर प्रदेश के 34 सदस्य हैं, मणिपुर, मिजोरम, सिक्किम, त्रिपुरा आदि जैसे अपेक्षतया छोटे राज्यों का केवल एक-एक सदस्य है। अन्दमान तथा निकोबार द्वीप समूह, चण्डीगढ़, दादरा तथा नागर हवेली, दमन तथा दीव और लक्षद्वीप जैसे कुछ संघ राज्य क्षेत्रों की जनसंख्या इतनी कम है कि राज्य सभा में उनका प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता।

इस समय में राज्य सभा में कुल सदस्य 245 है। इन स्थानों का वितरण निम्न प्रकार है:

राज्य

1 आंध्र प्रदेश	18		14. मणिपुर	1
2 अरुणाचल प्रदेश	1		15 मेघालय	1
3 असम	7		16 मिजोरम	1
4 बिहार	22		17 नागालैंड	1
5 गोआ	1		18 उड़ीसा	10
6 गुजरात	11		19 पंजाब	7
7. हरियाणा	5		20 राजस्थान	10
8 हिमाचल प्रदेश	3		21. सिक्किम	1
9 जम्मू तथा कश्मीर	4		22. तमिलनाडु	18
10 कर्नाटक	12		23 त्रिपुरा	1
11 केरल	9		24. उत्तर प्रदेश	34
12 मध्य प्रदेश	16		25 पश्चिम बंगाल	16
13 महाराष्ट्र	19			

संघ राज्य क्षेत्र

26 दिल्ली	3		27 पांडिचेरी	1
मनोनीत	12			

राज्य सभा एक स्थायी निकाय है और उसे भंग नहीं किया जा सकता। इसका विघटन (Dissolution) नहीं हो सकता। राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य की कार्यावधि छ वर्षों की है, उसके सदस्यों में से यथासम्भव एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाते हैं। सदस्यों की पदावधि उस तिथि से प्रारम्भ हो जाती है जब भारत सरकार द्वारा सदस्यों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाते है। उपराष्ट्रपति जो संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है, राज्य सभा का पदेन (Ex-officio) सभापति होता है, जबकि उपसभापति पद के लिए राज्य सभा के सदस्यों द्वारा अपने में से किसी सदस्य को निर्वाचित किया जाता है।

लोक सभा . लोक सभा (House of the People) आम लोगों का, जनता का सदन है। यह सदन सार्वभौम वयस्क मताधिकार (Universal adult franchise) के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct election) से चुने गये प्रतिनिधियों से बनता है। वयस्क मताधिकार के लिये आयु जो अब तक 21 वर्ष थी अब घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है अर्थात् अब कोई भी भारतीय नागरिक नारी अथवा पुरुष 18 वर्ष का होते ही लोक सभा के सदस्यों के निर्वाचन में मतदान का अधिकारी हो जाता है। लोक सभा के निर्वाचन में उम्मीदवार बनने के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष रखी गई है। लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552

हो सकती है। संविधान के अनुसार लोक सभा के 530 से अनधिक सदस्य राज्यो मे प्रदेशिक निर्वाचन क्षेत्रो से प्रत्यक्ष रीति से चुने जाएँगे और 20 से अनधिक सदस्य संघ राज्य क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व करेंगे जिनका निर्वाचन ऐसी रीति से होगा जैसे संसद् विधि द्वारा उपबन्ध करे। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो से अनधिक सदस्य मनोनीत कर सकता है। निर्वाचित किए जाने वाले सदस्यो की कुल संख्या को राज्यो के बीच ऐसी रीति से वितरित किया जाता है जिसमे कि प्रत्येक राज्य के लिए आवंटित स्थानों की संख्या और राज्य की जनसंख्या के बीच यथासम्भव ऐसा अनुपात रहे जो सब राज्यो के लिए समान हो। इसी प्रकार प्रत्येक राज्य को चुनाव क्षेत्रो मे इस प्रकार बांटा गया है कि प्रत्येक चुनाव क्षेत्र को दिये गये स्थानो और उसकी जनसंख्या का अनुपात जहां तक सम्भव हो एक जैसा रहे।

इस समय लोक सभा की सदस्य संख्या तथा राज्यों एव संघ राज्य क्षेत्रो के लिए उसमे नियत किए गए स्थान निम्न प्रकार हैं—

राज्य	स्थान संख्या	राज्य	स्थान संख्या
1 आंध्र प्रदेश	42	14 मणिपुर	2
2 अरुणाचल प्रदेश	2	15 मेघालय	2
3 असम	14	16 मिजोरम	1
4. बिहार	54	17. नागालैंड	1
5. गोआ	2	18 उड़ीसा	21
6 गुजरात	26	19. पंजाब	13
7. हरियाणा	10	20 राजस्थान	25
8. हिमाचल प्रदेश	4	21. सिक्किम	1
9 जम्मू तथा कश्मीर	6	22. तमिलनाडु	39
10 कर्नाटक	28	23. त्रिपुरा	2
11. केरल	20	24. उत्तर प्रदेश	85
12. मध्य प्रदेश	40	25. पश्चिम बंगाल	42
13. महाराष्ट्र	48		

संघ राज्य क्षेत्र	स्थान संख्या
1. अन्दमान निकोबार द्वीप समूह	1
2. चण्डीगढ	1
3. दादर तथा नागर हवेली	1
4. दिल्ली	7
5. दमन तथा दीव	1
6. लक्षद्वीप	1
7. पांडिचेरी	1

मनोनीत

(आंग्ल-भारतीय) 2

लोक सभा की कार्यावधि संविधान ने निर्धारित कर दी है क्योंकि लोकतन्त्र में यह नितान्त आवश्यक है कि देश की सर्वोच्च प्रतिनिधिक संस्था समय-समय पर जनादेश (People's mandate) प्राप्त करती रहे। लोक सभा की कार्यावधि उसकी प्रथम बैठक के लिए नियत तिथि से पांच वर्षों की है। पांच वर्षों की अवधि समाप्त हो जाने पर सदन स्वतः भंग हो जाता है। *कुछ परिस्थितियों में* सदन की पूर्ण कार्यावधि समाप्त होने से पूर्व ही इसे भंग किया जा सकता है। जब आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तब संसद् लोक सभा की कार्यावधि ऐसी अवधि के लिए बढ़ा सकती है जो एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं हो और उद्घोषणा के प्रवृत्त न रहने के पश्चात् किसी भी दशा में उसकी कार्यावधि छह मास से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती।

लोक-सभा—राज्य सभा हमारी सांविधानिक योजना में जिन दो सदनों का प्रावधान है उनमें से किसी को भी *निम्न सदन (Lower House)* और उच्च सदन *(Upper House)* प्रथम सदन *(First Chamber)* और द्वितीय सदन *(Second Chamber)* अथवा प्रारम्भिक सदन (Primary Chamber) और पुनरीक्षक सदन (Revising Chamber) कहना उचित नहीं होगा। भारतीय संसदीय व्यवस्था में संसद् के दोनों सदन स्थान, अधिकार, सम्मान और शक्ति के मामले में समान हैं। कुछ मामले जैसे वित्तीय *(Financial)* और मंत्रीपरिषद् के उत्तरदायित्व (Ministerial responsibility) संबंधित मामले लगभग पूर्णतया लोक सभा के अधिकार क्षेत्र में हैं तो कुछ ऐसे भी विषय हैं जिनमें भारतीय संघ के राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाली सभा होने के कारण *राज्य सभा* को कुछ *विशेष शक्तियां प्रदान* की गई हैं जो लोक सभा को नहीं दी गई जैसे अखिल भारतीय सेवा (All India Services) का सृजन और राज्य सूची (State List) में वर्णित किसी विषय पर राष्ट्रहित में संसद् द्वारा विधान बनाने सम्बन्धी संकल्प (Resolution) जिन पर केवल *राज्य सभा का ही अधिकार है*। क्योंकि संविधान के प्रावधानों (Provisions of the Constitution) के अन्तर्गत मंत्री परिषद् केवल प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित (Directly elected) लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है, मंत्रीपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव *(Motion of no-confidence)* अथवा वैसा कुछ प्रभाव रखने वाले प्रस्ताव जैसे स्थगन प्रस्ताव (Adjournment motion) राज्य सभा में नहीं रखे जा सकते। लोक सभा में जनता का सीधा प्रतिनिधित्व होने के कारण हमारे संविधान के अनुसार संसद् का विश्वास प्राप्त होने का अर्थ लोक सभा का विश्वास प्राप्त होना और कार्यपालिका के उत्तरदायित्व का अर्थ लोक सभा के प्रति उत्तरदायित्व माना गया है। इसी प्रकार क्योंकि सिद्धांततः कर लगाने (Taxation) की तथा जनराशि

(Public funds) में से खर्च करने की अनुमति देने का अधिकार केवल जनता के सीधे चुने हुए प्रतिनिधियों को ही प्राप्त है कोई धन विधेयक (Money Bill) राज्य-सभा में पेश नहीं किया जा सकता। किसी धन विधेयक को अस्वीकृत करने अथवा उसमें संशोधन करने का राज्य सभा को अधिकार नहीं है किसी भी धन विधेयक के सिलसिले में राज्य सभा केवल सिफारिश अथवा संस्तुति (Recommendation) कर सकती है। यदि कोई धन विधेयक जिसे लोक सभा ने पास करके राज्य सभा को भेजा हो, चौदह दिन की अवधि के भीतर लोक सभा को लौटाया नहीं जाता तो उसे यह अवधि समाप्त होते ही लोक सभा द्वारा पारित रूप में ही दोनों सदनों द्वारा पारित किया माना जाएगा। कोई विधेयक विशेष धन विधेयक है अथवा नहीं, इस विषय में लोक सभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम और सर्वमान्य होगा। यद्यपि राज्य सभा को अनुदानों की मांगों (Demands for grants) को अस्वीकृत करने का अधिकार नहीं है, वह बजट अथवा वार्षिक वित्तीय विवरण (Budget or Annual Financial Statement) पर पूरी बहस कर सकती है।

इन सबके बावजूद ऐसा नहीं है कि लोक सभा की तुलना में राज्य सभा का महत्त्व किसी प्रकार कम हो अथवा इसे द्वितीय स्थान दिया गया हो। जहाँ तक *विधेयक (Legislation) का सम्बन्ध है, धन विधेयकों को छोड़कर अन्य सब प्रकार* के विधेयकों के मामले में राज्य सभा की शक्तियाँ लोक सभा के बराबर हैं। धन विधेयकों को छोड़कर, कोई भी विधेयक लोक सभा अथवा राज्य सभा किसी भी *सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। कोई भी गैर-वित्तीय विधेयक अधिनियम बनने* से पूर्व दोनों में से प्रत्येक सदन द्वारा पास किया जाना आवश्यक है। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने, उपराष्ट्रपति को हटाने, संविधान में संशोधन करने और उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने जैसे महत्त्वपूर्ण मामलों में राज्य सभा को लोक सभा के समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। राष्ट्रपति के अध्यादेशों, आपात की उद्घोषणा और किसी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था के विफल हो जाने की उद्घोषणा को संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखना अनिवार्य है। किसी धन विधेयक और संविधान संशोधन विधेयक को छोड़कर अन्य किसी भी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति को दोनों सदनों द्वारा संयुक्त बैठक में दूर किया जाता है जिसमें मामले बहुमत द्वारा तय किए जाते हैं। दोनों सदनों की ऐसी संयुक्त बैठक का पीठासीन अधिकारी लोक सभा का अध्यक्ष होता है इसके अतिरिक्त, संविधान के अधीन राज्य सभा को कुछ विशेष शक्तियाँ सौंपी गई हैं। यह घोषणा करने की शक्ति केवल राज्य सभा को प्राप्त है कि संसद् के लिए राज्य सूची में वर्णित किसी विषय के सम्बन्ध में विधान बनाना राष्ट्रीय हित में होगा। यदि राज्य सभा इस आशय का संकल्प दो तिहाई बहुमत से पास कर देती है तो संघीय संसद् "राज्य सूची" में वर्णित किसी विषय के संबंध में भी सम्पूर्ण देश के लिए अथवा देश के किसी भाग के लिए विधान बना सकती है। इसके अतिरिक्त, यदि राज्य सभा उप-

स्थित और मतदान करने वाले सदस्यों में से कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषणा करती है कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो संविधान के अधीन संसद् को, विधि द्वारा, संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए उपबन्ध करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है ।

संसद के दोनों सदनों के बीच सम्बन्ध आवश्यक हैं । ऐसे बहुत से अवसर आते हैं जब दोनों सदनों को एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करना होता है । ऐसा प्राय एक सदन द्वारा दूसरे को लिखित संदेश भेज कर किया जाता है । लिखित संदेश एक सदन में पास हुए विधेयक को दूसरे सदन में भेजने के लिए अथवा प्रस्ताव तथा संकल्प पास करके दूसरे की जानकारी के लिए अथवा सहमति प्राप्त करने के लिए भेजे जाते हैं । सम्पर्क के अन्य तरीके हैं संयुक्त समितियों की बैठकें अथवा दोनों सदनों की संयुक्त बैठकें ।

संसद् और सरकार

संसदीय लोकतन्त्र में संसद और सरकार का विधानपालिका (Legislature) और कार्यपालिका (Executive) का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट होता है । हमारे संविधान के अन्तर्गत जहाँ राष्ट्रपति संसद् का एक अंग है वहाँ कार्यपालिका का प्रमुख भी वही है । कार्यपालिका की सारी शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं और इनका प्रयोग वह स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा कर सकता है । इसलिये सरकार के सभी काम राष्ट्रपति के नाम से ही किये जाते हैं । किन्तु संविधान का यह भी आदेश है कि राष्ट्रपति अपने सभी कृत्यों का निर्वहन मंत्री-परिषद् की सहायता और परामर्श (Aid and advice) के द्वारा ही करे । राष्ट्रपति वस्तुतः एक औपचारिक (Formal, ceremonial), सांविधानिक (Constitutional) अथवा नाममात्र का (Nominal) प्रमुख होता है । मंत्री परिषद् ही वास्तविक कार्यपालिका होती है तथा प्रधान मंत्री उसका प्रमुख । प्रत्येक नई लोक सभा के विधिवत् निर्वाचन और गठन के पश्चात् राष्ट्रपति ऐसे दल या दलों के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है जिसे लोक सभा में आधे से अधिक सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो । इस प्रकार, प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । मंत्री राष्ट्रपति द्वारा प्रधान मंत्री की मंत्रणा से नियुक्त किए जाते हैं । राष्ट्रपति को प्रधान मंत्री नियुक्त करने में निजी इच्छा (Personal discretion) का प्रयोग करने का प्राय कोई अवसर नहीं मिलता । परन्तु यदि ऐसी स्थिति पैदा हो जाए कि किसी भी दल को लोक सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राष्ट्रपति किसी ऐसे नेता का चयन करने में स्वविवेक (Individual judgement) का प्रयोग कर सकता है जिसे, उसकी राय में, सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त होने की सम्भावना हो ।

प्रधान मंत्री आम तौर पर लोक सभा का सदस्य होता है परन्तु मंत्री संसद् के दोनों सदनों से लिए जाते है। किसी ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है जो संसद् के किसी भी सदन का सदस्य न हो परन्तु उसे छह मास के अन्दर पद छोड़ना पड़ता है यदि, इस बीच, वह दोनों में से किसी सदन के लिए निर्वाचित न हो जाए। मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। मंत्रियों का यह संवैधानिक दायित्व है कि वे लोक सभा का विश्वास खोते ही सामूहिक रूप से पद-त्याग कर दें। साथ ही, प्रत्येक मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करता है और उसके द्वारा उसे बर्खास्त किया जा सकता है। परन्तु राष्ट्रपति चूंकि प्रधान मंत्री की मंत्रणा से ही ऐसा करता है अतः यह शक्ति वास्तव में प्रधान मंत्री को प्राप्त है।

हमारे संसदीय लोकतन्त्र में कार्यपालिका और विधानपालिका का एक अटूट गठबन्धन है। उनमें किसी प्रकार के विरोध अथवा विभाजन की गुंजाइश नहीं है। संसद स्वयं शासन नहीं करती और न कर ही सकती है। अतः संसद् द्वारा यह उत्तर-दायित्व मंत्रिपरिषद को सौंपा जाता है। लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के संसदीय रूप की यह विशेषता है कि शासन संसद के बीच होता है। मंत्रिपरिषद संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के द्वारा निर्मित होती है। वह संसद् से निकलती है और संसद् में ही रहती है। वस्तुतः मंत्रिपरिषद् संसद् का एक अंग मात्र है, संसद् से बाहर कोई पृथक् शक्ति केन्द्र नहीं तथापि, संसद और कार्यपालिका के कृत्यों और भूमिकाओं में अन्तर है। संसद् का काम है—जनता के कल्याण तथा देश में अच्छा शासन कायम करने के लिए विधान बनाना (Law-making) नीति निर्धारण (Policy formulation), शासन पर संसदीय निगरानी रखना (Parliamentary surveillance over administration), राजनैतिक और वित्तीय नियंत्रण (Political and financial control), जनता का प्रतिनिधित्व करना तथा उनकी शिकायतों को अभिव्यक्त करना और दूर करना (Representational and grievance ventilation and redressal)। दूसरी ओर कार्यपालिका का काम है संसद् द्वारा बनाई विधियों और नीतियों को लागू करना और शासन चलाना। यदि कार्यपालिका को विधायी और वित्तीय प्रस्ताव तैयार करने और उन्हें संसद के समक्ष रखने तथा स्वीकृत नीतियों को, संसद द्वारा किसी भी प्रकार की अड़चन पैदा किए बिना, कार्य रूप देने का लगभग असीमित अधिकार प्राप्त है तो संसद् को सूचना प्राप्त करने, चर्चा करने, छानबीन करने और कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों पर जन-प्रतिनिधियों की स्वीकृति की मुहर लगाने की असीम शक्ति प्राप्त है।

संसद सदस्यों को कई ऐसे तरीके उपलब्ध हैं जिनके द्वारा वे कार्यपालिका से जानकारी मांग सकते है और मंत्रियों तथा प्रशासन को लगातार चौकन्ना रख सकते हैं। सरकार को संसद् में अपने प्रत्येक कार्य की सफाई पेश करनी होती है। विभिन्न क्षेत्रों में सरकार की नीतियों तथा कृत्यों की सदस्य समय-समय पर व्यापक

समीक्षा और आलोचना कर सकते है। विपक्ष द्वारा की गई आलोचनाओ और सरकार द्वारा की गई सफाईयो से साफ पता चल जाता है कि देश के सामने आई समस्याओं के प्रति विभिन्न पक्षो के क्या विचार है अथवा क्या वैकल्पिक नीतियाँ या रास्ते सम्भव है। ससद नियत समय पर वार्षिक बजट पर विचार करती है और स्वीकृति प्रदान करती है। इस स्वीकृति के बिना न तो सरकार कोई कर वसूल कर सकती है और न ही सरकारी कोष से कोई पैसा खर्च कर सकती है। समय-समय ससद महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ और परिवर्तनों, देश की विदेश नीति और अविलम्बनीय लोक महत्त्व के अन्य मामलो पर भी चर्चा करती है। खास मामलो में मंत्रिपरिषद् की उसकी भूलो के लिए लोक सभा में निन्दा की जा सकती है अथवा उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रखा जा सकता है।

ससद् और न्यायपालिका

ससद् और सरकार अथवा विधानपालिका और कार्यपालिका के साथ-साथ राज्य का तीसरा प्रमुख अग है न्यायपालिका (Judiciary) उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) और उच्च न्यायालय (High Courts) मिलकर देश की न्यायपालिका का निर्माण करते हैं। उच्चतम न्यायालय को न्यायिक व्यवस्था मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। वह देश का उच्चतम न्यायाधिकरण है। ससद् को न्यायालयो के गठन, सगठन, अधिकार क्षेत्र एव शक्तिया विनियमित करने वाले विधान बनाने की शक्ति प्राप्त है। भारत का उच्चतम न्यायालय मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशो से मिलकर बनता है। सविधान मे पहले यह निर्धारित था कि मुख्य न्यायाधीश के अलावा न्यायाधीशों की सख्या सात से अधिक नही होगी। परन्तु ससद् को शक्ति दी गई थी कि वह विधि द्वारा, अधिक सख्या मे न्यायाधीश निर्धारित करे। इस उपबध के अधीन, ससद् ने उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशो की सख्या) अधिनियम, 1956 पास किया जिसके अनुसार अन्य न्यायाधीशो की सख्या बढ़ाकर दस कर दी गई और बाद मे इस अधिनियम मे अनेक सशोधनो द्वारा 25 कर दी गई। इस प्रकार इस समय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशो की सख्या, मुख्य न्यायाधीश सहित 26 है।

प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय है जो मुख्य न्यायाधीश तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशो से बनता है जो राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे। सविधान के अधीन ससद् विधि द्वारा किसी सघ राज्य क्षेत्र (Union Territory) पर किसी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का विस्तार कर सकती है या किसी सघ राज्य क्षेत्र को किसी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) से निकाल सकती है दो या दो से अधिक राज्यों के लिए या दो या दो से अधिक राज्यो तथा सघ राज्य क्षेत्र के लिए एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है, और किसी सघ राज्य क्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय का गठन कर सकती है या किसी ऐसे राज्यक्षेत्र मे किसी न्यायालय को सविधान के सभी या किसी एक प्रयोजनार्थ उच्च न्यायालय घोषित कर सकती है।

उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के न्यायाधीश, राष्ट्रपति द्वारा मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से, जैसे वह आवश्यक समझे, परामर्श करने के पश्चात् नियुक्त किए जाते हैं। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश, सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल और उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के साथ परामर्श करने के पश्चात् नियुक्त किए जाते हैं। किसी भी न्यायालय का न्यायाधीश अपने हाथ से लिखकर, राष्ट्रपति को सम्बोधित करके, अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है परन्तु उसे, सिवाय 'महाभियोग' (Impeachment) की प्रक्रिया के द्वारा जैसे संविधान में निर्धारित है, अपने पद से हटाया नहीं जा सकता। इस प्रकार किसी न्यायाधीश को अपने पद से तभी हटाया जा सकता है यदि संसद् के दोनों सदनों द्वारा एक विशेष बहुमत से (अर्थात् उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा प्रत्येक सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा) पास किया गया संयुक्त समावेदन राष्ट्रपति के समक्ष रखा जाए। उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के उसके कर्त्तव्यों के निर्वहन में आचरण के विषय में, सिवाय उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव के, अन्य किसी प्रकार चर्चा करने की संसद् को शक्ति प्राप्त नहीं है। ऐसा उपबन्ध स्पष्टतया इसलिए रखा गया है कि न्यायाधीश कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के प्रभाव से मुक्त रहें। परन्तु इस सम्बन्ध में न्यायाधीश को प्राप्त संरक्षण उसके न्यायिक कर्त्तव्यों तक सीमित है, उसके निजी आचरण के लिए नहीं।

संसद् विधि द्वारा, संघ के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण (administrative tribunal) और प्रत्येक राज्य के लिए या दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक पृथक् प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना के लिए उपबन्ध कर सकती है। इस उपबन्ध के अधीन बनाए गए कानून में यह उल्लेख किया जाता है कि अधिकरणों के अधिकार क्षेत्र क्या-क्या होंगे और शक्तियाँ क्या-क्या होंगी। ऐसे कानून से, उच्चतम न्यायालय के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन कार्यक्षेत्र के सिवाय, सभी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र का कुछ उल्लिखित मामलों के सम्बन्ध में अपवर्जन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संविधान के अधीन संसद् को एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा (*All India Judicial Service*) बनाने की शक्ति प्राप्त है जिसमें जिला न्यायाधीश (District Judge) से छोटा कोई पद नहीं होता।

संसद् के किसी भी सदन की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को, प्रक्रिया की किसी कथित अनियमितता के आधार पर, किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। प्रत्येक सदन का पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer) या कोई अन्य अधिकारी या संसद् सदस्य जिसमें प्रक्रिया को विनियमित करने या संसद् के

किसी भी सदन के निर्णय को लागू करने या कार्य रूप देने की शक्तियां सामयिक तौर पर निहित की गई हों, उन शक्तियों का प्रयोग करने में न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र में नहीं आता। सदन के आतंरिक मामलों को प्रभावित करने वाले किसी मामले के सम्बन्ध में "रिट", निदेश या आदेश जारी करना न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से परे है।

ऐसे संविधान के ढांचे में जो व्यक्तिगत मूल अधिकारों की गारंटी देता है, संघ तथा राज्यों की अलग-अलग शक्तियों का उपबन्ध करता है और संसद् सहित राज्य के प्रत्येक निकाय की शक्तियों एवं कृत्यों की स्पष्ट परिभाषा करता है और उनका परिसीमन करता है, न्यायपालिका न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की अपनी शक्तियों के अधीन बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। संसद् द्वारा बनाए गए किसी भी विधान को न्यायालय संविधान की शक्तियों से बाहर और इस कारण शून्य एवं अप्रवर्तनीय (Null and void) घोषित कर सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 13 में यह स्पष्ट उपबन्ध है कि संसद्, राज्य विधान-मण्डल या कोई भी अन्य प्राधिकरण ऐसा विधान न बनाए जो संविधान के भाग 3 में वर्णित किसी भी मूल अधिकार से असंगत हो, या उसे न्यून करता हो। अनुच्छेद 32 और 226 द्वारा इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए क्रमश: उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को शक्ति प्रदान की गई है। इस प्रकार, भारत में किसी विधान की संवैधानिक वैधता (Constitutional validity) को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि विधान का विषय—

(क) उस विधानमण्डल के अधिकार क्षेत्र में नहीं है जिसने इसे पास किया है;

(ख) संविधान के उपबन्धों के प्रतिकूल है, या

(ग) मूल अधिकारों में से किसी का हनन करता है।

कभी कभी ऐसा मान लिया जाता है और प्राय कहा जाता है कि जैसे विधानमण्डल का काम विधान बनाना और कार्यपालिका का काम उसे कार्यान्वित करना है, उसी तरह न्यायालयों का काम संविधान एवं विधियों की व्याख्या करना है। ऐसी धारणा बहुत ही भ्रामक एवं गलत है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था में केवल न्यायपालिका ही व्याख्या नहीं करती है। अनेक ऐसे प्राधिकरण हैं जो लगभग प्रतिदिन अपने कृत्यों का निर्वहन करते हुए बहुत वैधता से संविधान की व्याख्या करते हैं। उदाहरणार्थ, संसद् के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों को अपने विनिर्णय (rulings) देते हुए, जो उनके अपने-अपने सदनों में अंतिम होते हैं, संविधान के उपबन्धों की व्याख्या करनी पड़ती है। न्यायालयों का मूल कृत्य व्यक्तियों के बीच, व्यक्तियों और राज्यों के बीच, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच और संघ तथा राज्यों के बीच विवादों का न्यायनिर्णय (adjudication) करना है और

न्यायनिर्णय करते हुए न्यायालयों के लिए संविधान तथा विधियों की व्याख्या करना अपेक्षित हो सकता है। और जो व्याख्या उच्चतम न्यायालय द्वारा की जाती है वह विधान बन जाती है जिसे देश के सभी न्यायालय मानते हैं। उच्चतम न्यायालय के फैसले के विरुद्ध कोई अपील नहीं है। वह तब तक देश के कानून के रूप में बना रहता है जब तक कि स्वयं उच्चतम न्यायालय उस व्याख्या का पुनर्विलोकन (review) न करे या उसका बदल न दे या जब तक संसद् द्वारा उस कानून में या संविधान में उपयुक्त संशोधन न कर दिया जाए। यदि संसद् का कोई अधिनियम न्यायपालिका द्वारा रद्द कर दिया जाता है तो संसद् उसकी ऐसी त्रुटियों को दूर करके जिनके कारण वह रद्द किया गया हो, उसे फिर से अधिनियमित कर सकती है। इसके अतिरिक्त संसद् अपनी संवैधानिक शक्तियों की सीमा में रहते हुए संविधान में ऐसी रीति से संशोधन कर सकती है जिससे कि वह कानून असंवैधानिक न रहे।

इस प्रकार, भारतीय संसद् इतनी सर्वशक्ति सम्पन्न नहीं है जितनी कि ब्रिटिश संसद् है जहां विधान के न्यायिक पुनर्विलोकन की अनुमति नहीं है। साथ ही, भारतीय न्यायपालिका इतनी सर्वशक्ति सम्पन्न नहीं है जितनी की संयुक्त राज्य अमेरिका में है जहां न्यायिक पुनर्विलोकन की वस्तुतः कोई सीमा ही नहीं है।

विधायी शक्ति का वितरण

संविधान ने संघ विधानपालिका (Union Legislature) और राज्यों की विधानपालिकाओं के बीच विधायी शक्तियों का वितरण किया है।

भारतीय संघ में इस समय 25 राज्य (States) है और सात संघ राज्यक्षेत्र (Union Territories) है, जैसा कि संविधान की पहली अनुसूची (First Schedule) में उल्लिखित है। संघ का राज्यक्षेत्र राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में बटा हुआ है। किसी राज्य द्वारा बनाया गया विधान उस राज्य के राज्यक्षेत्र में ही लागू हो सकता है। संघ की संसद् भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भी भाग के लिए विधान बना सकती है। संसद् को राज्यक्षेत्रातीत विधान (extra-territorial laws) बनाने की शक्ति भी प्राप्त है, अर्थात् इसके द्वारा बनाया गया कोई विधान केवल भारतीय राज्यक्षेत्र के लोगों और संपत्ति पर ही लागू नहीं होगा बल्कि विदेशों में रह रहे भारतीय नागरिकों पर भी लागू हो सकता है। राज्यों को ऐसा विधान बनाने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

संविधान में संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्ति का वितरण तीन सूचियों के अन्तर्गत करने का उपबन्ध किया गया है। सूची 1 (List) अथवा संघ सूची (Union list) में 97 विषय है जिनके बारे में केवल संसद् ही विधान बना सकती है। सूची 2 (list 2) या राज्य सूची (State list) में 66 विषय हैं जिनके बारे में केवल राज्य विधानमण्डल ही विधान बना सकते हैं। सूची 3 (list 3) या

समवर्ती सूची (concurrent list) में 47 मदें हैं जिनके बारे में संसद और राज्य विधानमण्डल दोनों ही विधान बना सकते हैं। संविधान द्वारा आवंटित अपने-अपने क्षेत्रों में, संसद और राज्य विधानमण्डलों को पूर्ण स्वायत्तता (autonomy) प्राप्त है, तथापि शक्तियों के वितरण (distribution of powers) की योजना में विधायी क्षेत्र में संसद के सामान्य प्रमुत्व पर बल दिया गया है।

संघ सूची में, जो तीनों सूचियों में सबसे लम्बी है, रक्षा, वैदेशिक कार्य, रेलवे, संचार, बैंकिंग, मुद्रा आदि जैसे महत्त्वपूर्ण विषय हैं। अवशिष्ट शक्तियाँ, (residuary powers) अर्थात् ऐसे विषय के सम्बन्ध में विधान की शक्ति जो तीनों में से किसी भी सूची में वर्णित न हो, संसद को प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची में, एक ही विषय के सम्बन्ध में संघ के और राज्य के विधान में टकराव होने की स्थिति में, संघ का विधान मान्य होता है। दूसरे शब्दों में, इस सम्बन्ध में संघ के विधान का स्थान पहला है। समवर्ती क्षेत्र के किसी विषय के सम्बन्ध में राज्य की विधि के पक्ष में इस नियम का अपवाद है कि संसद के पहले के किसी विधान के साथ टकराव होने के मामले में राज्य का विधान मान्य रहता है, यदि उसे विचारार्थ रक्षित रखा गया हो और राष्ट्रपति की अनुमति (President's assent) उस पर प्राप्त हो चुकी हो। परन्तु इस उपबन्ध में संसद के लिए ऐसी कोई रोक नहीं है कि वह राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाए गए विधान में बाद में संशोधन नहीं कर सकती, उसे बदल नहीं सकती या निरस्त नहीं कर सकती। प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाना अपेक्षित है जिससे संसद द्वारा बनाए गए विधान का अनुपालन सुनिश्चित हो।

राज्यों के लिए पूर्णतया रक्षित क्षेत्रों में भी, संसद को कुछ परिस्थितियों में विधान बनाने की शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार जब कभी राज्य सभा एक संकल्प पास करके, जिसे विशेष बहुमत प्राप्त हो, यह घोषणा करती है कि ऐसा करना राष्ट्रीय हित में आवश्यक या समीचीन है तो संसद राज्य सूची में उल्लिखित किसी विषय पर विधान बना सकती है। इसके अतिरिक्त जब आपात की उद्घोषणा (proclamation of emergency) प्रवृत्त में हो तो संसद की विधान बनाने की शक्ति का विस्तार हो जाता है जिससे वह राज्य सूची के किसी भी विषय पर विधान बना सकती है। यद्यपि संसद राष्ट्रीय हित में या आपात स्थिति के दौरान प्रयोग की गई किसी शक्ति से किसी राज्य के विधानमण्डल की सामान्य विधायी शक्ति को प्रतिबन्धित नहीं करती, तथापि टकराव की स्थिति में संसद द्वारा बनाया गया विधान प्रवर्तन में रहता है और जब तक वह प्रवर्तन में रहता है तब तक राज्य का विधान जहाँ तक संसद के विधान से उसके टकराव का सम्बन्ध है, अप्रवर्तनीय (inoperative) रहता है।

किसी देश के साथ की गई सन्धि (treats), समझौते (agreement) या अभिसमय (convention) को या किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, एसोसिएशन या अन्य निकाय में किसी विषय पर, यदि वह विषय राज्य सूची में हो तो भी लिए गए फैसले को कार्यान्वित करने के लिए विधान बनाने की शक्ति संसद् को ही प्राप्त है।

संसद् में निवेदन किए जाने पर भी वह राज्य सूची के किसी विषय पर विधान बना सकती है। यदि दो या दो से अधिक राज्य विधानमण्डल ऐसा वांछनीय समझते हैं कि उनके अधिकार क्षेत्र वाले किसी विषय का विनियमन (regulation) संसद के विधान द्वारा होना चाहिए और इस आशय का संकल्प पास करते हैं तो, संसद राज्यों के निमन्त्रण पर राज्य सूची के किसी विषय पर आवश्यक विधान बना सकती है। परन्तु इस प्रकार बनाया गया विधान उन राज्यों में प्रभावित रहता है जिन्होंने इस हेतु निवेदन किया हो अथवा उन अन्य राज्यों में जो इस बारे में संकल्प पास करके बाद में उसे अपना लें। संघ सूची की कुछ प्रविष्टियों से ही संसद् को शक्ति प्रदान हो जाती है कि वह, विधि द्वारा अपेक्षित घोषणा करके, कुछ क्षेत्र और विषय राज्य के क्षेत्र से अपने अधिकार में ले ले।

संविधान में उपबन्ध है कि यदि राष्ट्रपति का, किसी राज्य के राज्यपाल से रिपोर्ट मिलने पर या अन्यथा यह समाधान हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्घोषणा (Presidential Proclamation) द्वारा उस राज्य की सरकार के सभी या कोई कृत्य अपने हाथ में ले सकता है और यह घोषणा कर सकता है कि राज्य के विधानमण्डल की शक्तियों का प्रयोग संसद् द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन किया जाएगा।

नये राज्यों की स्थापना एवं गठन के मामलों से भी संसद् के प्रमुत्व का संकेत मिलता है। संसद् को यह शक्ति प्राप्त है कि वह—

(क) किसी राज्य में से उसका राज्यक्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकती है;

(ख) किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा या घटा सकती है;

(ग) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है, और

(घ) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकती है।

ये परिवर्तन संविधान में संशोधनों की तरह न होकर ऐसे संशोधन हैं जो राष्ट्रपति की सिफारिश पर संसद् द्वारा साधारण बहुमत से विधेयक (Bill) पास करके किए जा सकते हैं। ऐसे विधेयकों पर सम्बन्धित राज्यों के विधानमण्डलों के, इस प्रयोजनार्थ निर्धारित अवधि में, विचार जानने के लिए उनके पास भेजना अपेक्षित है परन्तु विधेयक इस प्रकार विधान मण्डलों के पास भेजने से संसद् के हाथ

अपने नहीं हैं और वह जैसे उचित समझे वैसे परिवर्तन कर सकती है। इसके अतिरिक्त, संसद् को किसी राज्य में विधान परिषद् का साधारण प्रक्रिया द्वारा उत्पादन या सृजन करने की शक्ति प्राप्त है जिसके लिए संविधान में संशोधन करना अपेक्षित नहीं है। यदि किसी राज्य की विधान सभा विशेष बहुमत से इस आशय का संकल्प पास कर देती है तो संसद् के अधिनियम द्वारा ही ऐसा हो सकता है। संविधान में निर्धारित सीमाओं में रहकर संघ और राज्य एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। अपने क्षेत्र में कोई एक दूसरे के अधीन नहीं है। डा अम्बेडकर के शब्दों में, "संविधान द्वारा नियत किए गए अपने क्षेत्र में राज्य उतने ही प्रभुसत्ता-सम्पन्न (Sovereign) हैं जितना कि केन्द्र संविधान द्वारा सौंपे गए अपने क्षेत्र में है"। एक का प्राधिकार दूसरे के प्राधिकार से समन्वयकारी है। वास्तव में, भारत में संघ और राज्यों का सम्बन्ध निम्नलिखित दो विरोधी विचारों में समझौते का प्रतीक है—

(1) शक्तियों का सामान्य विभाजन जिसके अनुसार राज्य अपने क्षेत्रों में स्वायत्त हैं,

(2) विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता और मजबूत संघ की आवश्यकता।

संविधान में संशोधन करने की शक्ति अथवा संविधायी शक्ति (constituent power) संविधान ने संसद् को सौंपी है। संविधान संशोधन विधेयक सदन के किसी भी सदन में पेश किये जा सकते हैं। संसद् संविधान में कोई भी आवश्यक संशोधन कर सकती है, सिवाय इसके कि कुछ मामलों में संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक के लिए राज्य विधानमण्डलों द्वारा अनुसमर्थन आवश्यक है तथा न्यायालयों के निर्णयों के अनुसार विधानपालिका ऐसे संशोधन नहीं कर सकती संशोधन जो संविधान के मूल ढांचे अथवा आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध हों। संविधान संशोधन में राज्य विधान मण्डलों की भूमिका सीमित है।

संक्षेप

संक्षेप में कह सकते हैं कि हमारे देश की राजनीतिक व्यवस्था में सभी वयस्क लोग अर्थात् जिन्होंने 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो, मतदाता हैं, वे अपने-अपने राज्यों में लोक सभा के और विधान सभाओं के सदस्य चुनते हैं। राज्यों की विधान सभाएँ फिर राज्य सभा के सदस्य चुनती हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक-मण्डल (Electoral college) द्वारा किया जाता है जिसमें राज्य सभा, लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं। राष्ट्रपति नाममात्र अथवा संवैधानिक कार्यपालिका है, वास्तविक अथवा राजनीतिक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद् होती है। मंत्रिगण संसद् सदस्य अवश्य होने चाहिए और वे सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी

होते हैं । उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं । जहा तक कार्यपालिका और विधानमण्डल के सबधों का प्रश्न है, उनकी स्थिति विरोधात्मक नहीं है । दोनों जनता की सेवा मे भागीदार हैं ।

भारत की ससद्, राष्ट्रीय स्तर परसवैधानिक रूप से संगठित सभी लोगो के विचारो का प्रतिनिधित्व करती है, उसका देश की राजनीतिक व्यवस्था मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसमे जनता की "प्रभुसत्ता" (Sovereignty) का समावेश एव सार है, यह राष्ट्र की आवाज और उसका दर्पण है ।

ससद् को सर्वोपरि यह देखना होता है कि लोगो की जिन इच्छाओ एव आकाक्षाओ का प्रतिपादन इसके सदनो मे किया जाता है उनकी यथासम्भव उत्तम रीति से पूर्ति हो । लोगो के निर्वाचित प्रतिनिधियो के रूप मे ससद् सदस्य लोगो की विभिन्न मामलो पर शिकायतो और विचारो को ससद् के सदनो मे व्यक्त करते हैं, सरकार के कार्यकरण की छानबीन करते हैं और विधान बनाते हैं । ससद् "राष्ट्र की जाच पडताल करने वाली एव अग्रणी महान सस्था" के रूप मे कार्य करती है ।

इसके विधायी अधिकार क्षेत्र की सीमा से, सविधान-निर्माण की इसकी शक्तियों से, आपात की स्थितियो मे इसकी भूमिका से और न्यायपालिका, कार्यपालिका, राज्य विधानमण्डलो और संविधान के अधीन अन्य प्राधिकरणो के साथ इसके सम्बन्धो से पता चलता है कि ससद् की शक्ति एव अधिकार क्षेत्र कितना अधिक और विस्तृत है परन्तु भारतीय ससद को उस प्रकार प्रभुसत्ता-सम्पन्न निकाय नही कहा जा सकता जिस प्रकार कि ब्रिटिश ससद को जाना जाता है । इसकी शक्ति बहुत अधिक है परन्तु असीम नही है । हमारी ससद् का प्राधिकार और अधिकार क्षेत्र अन्य निकायो की शक्तियों द्वारा, सघ और राज्यो मे विधायी शक्तियों के विभाजन द्वारा, मूल अधिकारो द्वारा, न्यायिक पुनरविलोकन के लिए सामान्य उपबन्ध द्वारा और स्वतत्र न्यायपालिका होने के कारण सीमित होते हैं । इसके प्राधिकार की इन सीमाओ के बावजूद, सविधान के अधीन जो शक्तियाँ इसे प्राप्त हैं वे इतनी पर्याप्त हैं कि जो भूमिका इसके लिए नियत है, उसे वह भली-भाँति निभा सकती है ।

□□□

2.

संसद् का कार्यकरण और अधिकार क्षेत्र सदनों की भूमिका, विभिन्न कृत्य

संसद् के विधायी कृत्य (Legislative function) को देखते हुए सर्वसाधारण में संसद् को केवल विधान बनाने वाली निकाय ही माना जाता है। यह केवल एक पक्षीय दृष्टिकोण है। व्यावहारिक दृष्टि से संसद् का कार्य विधान बनाना, परामर्श देना, आलोचना करना एवं जन इच्छा की प्रतीक होने के नाते, जनता की शिकायतों को मुखर करना होता है। वित्त पर नियंत्रण रखने, कर लगाने अथवा करों में परिवर्तन करने, अनुदानों और पूर्तियों पर मतदान करने का विशिष्ट अधिकार भी इसे प्राप्त है। इन शक्तियों के माध्यम से ही संसद् कार्यपालिका (Executive) के अपने प्रति और अंततोगत्वा जनता के प्रति उत्तरदायित्व को पूरा करती है। राष्ट्रीय महत्व के गम्भीर मामलों को सुलझाने में भी संसद् का विशिष्ट योगदान रहा है अतः हम देखते हैं कि एक वर्धमान संस्था के रूप में संसद् के कृत्यों में विविधता आई है और उनको सीमाओं में बांधना भ्रामक सिद्ध हो सकता है। किन्तु, विषय-वस्तु को सुस्पष्ट और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से, संसद् की कुछ मौलिक भूमिकाएं एवं कृत्य इस प्रकार कहे जा सकते हैं।

संसद् के कृत्य

(1) राजनीतिक और वित्तीय नियंत्रण (Political and financial Control)

(2) प्रशासन की निगरानी (Surveillance over Administration)

(3) जानकारी प्राप्त करने का अधिकार

(4) जन-आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना, शिकायतें व्यक्त करना और परामर्श देना

(5) राष्ट्रीय महत्व के मामले सुलझाना और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करना

(6) विधि-निर्माण करना

(7) संविधान में संशोधन करना (संविधायी शक्ति)

(8) नेतृत्व प्रदान करना।

राजनीतिक और वित्तीय नियंत्रण : संसद्, कार्यपालिका का निरीक्षण एवं नियंत्रण करती है। कार्यपालिका संसद् के प्रति उत्तरदायी है। संसद् को कार्यपालिका के कृतकार्यों की जानकारी प्राप्त करने और उनकी आलोचना करने का असीमित अधिकार प्राप्त है। यह कहा गया है कि "संसदीय संस्थाओं का लक्ष्य ऐसी सशक्त कार्यकारिणी है जिस पर जनता के प्रतिनिधि सदा दृष्टि रखें, उसकी आलोचना करते रहें और जो उनके सतत् नियंत्रण में रहे"[1] भारतीय संविधान में भी (एक) मंत्रीपरिषद् (Council of Ministers) के संसद् के निर्वाचित सदन के प्रति सामूहिक दायित्व (Collective responsibility) और (दो) बजट पर संसद् के नियंत्रण का उपबन्ध है।[2]

भारतीय संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका और संसद् के बीच सम्बन्ध सामंजस्यपूर्ण है, परस्पर विरोधी नहीं। संसद् कार्यपालिका के दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती और कार्यपालिका अपने कृत्यों के लिए संसद् के प्रति उत्तरदायी है जहां उसका अस्तित्व प्रतिदिन दाव पर रहता है। सदन किसी भी समय बहुमत द्वारा सरकार को अपदस्थ करने का फैसला कर सकता है, अर्थात् यदि सत्ताधारी दल सदन के बहुमत का समर्थन खो देता है तो सरकार अपदस्थ हो जाती है। तब कोई आधार बताना, प्रमाण देना या औचित्य बताना आवश्यक नहीं होता।[3] अत: लोक सभा (1) मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का मूल (Substantive) प्रस्ताव पास करके,[4] (2) नीति (Policy) सम्बन्धी किसी बड़े मामले पर सरकार को पराजित करके, (3) कोई स्थगन प्रस्ताव (Adjournment motion) पास करके;[5] और (4) आपूर्ति (सप्लाई ग) की स्वीकृति देने से इन्कार करके या किसी वित्तीय उपाय पर सरकार को पराजित कर अपदस्थ कर सकती है।

संसद् शासन नहीं करती, यह काम कार्यपालिका का है जिसमें संसद् के सदस्य मंत्री के रूप में नियुक्त होते हैं। अत: वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिमण्डल है जिसका नेता प्रधानमंत्री है। देश के संचालन के लिए कार्यपालिका कार्यक्रम और नीतियां तैयार करती है जिनके कार्यान्वयन पर व्यय होना अनिवार्य है। फलस्वरूप सरकार के लिए संविधान के उपबन्धों के अधीन प्राक्कलित आय और व्यय का वार्षिक विवरण (Annual financial statement or the estimated Receipts and Expenditure) अर्थात् बजट, संसद् के समक्ष रखना आवश्यक होता है। इस पर भी कार्यपालिका को अपने कार्यक्रमों और नीतियों की उपादेयता के अनुसार व्यय का स्तर निर्धारित करने और उसको विभिन्न प्रयोजनों के लिए आवंटित करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। उसे यह सुझाव देने की भी पूरी स्वतंत्रता है

कि व्यय को पूरा करने के लिए राजस्व (Revenue) किस प्रकार जुटाया जाना चाहिए। इस प्रकार खर्च करने के मामले में मुख्य रूप से कार्यपालिका को ही पहल करनी पड़ती है। किन्तु सरकार कानून के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त किए बिना न तो कोई खर्च कर सकती है और न कर ही लगा सकती है।[4]

कार्यपालिका की पहल करने की शक्ति अन्ततोगत्वा इस बात पर आधारित है कि उसे संसद् का समर्थन प्राप्त हो। यदि संसद् में सरकार का सम्पूर्ण बहुमत (Absolute majority) हो तो विधान तथा कार्यपालिका के सभी कामों का लगभग पूरा नियन्त्रण उसके हाथ में आ जाता है। संसदीय नियन्त्रण (Parliamentary control) नाममात्र का रह जाता है। कार्यपालिका पर संसदीय नियन्त्रण का 19वीं शताब्दी का ब्रिटिश विचार, "मदर आफ पार्लियामेन्ट्स" (ब्रिटिश संसद्) में भी अब मान्य नहीं है। व्यावहारिक तथ्य यह है कि लोकसभा में अपने बहुमत के द्वारा और सदन को भंग कर देने और नये चुनाव कराने की अपनी शक्ति के द्वारा सरकार संसद् पर नियन्त्रण रखती है। जैसा कि एक अन्य स्थान पर कहा गया है—

> *"आज राजनीति का व्यावहारिक तथ्य यह है कि वास्तविक शक्ति प्रधानमन्त्री को और उसके मन्त्रीमण्डल को प्राप्त है न कि संसद को। प्रधानमन्त्री लोकसभा में बहुमत का नेता होता है और सरकार का प्रमुख भी होता है। प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रीपरिषद् सरकार और विधानमण्डल, दोनों पर नियन्त्रण रखती है क्योंकि इसे व्यापक मान्यता प्राप्त है और फैसले करने और उन्हें कार्यान्वित करने की शक्ति भी प्राप्त है।"*

और ऐसा होना भी चाहिए।

> "प्रधानमन्त्री के अधिकार का खण्डन नहीं होना चाहिए क्योंकि उस स्थिति में मन्त्रीमण्डलीय सरकार कार्य नहीं कर सकती। आखिर प्रधानमन्त्री उसकी धुरी है। वह दो या तीन सहयोगियों से मन्त्रणा करके कार्यवाही कर सकता है। यही कारण है कि *मन्त्रीमण्डल समितियों की व्यवस्था है। अन्ततोगत्वा* प्रधानमन्त्री ही सरकार की नीतियों के लिए संसद् और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदार है।"[5]

प्रशासन की निगरानी—संसद् जन इच्छा का प्रतीक है। वह सीधे शासन नहीं चलाती। शासन से अभिप्राय है सरकार द्वारा तैयार किये गये कार्यक्रमों और निर्धारित नीतियों का कार्यान्वयन। देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के प्रारूप और नीतियाँ कार्यपालिका द्वारा तैयार किये जाते हैं और संसद् यह सुनिश्चित करती है कि ये *कार्यक्रम और नीतियाँ जन-आकांक्षाओं* के समरूप से अनुरूप हों। इनका कार्यान्वयन प्रशासन व्यवस्था द्वारा किया जाता है। प्रशासन व्यवस्था से अभिप्राय है प्रशासनिक अथवा सिविल सेवाएँ (Administrative and civil services) जो वस्तुतः संसद के प्रति हिसाब देह होती है।

नि:सन्देह मन्त्रीमण्डल के सदस्य विभिन्न मन्त्रालयों के प्रमुख होते हैं किन्तु वे विधायिनी और कार्यकारिणी के बीच की कड़ी होते हैं। अत: नीतियों के कार्यान्वयन में अधिकारियों का सीधा हाथ होता है, जिन्हें खामियों, यदि कोई हों, का स्पष्टीकरण करना होता है।

जन प्रतिनिधि सभा के रूप में संसद् को इस बात की निगरानी रखनी होती है कि जिन कार्यक्रमों और नीतियों का उसने अनुमोदन किया था, क्या प्रशासन ने उनको लागू कर अपने दायित्व पूरे किये। जिस मद के लिए उसने धन स्वीकार किया था, क्या वह उसी मद पर खर्च किया गया ? संक्षेप में, संसद् द्वारा प्रशासन की निगरानी का यही उद्देश्य है। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि अधिकारी इस बात का ध्यान रखकर ही काम करेंगे कि बाद में उनके काम की संसद् द्वारा छानबीन होगी और जो कुछ वह करते हैं या नहीं करते हैं उसके लिए वह उत्तरदायी होंगे। परन्तु सार्थक छानबीन करने और प्रशासन के कृत्यों की निगरानी के लिए संसद् के पास तकनीकी समाधन एवं जानकारी अवश्य होनी चाहिए।[9]

सरकार पर निगरानी रखने के संसद् के पास अनेक प्रक्रियागत साधन हैं। जैसे प्रश्नों के माध्यम से तथा असंतोषजनक उत्तर प्राप्त होने पर आधे घण्टे की चर्चाएं (Half an hour discussions) उठाकर संसद् प्रशासन को अपनी सतर्कता का आभास करा देती है। इसी प्रकार राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव (Motion of Thanks), बजट और सरकार की नीति के विशेष पहलुओं तथा विशिष्ट परिस्थितियों पर विचार के दौरान प्रशासनिक पुनर्विलोकन (Administrative review) के महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त, अविलम्बनीय लोकमहत्त्व के विषयों (Matter of urgent public Importance) सम्बन्धी प्रस्तावों (Motions) गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों (Private members resolutions) और अन्य मूल प्रस्तावों (Substantive motions) द्वारा भी विशिष्ट मामलों पर चर्चा हो सकती है। उपर्युक्त साधनों से सरकार पर नियन्त्रण रखने के साथ-साथ संसदीय समितियों (Parliamentary committees) के माध्यम से भी सरकार पर निगरानी रखी जाती है।

जानकारी प्राप्त करने का अधिकार (Right to know) तेजी से बदलते इस युग में जानकारी रखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जानकारी के अभाव में कोई भी काम सुचारू रूप से नहीं चलाया जा सकता है। हमने देखा है कि जहां सरकारी कार्यक्रमों और नीतियों के निर्माण का दायित्व कार्यपालिका का है वहीं, इन नीतियों की जांच पड़ताल करना तथा कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over Executive) रखने का पूरक काम संसद् करती है। इस दायित्व को निबाहने के लिए जानकारी प्राप्त करने का अधिकार संसद् की सबसे बड़ी शक्ति है। संसद् की इस शक्ति के भय से जहां सरकार के विभिन्न विभाग अपने कार्यों के निष्पादन में

सचेत रहते हैं वहां विभागों के प्रभारी मन्त्रियों को भी उनके विभागों की खामियों को जानने में सहायता मिलती है जिससे वे अपने प्रशासन को चुस्त बनाते हैं। यों तो संसद् को अनेक प्रकार से, विभिन्न स्रोतों से जानकारी प्राप्त होती है, परन्तु सरकार क्योंकि जानकारी का सबसे बड़ा स्रोत है अत: संसद् एवं इसके सदस्यों को जानकारी की अपनी आवश्यकताओं के लिए सरकारी विभागों पर काफी निर्भर रहना पड़ता है।[10] यह सरकारी विभागों का दायित्व है कि मांगे जाने पर वे अपने क्रियाकलापों के संबंध में संसद् को पूरी, सही-सही और सुस्पष्ट जानकारी उपलब्ध करायें। हां, ऐसे मामले, जिनके बारे में जानकारी देने से राष्ट्रीय हित (National interest) पर आंच आती हो अथवा देश की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, वे अपवाद हो सकते हैं। इस प्रकार की जानकारी मन्त्रियों द्वारा सभा में वक्तव्य देकर, आवश्यक पत्र और रिपोर्टें सभा पटल पर रखकर अथवा इन्हें संसद् ग्रंथालय में रखकर उपलब्ध कराई जा सकती है। सदस्य सभा में चर्चाएं उठाने (To raise matters in the House) के लिए इस जानकारी का प्रयोग करते हैं।

सभा के सत्र (Session) के दौरान सदस्यों को जानकारी प्राप्त करने के अवसर प्रतिदिन प्राप्त होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण साधन है प्रश्न पूछना, जिससे सदस्य सीधे स्वयं जानकारी प्राप्त करते हैं। स्पष्ट उत्तर न मिलने पर अनुपूरक प्रश्नों (Supplementary Questions) का क्रम चलता है और असन्तोषजनक उत्तर मिलने पर आधे घण्टे की चर्चा (Half-an-hour Discussion) उठायी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक विभाग की बड़ी बारीकी से जांच होती है और कोई भी कोना संसद् की छानबीन से अछूता नहीं रहता। सदस्य अविलम्बनीय लोक महत्व के विषयों पर मौखिक उत्तर के लिए अल्प सूचना प्रश्न (Short Notice Questions) पूछ सकते हैं। कोई सदस्य, अध्यक्ष की पूर्व अनुमति से, अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी मामले की ओर मन्त्री का ध्यान दिला सकता है और उससे अनुरोध कर सकता है कि वह उस मामले पर वक्तव्य दे। सदस्य संबंधित मन्त्री को लिख कर भी ऐसी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जिसकी कि उन्हें आवश्यकता हो और ऐसी जानकारी आम तौर पर दे दी जाती है।[11]

विभिन्न कार्यक्रमों और नीतियों के कार्यान्वयन से संबंधित विभिन्न मन्त्रालयों और उनकी अधीनस्थ संस्थाओं से सीधे जानकारी का अन्य माध्यम विभिन्न संसदीय समितियों के प्रतिवेदन (Reports) हैं। प्रशिक्षणाधीन विषयों के संबंध में ये समितियां विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए बड़े ही पैने प्रश्न करके मन्त्रालयों एवं विभागों और सरकारी उपक्रमों (Public Undertakings) इत्यादि से विस्तृत एवं बहुमूल्य जानकारी एकत्र करती हैं। यहां तक कि मन्त्रालयों के सचिवों और अधिकारियों से प्रत्यक्ष प्रश्न भी पूछे जाते हैं। इस प्रकार एकत्रित जानकारी के आधार पर विचाराधीन विषयों के संबंध में समितियां अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करती

हैं। अतः ये प्रतिवेदन अविलम्बनीय लोक महत्त्व के मामलों पर जानकारी प्राप्त करने का एक सशक्त साधन बन गए हैं जिनका सदन में दोनों पक्षों के सदस्य प्रसंगानुसार खूब प्रयोग करते हैं।

सरकारी साधनों के अतिरिक्त विभिन्न राजनीतिक दलों के शोध एवं सदर्भ के लिए अपने कर्मचारी हैं, जो कि जानकारी प्राप्त करने के लिए अनिवार्य अंग हैं। जानकारी के अभाव में किसी भी संस्था का सदस्य अपने कार्य का निष्पादन सही ढंग से नहीं कर सकता, संसदीय वाद-विवाद (Parliamentary debate) में हिस्सा लेना तो दूसरी बात है। सूचना के महत्त्व वाले इस युग में प्रेस और संचार माध्यमों का अपना एवं अलग स्थान है। जन-संचार के इन माध्यमों से सदस्यों को नवीनतम घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है और वे प्रशासन एवं सार्वजनिक नीतियों संबंधी मामलों से अवगत रहते हैं।

समाचार-पत्र, जन-संचार का मुख्य साधन हैं। समाचार-पत्र ही जनता को संसदीय लोकतन्त्र में कार्यपालिका और विधायिका तथा सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दल के पारस्परिक सम्बन्धों और उनके कार्यों से अवगत कराते हैं। जनता को शिक्षित करने के साथ-साथ समाचार-पत्र प्रजातन्त्र के दोषों को दूर करने में सहायता करते हैं। समाचार-पत्रों का यह भी दायित्व है कि वे समय-समय पर जनता के विचार व्यक्त करते रहें। किन्तु समाचार पत्रों के निजी विचारों को जनता के विचार नहीं माना जा सकता। फिर भी सही स्थिति का चित्रण करके समाचार-पत्र इस दायित्व का निर्वाह कर सकते हैं। उनको स्वयं अपनी आचरण संहिता (Code of conduct) का पालन करना चाहिए, सनसनीखेज बातें लिखने के प्रलोभन में नहीं आना चाहिए, पत्रकारिता में राष्ट्रीय हित का बलिदान न करने के अपने सर्वोच्च कर्त्तव्य को याद रखना चाहिए। संसदीय प्रश्नों, (Parliamentary Questions) प्रस्तावों (Motions) और वाद-विवाद के लिए अधिकांश जानकारी दैनिक समाचार-पत्रों से प्राप्त होती है और यह एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है जिस पर सदस्य निर्भर करते हैं। इसके साथ-साथ, प्रेस लोगों को जानकारी देता रहता है कि संसद् में क्या हो रहा है। इस आदान-प्रदान से प्रेस लोगों और संसद् के बीच महत्त्वपूर्ण तथा मजबूत संपर्क बनाए रखने में समर्थ होता है।

संसदीय प्रणाली में जानकारी का निष्पक्ष और तथ्यात्मक होना अनिवार्य है। परन्तु कितना भी कहें, जन-संचार माध्यमों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली जानकारी के निहित स्वार्थों से प्रभावित जानकारी होने की शंका बनी रहेगी। इसी प्रकार सरकारी स्रोतों द्वारा उपलब्ध की जाने वाली जानकारी भी, तथ्यात्मक और सुस्पष्ट होने के बावजूद, कभी-कभी एक तरफा या पक्षपातपूर्ण हो सकती है। अतः इन सम्भावनाओं से बचने के लिए संसद् को एक निजी संस्थागत स्रोत (Institutional source) विकसित करना चाहिए जो स्वतंत्र जानकारी का

रक्षित भण्डार हो। इसके साथ-साथ विशिष्ट प्रसार प्रक्रियाओं (Dissemination processes) का विकास करने की भी आवश्यकता है। संसद् ग्रन्थालय और इसकी शोध, संदर्भ, प्रलेखन तथा सूचना सेवाएं (Library Research Documentation and Information services) इस दिशा में कार्य कर रही हैं। ये सेवाएं सदस्यों के लिए उपलब्ध रहती हैं और उन्हें जब भी वे चाहें, निष्पक्ष एवं बिल्कुल सगत जानकारी अविलम्ब और प्रायः अल्प सूचना पर सप्लाई करते हैं और उनकी भावी आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाता है। विधायकगण चूंकि बहुत व्यस्त रहते हैं और उनके पास समय बहुत कम होता है अतः जानकारी ठीक-ठीक होनी चाहिए, संक्षिप्त, आसानी से समझी जा सकने वाली और तुरन्त प्रयोग में लाए जा सकने योग्य होनी चाहिए।[13]

जन-आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना, शिकायतें व्यक्त करना और परामर्श देना : सांसदों को उनके निर्वाचन क्षेत्रों की जनता एक अटूट विश्वास के साथ निर्वाचित कर संसद् में भेजती है। अतः वे उनके माध्यम से इस राष्ट्रीय मञ्च (National Forum) पर अपनी आशाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं को प्रतिफलित होते देखना चाहते हैं। संसद् की कार्यवाहियों में सांसदों का योगदान उनके निर्वाचन क्षेत्रों (Constituencies) की जनता की कठिनाइयों, उनकी शिकायतों और उनकी भावनाओं, चिन्ताओं और निराशाओं की ही अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार सांसदों की वाणी में छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी की, समग्र भारत की एक वाणी प्रस्फुटित होती है और इस प्रकार भारतीय संसद् सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिनिधि सभा का स्वरूप धारण करती है।

संसद् में जो भी जीवन्त प्रश्न उठते हैं, जिनसे उसकी चर्चाओं में चमक और चटकीलापन आता है उनका आधार उनके निर्वाचन क्षेत्रों की जनता की आशाएं और आकांक्षाएं ही होती हैं। वे लोग, अपने आस-पास की, अपने क्षेत्र की कठिनाइयां, अपनी शिकायतें उन तक पहुंचाते हैं जो वाद-विवाद का आधार बनती हैं। वे दिन तो लद गये जब कि विधान मण्डल केवल विशिष्ट वर्ग (elite) के लोगों का ही निकाय था। आज लोक सभा अधिकाधिक प्रतिनिधि स्वरूप वाली बन गई है। एक अध्ययन में किए गए विश्लेषण के अनुसार,

> "भारतीय संसद् बहुमुखी भारतीय समाज का दर्पण है। संसद् में भारत के लोगों का, उनकी राजनीतिक जागृति के स्तर का, उनके सीधे-सादे जीवन का और उनकी समस्याओं, आशाओं और आकांक्षाओं का अधिक प्रतिनिधि स्वरूप दिखाई देने लगा है। विशिष्ट वर्ग की राजनीति का स्थान धीरे-धीरे स्वस्थ ग्रामोन्मुख राजनीति ले रही है। नगरीय वकील, जो कानून और संसदीय प्रक्रिया की बारीकियों को समझता था, उसका स्थान ग्रामीण किसान या राजनीतिक/सामाजिक कार्यकर्ता ले रहा है जिसकी अन्तर्जात सहज बुद्धि है और जो यह पूरी तरह समझता है कि लोगों की आवश्यकता क्या है। अब विदेशी शिक्षा

प्राप्त पब्लिक या कान्वेंट स्कूलो मे पढ़े उच्च मध्यम श्रेणी के नगरीय विशिष्ट लोगो का स्थान गांवो के शिक्षित साधारण लोग ले रहे है ।"[13]

सासद और निर्वाचक का अटूट सम्बन्ध है । दोनों अन्योन्याश्रित है । निर्वाचक यदि सांसद को अपना प्रतिनिधि बनाकर ससद् मे भेजते हैं, अपनी समस्याओ, कठिनाइयो और शिकायतो के रूप मे उन्हें सामग्री उपलब्ध कराकर ससद् की चर्चाओ को जीवन्त बनवाते हैं, तो सासद् भी अपने निर्वाचको को सरकार के कार्यक्रमो, नीतियो और उनको कार्यान्वित करने की प्रक्रिया से अवगत करवाते हैं । वे उनको ससद् के कार्यकरण और उसकी भूमिका मे भी अवगत कराते हैं । इस प्रकार वे अपने निर्वाचको, सरकार और ससद के बीच सचार का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन जाते हैं । इस सब के लिए सासद की सूझ-बूझ, शिक्षा-दीक्षा, अपने *निर्वाचन क्षेत्र से निरन्तर सम्पर्क, उनकी शिकायतो, समस्याओ और कठिनाइयो* को उपलब्ध विभिन्न प्रक्रियागत उपायो द्वारा अभिव्यक्त करने की उनकी क्षमता की अहम भूमिका है ।

ससद् सदस्य अपनी सूझ-बूझ से अपने क्षेत्र की समस्याओं को सर्वसाधारण की समस्याओ का रूप देता है तथा प्रश्नो के माध्यम से ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Calling Attention Notices), अल्पकालिक प्रस्ताव (Short Duration Discussion) रखकर उन पर ससद् में चर्चाओ की माग करता है । बजट पर, अनुदान चर्चाओ के दौरान कटौती प्रस्ताव (Cut Motions) लाकर वह नागरिको की बहुत सी शिकायतो को सरकार के सम्मुख शक्तिशाली ढग से प्रस्तुत करता है । इस प्रकार आयोजित चर्चायें महत्त्वपूर्ण होती हैं क्योंकि उनसे पता चलता है कि ससद् का क्या दृष्टिकोण है और चर्चाओं से प्रशासनिक तन्त्र (Administrative System) पर लोगो के विचारो का प्रभाव पड़ता है और यदि ऐसा न हो तो प्रशासन लोगो की भावनाओ से अनभिज्ञ रहे । इस प्रकार चर्चाएं उठने से सरकार सतर्क हो जाती है और अपने *दायित्वों (Responsibilities)* के प्रति सचेत हो जाती है । इससे सरकार से चारो ओर, हर स्तर पर ससद् के अदृश्य नियन्त्रण (Hidden Control) का आभास होता है । यद्यपि प्रशासको के लिए ससद् द्वारा स्वीकृत नीतियों को यथासम्भव बेहतर से बेहतर तरीके से कार्यान्वित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है, तथापि सदन मे व्यक्त किए गए विभिन्न विचारो का उन पर गहरा प्रभाव रहता है और उनसे उनका मार्गदर्शन होता है और इसी को ससद् की मंत्रणा दात्री भूमिका (Advisory Role) का नाम दिया जा सकता है ।

राष्ट्रीय महत्त्व के मामले सुलझाना और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करना

"मुडे-मुंडे भिन्नेमंत" हर प्राणी का अपना मन होता है, अपने विचार और हित होते है और इस विभिन्न मत-मतान्तर वाले देश मे ऐसा होना स्वाभाविक भी है । लोकतन्त्र मे विभिन्न मत-मतान्तरो वाले समुदाय में शक्ति के लिए सघर्ष होना भी अनिवार्य है । किन्तु इस टकराव को एक सार्वजनिक मच (National Forum)

पर एकत्र होकर बातचीत के माध्यम से सुलझाना सरल होता है। संसद् राष्ट्रीय महत्त्व का एक ऐसा ही सार्वजनिक मंच है जो प्रमुख मध्यस्थता शक्ति (Mediatory Force) के रूप में विकसित हुआ है। राष्ट्रीय स्तर की कितनी ही बड़ी-बड़ी समस्याएं, जिनमें लगता था कि यह देश टूट के बिखर जाएगा, यहाँ वाद-विवाद (Debate) द्वारा, परस्पर चर्चाओं (Discussions) द्वारा सुलझी हैं। संसद् एक ऐसी सफल प्रणाली के रूप में विकसित हुई है, जो शक्ति-संघर्ष (Power-Struggle) के लिए, राजनीतिक गतिविधि को स्पष्ट करने के लिए या परस्पर विरोधी भूमिकाएं (Opposite Roles) प्रदान करने के लिए एक वैध मंच बन जाती है और संसदीय नियम तथा प्रक्रियाओं के कारण जहां पहले की गरमा-गरमी मन में समझौताकारी (Conciliatory) सिद्ध होती है। ऐसे में एक मंच पर एकत्र होने से मन का मैल धुलता है, पक्ष-विपक्ष दोनों में एक ही परिवार के छोटे-बड़े भाई होने की भावना जन्म लेती है और दोनों ही पक्ष अपनी अपनी भूमिकाएं निभाते हुए एक दूसरे को स्वीकार करते हैं। टकराव के समाधान की यह भूमिका निभाते हुए संसदीय संस्था राष्ट्रीय एकता (National Integration) लाने वाली और मध्यस्थता करने वाली महान संस्था का काम करती है। हमारे अनेक मत-मतान्तरों वाले समाज के प्रसंग में, टकराव का समाधान करने और एकता लाने वाली संसद् की भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

संसद् भवन का केन्द्रीय कक्ष से (सेन्ट्रल हाल) अपने आप में एक लघु भारत का प्रतिनिधित्व करता है। यहां देश के सभी भागों के संसद-सदस्य, चाहे उनकी जाति, मत, क्षेत्र या धर्म कोई भी हो, अनौपचारिक रूप से मिलते हैं और सारे देश को प्रभावित करने वाली समस्याओं पर व्यक्तिगत रूप से या दलों में विचार करते हैं। इससे राष्ट्रीय एकता की इतनी अधिक भावना पैदा होती है जो अन्यत्र पैदा नहीं हो सकती। देखने में आया है कि अपने को अलग कहने वाले, स्थानीय स्तर पर अपना अलग अस्तित्व चाहने वाले सदस्य जब सेंट्रल हाल में पहुंचते हैं तो "विविधता में एकता" का रंग उन पर चढ़ जाता है और पूर्ववर्ती अलगाव की भावना पीछे छूट जाती है। वहां वातावरण ही ऐसा होता है कि सदस्य स्थानीय स्तर की संकुचित भावनाओं को अपने-आप त्यागने पर बाध्य हो जाता है और बृहद् राष्ट्रीय धारा में (Broad National Stream) में अपने आपको सम्मिलित करने के लिए प्रेरित होता है।

विधि निर्माण करना भारत में विधि का शासन है और विधि-निर्माण विधान मण्डल का दायित्व है। भारत के संविधान के अधीन, राष्ट्रीय स्तर पर संसद् सर्वोच्च विधायी निकाय (Supreme legislative Body) है। संविधान की सातवीं अनुसूची से संघ (union) तथा समवर्ती सूचियों (Concurrent list) में इसके लिए आवंटित अनेक विषयों पर यह विधान बना सकती है।[15]

इसके अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियों (Residuary Powers) के क्षेत्र का भी संविधान में उल्लेख किया गया है। यदि कोई विषय इस क्षेत्र में आता है अर्थात् जो संघ, राज्य और समवर्ती सूचियों में से किसी में भी नहीं आता है तो संसद् उस पर कानून बना सकती है। राज्य सूची के विषयों पर भी केन्द्र को, कुछ विशेष परिस्थितियों में, कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

विधान केवल राजनीतिक स्थिरता कायम करने के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं होते, बल्कि उनका महत्व आर्थिक-सामाजिक (Socio Economic) परिवर्तन लाकर परम्परागत विषमताओं और शोषण से लोगों को मुक्ति दिलाने में भी है। अतः समाज में, विशेषकर हमारे जैसे परिवर्तनशील समाज में, सामाजिक परिवर्तन के लिए आधार एवं माध्यम की व्यवस्था केवल संसद् ही कर सकती है। सामाजिक विधान (Social Legislation) विधि-निर्माण का प्रमुख क्षेत्र है, ऐसा विधान जिसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाना तथा आर्थिक विकास करना हो। सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन (Socio-Economic changes) को ठोस रूप देने के लिए वर्तमान संस्थाओं का पुनर्गठन करना होगा और विभिन्न सामाजिक शक्तियों और वर्गों के परस्पर विरोधी हितों के बीच एक नया सतुलन लाना होगा। ऐसा संसद् द्वारा विधान बना कर ही किया जा सकता है। वास्तव में, संसद् सामाजिक सुधार (Social Reforms) लाने में सबसे आगे रही है। संविधान के प्रारम्भ में संसद् द्वारा समाज सुधार के अनेक विधान बनाए गए हैं अर्थात् ऐसे विधान जिनमें समाज के पिछड़े, पद-दलित या परम्परागत रूप से दुर्व्यवहार के शिकार वर्गों के लिए आरक्षण (Reservation), सामाजिक सुरक्षा (Social Security), निर्योग्यताओं के निवारण (Removal of Disabilities), न्यूनतम मजदूरी (Minimum wages), वृद्धावस्था पेंशन, आवास आदि के रूप में गारंटी और लाभों के विशेष उपबन्ध किए गए हैं।

लगभग सभी विधेयक (Bill) जो कानून बनते हैं, सरकार द्वारा लाए जाते हैं। अतः विधान बनाने के मामले में भी कार्यपालिका ही पहल करती है। यों, पेश किये गये विधेयक पर संसद् में चर्चा होती है, पुनरीक्षण निरीक्षण के पश्चात् संशोधन पेश किए जाते हैं और उनको पारित किया जाता है किन्तु मूलतः उनका प्रस्ताव और प्रारूप पूर्णतया कार्यपालिका और प्रशासनिक विभागों द्वारा ही तैयार किया जाता है।

"विधायी प्रस्ताव सूत्रबद्ध करने का अर्थ है तकनीकी स्तर पर तैयारी करना और विभिन्न स्पर्द्धी दावों तथा आधारों में तालमेल बिठाना, यह कार्य, इसके स्वरूप को देखते हुए विधान मण्डल में नहीं किया जा सकता क्योंकि तकनीकी सामग्री तथा आँकड़े, स्टाफ प्रशासनिक अनुभव एवं विशेषज्ञता जैसे विधान के लिए महत्वपूर्ण समाधन केवल कार्यपालिका को ही उपलब्ध होते हैं।"[19]

इस प्रकार सर्वविदित है कि विधि के निर्माण में पहल कदमी करना कार्यपालिका का ही काम है और यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि सरकार के कार्यक्रमों, नीतियों के कार्यान्वयन में कठिनाइयों, अड़चनों का अनुभव कार्यपालिका ही को करना होता है और उन कठिनाइयों, अड़चनों को दूर करने के लिए कार्यपालिका ही विधान तैयार करती है। संसद् की भूमिका विधि-निर्माण की नहीं बल्कि कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत किए गए विधेयकों (Bills), नियमों (Rules) तथा विनियमों (Regulations) पर विचार करने, उनका पुनरीक्षण और निरीक्षण करके उन्हें पारित करने की है। इस प्रकार संसद् की भूमिका विधि-निर्माण (Legislation) की भूमिका न होकर वैधीकरण (Legalisation) की भूमिका है।

संसद के पास इतना समय भी नहीं होता कि वह विधि-निर्माण के कार्य में लग सके, दूसरी ओर विधि-निर्माण की एक विशिष्ट तकनीक होती है, विशेषज्ञ क्षमता होती है जो संसदीय व्यस्तताओं के बीच संसद् के लिए प्राप्त करना सहज नहीं होता है। यों भी विधि-निर्माण में केवल एक संस्था का ही योगदान नहीं होता है। संसद् ऐसे बहुत से निकायों में से एक है जो इस भूमिका में भागीदार है। विधि के बारे में आधुनिक विचार यह नहीं है कि यह सामान्य रूप से लागू किए जाने वाले नियमों का समूह है इत्यादि, विधि एक प्रक्रिया (प्रोसेस) है—एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया—जो प्रारम्भिक सामाजिक प्रवृत्तियों से प्रारम्भ होती है, फिर महसूस की जाने वाली पहली आवश्यकता और कार्यवाही की मांग, फिर नीति-निर्माताओं की धारणा और राजनीतिक शक्तियों और विभिन्न हितों वाले ग्रुपों की भूमिका, फिर विधेयक का प्रारूप तैयार करने वाले विधि एवं अन्य विभागों की भूमिका, फिर सत्ताधारी दल, सम्बद्ध मंत्री और मंत्रिमण्डल, संसद् के सदनों और उनकी समितियों और फिर राष्ट्रपति की भूमिका, और फिर नियम तथा विनियम बनाया जाना, फिर प्रशासन द्वारा वास्तविक क्रियान्वयन और, विवाद की स्थिति में, न्यायालयों द्वारा व्याख्या और न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review)। प्रत्येक अवस्था में वास्तव में विधि का निर्माण होता जाता है और उसमें रूपभेद होता रहता है। इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि विधि-निर्माण का कार्य व्यक्तियों का कोई एक निकाय या राज्य का कोई एक अंग करता है, राज्य के तीनों अंग—कार्यपालिका (Executive), विधानमण्डल (Legislature) और न्यायपालिका (Judiciary), मिलकर विधान निर्माण की भूमिका निभाते हैं।[17]

संविधायी भूमिका (Constitutional Role) (संविधान में संशोधन करना). भारतीय संविधान में संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि वह संविधान में भी संशोधन कर सकती है। यहाँ तक कि संविधान के संशोधन (Amendment) की जो प्रक्रिया (Process) है उसको भी संशोधित कर सकती है। [illegible] संविधान जनता के लिए है और संविधान में संशोधन भी लोगों की बढ़ती हुई आकांक्षाओं के अनु-

रूप ही किया जाना है। संविधान में संशोधन करने के लिए विधेयक (Bill) संसद् के किसी भी सदन में प्रस्तुत (Introduce) किया जा सकता है। यह अनिवार्य है कि संविधान में संशोधन करने वाला विधेयक संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किया जाना चाहिए। संसद द्वारा संविधान के उपबन्धों में संशोधन विशेष बहुमत से किया जा सकता है, अर्थात् प्रत्येक सदन को कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा। कुछ मामलों में ही अर्थात् सातवीं अनुसूची को सूचियों, संसद् में राज्यों के प्रतिनिधित्व, अनुच्छेद 368 आदि में संबंधित उपबन्ध, संसद् के प्रत्येक सदन (House) द्वारा निर्धारित विशेष बहुमत से संशोधन विधेयक पास किए जाने के पश्चात् कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा उनके अनुसमर्थन (Approval) की आवश्यकता होती है। संविधान संशोधन विधेयक को विधिवत रूप से पास अथवा अनुसमर्थित किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के समक्ष पेश किए जाने पर उसे उस पर अपनी अनुमति प्रदान करनी पड़ती है और राष्ट्रपति के पास अपनी *अनुमति रोकने या विधेयक पर पुनर्विचार के लिए उसे सदन को लौटाने* का कोई विकल्प (Alternative) नहीं है जैसे कि साधारण विधेयकों के मामले में *होता है।*[19] *संसद् सामान्य कानून पास करके संविधान में संशोधन* किए बिना उसके कुछ उपबंधों में परिवर्तन कर सकती है या उनके प्रवर्तन को *निष्प्रभावी (Annul) बना सकती है। ऐसे संशोधन* को किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती, यदि उसमें संविधान के मूल *तत्वों (Basic Principals) में परिवर्तन या उनका हनन् नहीं होता।*

1950 से 1972 तक की अवधि के दौरान, मूल अधिकारों (Fundamental Rights) में संशोधन कर सकने का प्रश्न तीन अलग-अलग मामलों में उच्चतम-न्यायालय के समक्ष आया, अर्थात् शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ,[20] सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य,[21] और गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य,[22] गोलक नाथ के मामले में उच्चतम न्यायालय का फैसला होने तक, विधि इस प्रकार थी :

(एक) संविधान संशोधन अधिनियम साधारण विधि नहीं होता और उसे संसद् द्वारा साधारण विधायी शक्तियों के बजाय अपनी संविधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए पास किया जाता है। संविधायी शक्ति "संसद्" में ही निहित होने के कारण संविधान में संशोधन के प्रयोजनार्थ कोई पृथक् संविधायी निकाय नहीं है।

(दो) संशोधन करने की शक्ति पर कोई निर्बन्धन नहीं है, अर्थात् संविधान का *कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जिसमें संशोधन न किया जा सकता हो।* अनुच्छेद 368 पूर्णतया सामान्य है और उसके द्वारा संसद् को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है और ऐसी शक्ति बिना किसी अपवाद के है।

(तीन) संविधान (भाग 3) के अधीन जिन मूल अधिकारों की गारंटी दी गई है वे संविधान में संशोधन करने की संसद् की शक्ति के अध्याधीन हैं।

गोलक नाथ के मामले में यह ऐतिहासिक निर्णय दिया गया था कि मूल अधिकारों संबंधी परिच्छेद संविधान में एक अद्वितीय स्थान रखता है। मूल अधिकारों (Fundamental Rights) को संविधान में कालातीत तथा स्थायी स्थान दिया गया है और उनका उल्लंघन नहीं हो सकता और सामान्य विधायी शक्ति (Legislative Power) प्राप्त कार्यपालिका द्वारा उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।

गोलक नाथ मामले के पश्चात् हुए संशोधन की वैधता को केशवानन्द भारती बनाम केरल सरकार[23] के मुकदमे में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय की सम्पूर्ण पीठ (Whole Bench) ने इस पर विचार किया और बहुमत से गोलक-नाथ के मामले में अपने पूर्व निर्णय को रद्द किया परन्तु साथ ही यह भी निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 संसद् को यह अनुमति नहीं देता कि वह संविधान के मूल स्वरूप के आधारभूत ढांचे (Basic Structure) में परिवर्तन कर सके। परन्तु मूल ढांचा क्या है इसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई और यह एक खुला प्रश्न रहा।[24]

केशवानन्द के मामले में इस फैसले के बाद संसद् की संशोधन की शक्तियों की "मूल तत्व" की सीमा का प्रभाव कम करने के लिए संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 368 में खण्ड (4) तथा (5) सम्मिलित कर दिए गए। उपरोक्त खण्डों में कहा गया है कि (क) अनुच्छेद 368 (1) के अधीन संविधान की संशोधन शक्ति (Amendment Power), जो एक "संविधायी शक्ति" (Constituent Power) है, की स्पष्ट अथवा अन्तर्निहित कोई भी सीमाएं नहीं हैं और कि (ख) इसलिए किसी भी संविधान संशोधन अधिनियम का किसी भी आधार पर न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) नहीं किया जा सकता। परन्तु उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) द्वारा खण्ड (4) तथा (5) को शून्य करार देकर मिनरवा मिल्स बनाम भारतीय संघ के मामले में मूल ढांचे के सिद्धान्त के लागू होने की बात की फिर पुष्टि की गई और उसका आधार यह था कि इस संशोधन द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन को पूर्णतया समाप्त किया जा रहा था जो संविधान का "मूल तत्व" था।

केशवानन्द के मामले में, न्यायाधीश सीकरी ने संविधान के मूल तत्वों को इस प्रकार सारणीबद्ध करने का प्रयास किया था-[25]

(एक) संविधान की सर्वोच्चता

(दो) गणतन्त्रात्मक और लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली

(तीन) संविधान का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप।

(चार) शक्तियो का पृथक्करण, और ।

(पाच) सविधान का सघीय स्वरूप ।

उसी मामले मे, न्यायाधीश हेगड़े और न्यायाधीश मुखर्जी ने भारत की प्रभुसत्ता एव एकता, हमारी राजनीतिक व्यवस्था के लोकतन्त्रात्मक स्वरूप और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सविधान के मूल ढाचे के तत्त्वो मे जोड दिया । उनका विश्वास था कि कल्याणकारी राज्य और समतावादी समाज का निर्माण करने के लिए जनादेश को समाप्त करने की शक्ति ससद् को प्राप्त नही है ।[26] न्यायाधीश खन्ना ने भी कहा कि ससद् हमारी लोकतन्त्रात्मक सरकार को तानाशाही सरकार मे या वशागत राजतन्त्र मे नही बदल सकती, न ही लोक सभा और राज्य सभा का उत्सादन करने की अनुमति है । इसी प्रकार राज्य का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप समाप्त नही किया जा सकता ।[27]

इन्दिरा गांधी बनाम राज नारायण के मामले मे न्यायाधीश चन्द्रचूड ने निम्न तत्त्वो को सविधान के मूल ढाचे के मूल तत्त्व पाया :[28]

(एक) प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य (Sovereign Democratic Republic) के रूप मे भारत :

(दो) दर्जे और अवसर की समानता (Equality of Status and of opportunity) :

(तीन) धर्मनिरपेक्षता (Secularism) और अन्त करण की स्वतन्त्रता: और

(चार) विधि द्वारा शासन ।

उसी न्यायाधीश ने मिनरवा मिल्स के मामले मे "ससद् की सशोधी शक्तियो" "न्यायिक पुनरविलोकन" और "मूल अधिकारो तथा निदेशक सिद्धान्तो के बीच सतुलन (Balance between fundamental Rights & Directive Principles)" को सविधान के मूल तत्वो की सूची मे जोड दिया ।[29]

कुछ मामलो मे न्यायाधीशो मे मतभेद है कि कोई तत्त्व विशेष मूल तत्त्व है या नही । उदाहरणार्थ, मुख्य न्यायाधीश राय ने निर्बाध एव निष्पक्ष निर्वाचन के सिद्धान्त को मूल ढाचे का तत्त्व नही माना, जबकि न्यायाधीश खन्ना ने उसी मामले मे इस सिद्धान्त को सविधान का मूल तत्त्व माना है ।[30] न्यायाधीश चन्द्रचूड इस विचार से सहमत नही हुए कि सविधान की उद्देशिका मूल ढाचे की कुन्जी है ।[31] दूसरी ओर, न्यायाधीश बेग ने कहा कि न्यायालय सविधानिक वैधता का परीक्षण मुख्यतया सविधान की उद्देशिका से कर सकता है । उनका विश्वास था कि उद्देशिका एक ऐसा मापदण्ड है जिसे सवैधानिक संशोधनो पर भी लागू किया जा सकता है ।[32] इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वय न्यायाधीशो ने भी इस बारे मे कोई सर्वसम्मत व्यवस्था नही पैदा की ।

अब तक संविधान में 60 संशोधन किए जा चुके हैं। और यह सब कुछ संसद् की संविधायी शक्तियों (Constitutional Powers) का प्रयोग करते हुए और प्राय. न्यायालयों के फैसलों और उनकी संवैधानिक उपबन्धों (Constitutional Provisions) की व्याख्याओं के परिणामस्वरूप पैदा हुई अप्रत्याशित कठिनाइयों और स्थितियों का सामना करने के लिए किया गया है। कभी-कभी संविधान के आशय-विशेष उपबन्धों के पीछे संविधान के निर्माताओं (Framers) के आशय को स्पष्ट करने के लिए और संविधान के पाठ को स्वीकृत राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के निकट लाने के लिए उसमें संशोधन करना आवश्यक हो जाता है।

नेतृत्व प्रदान करना संसद् देश के नेतृत्व का प्रशिक्षण स्थल है, इसमें दो राय नहीं हो सकती। संसद सदस्य विभिन्न संसदीय प्रक्रियाओं का अनुसरण करते हुए व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं और कुशल प्रशासक बनते हैं। संसद् की संसदीय समितियां एक ऐसा कार्यक्षेत्र है, जिसमें कार्य करते हुए सदस्य विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष जानकारी प्राप्त कर उन विषयों के विशेषज्ञ बन जाते हैं। ऐसे सदस्य प्रधानमन्त्री द्वारा अपनी मन्त्रिपरिषद् में शामिल किये जाते हैं जो बड़ी कुशलता से अपने कृत्यों को सम्पन्न करते हैं। यह एक ऐसा मन्च है जहां सदस्यों को अपनी योग्यता, कार्य-कुशलता और तर्क शक्ति को अभिव्यक्त करने के सुअवसर प्राप्त होते हैं जिनमें संसदीय प्रणाली और प्रक्रियाएं सुदृढ़ बनती हैं।

संदर्भ

1 सी हर्बर्ट पार्लियामेंट 1948, पृष्ठ 103
2 भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75, 114-116 तथा 265
3 देखिये इन्टर संसदीय संघ (संघ) पार्लियामेंट्स आफ द वर्ल्ड, लन्दन, 1976, पृ 801-802 और 825-827
4 लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम, छठा स. 1980 नियम 198
5 वही, नियम 56
6 अनु 114-116 और 265
7 सुभाष काश्यप, "कमेटीज इन द इण्डियन लोकसभा" जांन डी लीज एवं मालकम शॉ, कमेटीज इन लेजिस्लेचर्स, ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, दरहम।
8. एम एन कोल, पार्लियामेंटरी इन्स्टीट्यूशन्स एण्ड प्रोसीज्योर्स, नेशनल, नई दिल्ली, 1978, पृ 14
9 एम एन मलकर, प्रिन्सिपल्स आफ द वर्किंग आफ पार्लियामेंट, मेट्रोपोलिटन, नई दिल्ली, 1977, पृ 160-84
10 सुभाष काश्यप, इन्फार्मेशन मेनेजमेंट फार पार्लियामेंटेरियन, पब्लिक पब्लिक ओपीनियन सर्वेज, 18, 6, 1973, और मीड्स आफ इन्फारमेशन एंड द

डिस्पोज़ल ग्राफ द एम. पी. पर उनकी रिपोर्ट द मेम्बर ग्राफ पालियामेंट–हिज रिक्वायरमेंट्स फार इन्फोरमेशन इन द माडर्न वर्ल्ड, खण्ड 1 ग्रौर 2, ग्रन्तर ससदीय सघ जनेवा, 1973 (ग्रन्तर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी के शोध-पत्र ग्रौर कार्यवाही वृत्तान्त)

11 शकधर, ग्लिम्पसिज, ऊपर उद्धृत, पृ. 186—87

12 काश्यप, इन्फारमेशन मेनेजमेंट ऊपर उद्धृत।

13 काश्यप, कमेटीज, ऊपर उद्धृत, पृ 296

14 ग्रनु 245–246 ग्रौर सातवी-ग्रनुसूची

15. सुभाष काश्यप *ह्यूमन राईट्स एण्ड पालियामेंट*, मेट्रोपोलिटन, नई दिल्ली, 1978, ग्रध्याय 9, "ससद् ग्रौर सामाजिक–ग्रार्थिक विधान, पृ. 124–133

16 *सुभाष काश्यप, ग्रन्तर ससदीय सघ मे (सम्पा). ह्यू लेजिस्लेट्स इन द माडर्न वर्ल्ड*, जनेवा, 1976, पृ 68

17 वही, पृ 65—69

18 ग्रनु 368

19. काश्यप, मन राईट्स, ऊपर ह्यउद्धृत, ग्रध्याय 10, ससद की सविधायी शक्ति ग्रौर न्यायिक पुनरविलोकन, पृ 134—143

20 ए ग्राई ग्रार 1951, उच्चतम न्यायालय, 458

21 ए ग्राई ग्रार 1965, उच्चतम न्यायालय, 845

22 ए ग्राई ग्रार 1967, उच्चतम न्यायालय, 1643

23 ए ग्राई ग्रार 1963, उच्चतम न्यायालय, 1461

24 सुभाष काश्यप, पालियामेंट एण्ड रीसेंट कान्स्टीट्यूशनल डवलपमेंट्स इन इण्डिया, द टेबल, (लन्दन), खण्ड, 24, 1976 पृ. 15–18

25 केशवानन्द वनाम केरल राज्य, ए.ग्राई.ग्रार. 1973, उच्चतम न्यायालय 1461, पैरा 302

26 वही, पैरा 862

27. वही, पैरा 1437

28 इन्दिरा नेहरू गाधी बनाम राज नारायण, ए.ग्राई.ग्रार. 1975, उच्चतम न्यायालय 2299, पैरा 665

29. मिनरवा मिल्स लि बनाम भारतीय सघ, ए.ग्राई.ग्रार. 1980 उच्चतम न्यायालय 1789

30. इन्दिरा गाधी का मामला, ऊपर उद्धृत, पैरा 55 ग्रौर 213

31. वही, पैरा 665

32. वही, पैरा 623

□□□

3

निर्वाचन और सदनों का गठन

संसदीय लोकतन्त्र में निर्वाचन के माध्यम से ही जन-प्रतिनिधियों द्वारा विधान मण्डल तथा संसद् का गठन होता है। विधान मण्डल और संसद् ही राज्यों में और केन्द्र में बैठ कर कानून बनाते हैं। इन्हीं सदनों में सदस्यों का बहुमत जिस दल को मिलता है उस दल की सरकार बनती है और वह सरकार संसद् द्वारा बनाए गए कानूनों के आधार पर शासन चलाती है। विधान सभाओं और संसद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव किया जाता है तथा संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा उपराष्ट्रपति चुने जाते हैं। राष्ट्रपति राज्यपालों और उच्च तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। इस प्रकार शासन का सारा ढांचा (Structure) निर्वाचन के ही आधार पर खड़ा किया जाता है, और इसीलिए संसदीय लोक तन्त्र में निर्वाचन का महत्त्व सर्वोपरि है।

निर्वाचन (Election) के लिए उपयुक्त तन्त्र की आवश्यकता होती है। संविधान में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) का उपबन्ध है। ऐसे प्रत्येक नागरिक को मतदान करने का पूरा अधिकार है जिसने 18 वर्ष* या इससे अधिक की आयु प्राप्त कर ली हो, चाहे उसका धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान कोई भी हो। निर्वाचन मुक्त और निष्पक्ष हो सके यह स्वस्थ लोकतन्त्र के लिए अनिवार्य है। इसलिए ये एक स्वतन्त्र प्राधिकरण के अधीक्षण और निर्देश के अधीन कराए जाते हैं। यह प्राधिकरण निर्वाचन आयोग (Election Commission) कहलाता है। भारत जैसे विशाल आकार वाले (लगभग 33 लाख वर्ग किलोमीटर), भारी जनसंख्या वाले (अनुमानों के अनुसार लगभग 80 करोड़) और इतने अधिक मतदाताओं (Voters) वाले (करीब 50 करोड़) देश में निर्वाचन करना एक बहुत बड़ा काम है।[1] संसद् के दोनों सदनों के लिए और राज्यों के

---

*संविधान (इकसठवां संशोधन) अधिनियम, 1988 द्वारा मताधिकार की आयु 18 वर्ष की गई। इसके पहले यह 21 वर्ष थी।

विधानमण्डलों के लिए निर्वाचकों के अतिरिक्त, निर्वाचन आयोग भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के उच्च पदों के लिए भी निर्वाचन कराता है।

निर्वाचन आयोग (Election Commission) निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त (Chief Election Commissioner) और ऐसे अन्य निर्वाचन आयुक्तों से बनता है जिनको, संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। निर्वाचन आयोग उक्त सभी संस्थाओं और पदों के निर्वाचनों के लिए निर्वाचक-नामावली (Electoral Roll) तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन, अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का कार्य करता है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त के कर्त्तव्यों को देखते हुए यह अनिवार्य हो जाता है कि इस पद पर ऐसे विशिष्ट व्यक्ति को नियुक्त किया जाए जिसे पर्याप्त प्रशासनिक अनुभव हो, विधि का ज्ञान हो और जो एक गणमान्य व्यक्ति भी हो। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर ही हटाया जा सकता है, जिस रीति (महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा (Process of Impeachment) से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है, अन्यथा नहीं। आयोग (Commission) के सदस्यों की सेवा की शर्तों में उनकी नियुक्ति के पश्चात् उनके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किए जा सकते। अन्य निर्वाचन आयुक्तों या प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त (Regional Election Commission) को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही पद से हटाया जा सकता है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को आयोग को उतने अधिकारी और कर्मचारी वृन्द उपलब्ध कराने होते हैं जितने उनके कर्त्तव्यों तथा दायित्वों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक हों और निर्वाचन संबंधी कृत्यों का निर्वहन करते हुए ऐसे सब अधिकारी तथा कर्मचारीवृन्द निर्वाचन आयोग के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी होते हैं।[2]

निर्वाचन आयोग प्रत्येक राज्य सरकार से परामर्श करके हर एक राज्य के लिए वहां के एक अधिकारी को मुख्य निर्वाचन अधिकारी के रूप में नामनिर्दिष्ट (Nominate) करता है जो निर्वाचन आयोग के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अध्यधीन रहते हुए निर्वाचक नामावलियों (Electoral Rolls) तैयार करके, उनका पुनरीक्षण (Revision) करने और उनमें शुद्धियां करने के काम का पर्यवेक्षण (Supervision) करता है तथा सभी निर्वाचनों का संचालन करता है। इसी प्रकार प्रत्येक जिले के लिए एक जिला निर्वाचन अधिकारी निर्दिष्ट किया जाता है जो राज्य के मुख्य निर्वाचन अधिकारी के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अध्यधीन अपने जिले में निर्वाचनों से संबंधित सारे कार्य का समन्वय तथा अधीक्षण करता है।[3] आम तौर पर जिला कलक्टरों या उपायुक्तों (Deputy Commissioners)

को जिला निर्वाचन अधिकारी नामजद किया जाता है। जिला निर्वाचन अधिकारी हर एक मतदान केन्द्र (Booth) के लिए एक पीठासीन अधिकारी (प्रेजाइडिंग आफिसर) और मतदान अधिकारी (Booth Officer) नियुक्त करते हैं। पीठासीन अधिकारी का साधारण कर्तव्य मतदान केन्द्र में व्यवस्था बनाए रखना और यह सुनिश्चित करना होता है कि मतदान निर्बाध और निष्पक्ष हो।[4] मतदान केन्द्र के मतदान अधिकारियों का यह कर्तव्य होता है कि वे ऐसे केन्द्र के पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer) को उसके कृत्यों के पालन में सहायता करें।[5]

निर्वाचन आयोग, हर संसदीय तथा विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र (Constituency) के लिए और राज्य सभा में किसी स्थान या किन्हीं स्थानों को भरने के लिए, राज्य सरकार के परामर्श से, एक रिटर्निंग अधिकारी नाम निर्दिष्ट (Nominate) करता है। रिटर्निंग अधिकारी को ऐसे सब कार्य करने का अधिकार प्राप्त है जो निर्वाचन विधियों के अनुसार निर्वाचन का प्रभावी रूप से संचालन करने के लिए आवश्यक हो।[6]

सदस्यों का निर्वाचन लोक सभा का कार्यकाल पांच वर्ष है किन्तु राष्ट्रपति उसका विघटन किसी समय पहले भी कर सकते हैं। अतः लोक सभा के लिए आम चुनाव या तो लोक सभा के भंग किये जाने पर कराये जाते हैं या जब उसकी कार्यावधि पूरी होने वाली हो तब।[7]

संविधान के उपबन्धों (Constitutional Provisions) के अधीन संसद् को यह शक्ति प्राप्त है कि वह संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों के संबंध में, निर्वाचक-नामावलियां (Electoral Rolls) तैयार करने, निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन (Delimitation of Constituencies) करने और ऐसे सदन या सदनों का सम्यक् गठन सुनिश्चित करने के लिए अन्य सभी आवश्यक विषयों हेतु विधान बना सकती है।[8] संविधान में प्रदत्त इस शक्ति का अनुपालन करते हुए संसद् द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, (Peoples of Representative Act) 1951 अधिनियमित किये गये हैं और निर्वाचनों का रजिस्ट्रीकरण नियम (Registration of Election Rules), 1960 और निर्वाचनों का संचालन नियम (Conduct of Election Rules), 1961, उक्त अधिनियमों के उपबन्धों के पूरक हैं। इन अधिनियमों और नियमों को अद्यतन बनाने के लिए समय-समय पर आवश्यकतानुसार इनमें संशोधन किए जाते हैं।

सदस्यता के लिए अर्हताएं (Qualifications) और निर्हताएं (क्वालिफिकेशन्स और डिस्क्वालिफिकेशन्स) - कोई व्यक्ति संसद् के लिए चुने जाने के लिए अर्हित तभी होता है जब—

(क) वह भारत का नागरिक हो

(ख) वह राज्य सभा के स्थान के लिए कम से कम 30 वर्ष की आयु का

और लोक सभा के स्थान के लिए कम से कम 25 वर्ष की आयु का हो; और

(ग) वह भारत के किसी संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र के लिए निर्वाचक हो, परन्तु राज्य-सभा के मामले में जिस राज्य से या संघ राज्यक्षेत्र में वह चुना जाता हो, उसमें निर्वाचक के रूप में पंजीकृत हो।

अन्य अर्हताएं संसद्, विधि द्वारा निर्धारित कर सकेगी।[9]

सदस्य बनने के लिए कुछ अनर्हताएं (Disqualifications) भी हैं। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य बनने के लिए निरर्हित होगा, यदि—

(क) वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता हो,

(ख) वह विकृतचित्त हो (Unsoundmind),

(ग) वह अनुन्मोचित दिवालिया हो *(Undischarged insolvent)*,

(घ) वह भारत का नागरिक न हो,

(ङ) वह संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि (Law) द्वारा या उसके अधीन निरर्हित कर दिया गया हो, और

(च) वह दल-बदलने (Defection) के आधार पर निरर्हित करार दिया गया हो।[10]

कोई व्यक्ति, यदि भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार का मन्त्री है तो *उसको लाभ का पद धारण करने वाला नहीं माना जाता।*[11] उपरोक्त अपेक्षताओं के अतिरिक्त, निर्वाचन विधियों में कुछ अन्य निरर्हिताएं भी निर्धारित की गई हैं। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (Peoples Representative Act), 1951 के अधीन यदि कोई व्यक्ति अन्य बातों के साथ-साथ विभिन्न सम्प्रदायों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देने के कारण दोष-सिद्ध किया गया हो, या घूस के अपराध के लिए दोष सिद्ध किया गया हो, या अस्पृश्यता का प्रचार करने और उसका पालन करने के कारण दण्डित किया गया हो तो वह सदस्य के रूप में चुने जाने में निरर्हित होता है। इसके अतिरिक्त, किसी अपराध के कारण दोष-सिद्ध किया गया कोई व्यक्ति जिसे कम से कम दो वर्षों के लिए कारावास का दण्ड दिया गया हो, वह व्यक्ति अपनी रिहाई के पश्चात् पांच वर्षों की अवधि के लिए अनर्ह रहता है। भ्रष्टाचार या राज्य के प्रति-वफादारी के लिए बर्खास्त किया गया सरकारी कर्मचारी अपनी बर्खास्तगी की तिथि से पांच वर्षों की अवधि के लिए अनर्ह रहता है।

निर्वाचन रीति

राज्य सभा : राज्य सभा में 238 निर्वाचित स्थान हैं। राष्ट्रपति द्वारा खण्ड (3) के उपबन्धों के अनुसार 12 सदस्यों का नाम निर्देशन किया जाता है। राज्य सभा में राज्यों के (और संघ राज्य क्षेत्रों के) प्रतिनिधियों द्वारा भरे जाने वाले स्थानों का आबटन चौथी अनुसूची में इस निमित्त अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार होता है। इसके सदस्य राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका निर्वाचन प्रत्येक राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति (Proportional Representation System) के अनुसार एक संक्रमणीय मत (Single transferable Vote) द्वारा किया जाता है। इसका उद्देश्य अल्पसंख्यक समुदायों तथा दलों के लिए कुछ प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करना है।[12]

राज्य सभा का विघटन (Dissolution) नहीं होता। उसके सदस्यों में से "यथाशक्य निकटतम एक तिहाई, संसद् निर्मित विधि द्वारा बनाए गए तद्विषयक उपबन्धों के अनुसार प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर यथाशीघ्र निवृत्त हो जाते हैं।[13] सदस्यों का कार्यकाल उस तिथि से प्रारम्भ होता है जिस तिथि को सरकार निर्वाचित तथा नाम निर्देशित सदस्यों के नामों की घोषणा गजट में करती है।[14]

राज्य सभा के उन सदस्यों के स्थानों को भरने के प्रयोजन के लिए, जो अपनी पदावधि की समाप्ति के पश्चात् निवृत्त हो रहे हैं, राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग द्वारा सुझाई गई तारीख को, अधिसूचना (Notification) जारी करके, निर्वाचकों (Electors) से राज्य सभा के सदस्यों को चुनने के लिए कहता है। परन्तु इस धारा के अधीन कोई भी अधिसूचना उस तारीख से तीन मास से अधिक समय से पूर्व नहीं निकाली जाती जिस तारीख को निवृत्त होने वाले सदस्यों की पदावधि समाप्त होनी हो।[15] रिटर्निंग अधिकारी, निर्वाचन आयोग के अनुमोदन से मतदान का स्थान निर्धारित और अधिसूचित करता है।

लोक सभा : नई लोक सभा गठित करने के प्रयोजन के लिए साधारण निर्वाचन वर्तमान सदन की अस्तित्वावधि समाप्त होने के करीब या उसके विघटन (Dissolution) पर किये जाते हैं। निर्वाचन प्रक्रिया लोकसभा की अवधि समाप्त होने की तारीख से छः माह पूर्व प्रारम्भ हो सकती है। उक्त प्रयोजन के लिए राष्ट्रपति, राजपत्र (Gazette) में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा, निर्वाचन आयोग द्वारा सुझाई गई तिथि को, सब संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों से कहता है कि वे इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार सदस्य निर्वाचित करें। अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात्, निर्वाचन आयोग (Election Commission) नामांकन-पत्र (Nomination Paper) दायर करने, उनकी छानबीन करने, उन्हें वापस लेने और मतदान के लिए तिथियां निर्धारित करता है।[16] निर्वाचन के लिए प्रत्येक

उम्मीदवार को 500 रुपये की राशि या जहां उम्मीदवार अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है, वहाँ 250 रुपये की राशि उसके नामांकन के विधिमान्यकरण के लिए जमा करानी पड़ती है। यदि वह उम्मीदवार अपने निर्वाचन-क्षेत्र में न्यूनतम निर्धारित प्रतिशत मत प्राप्त करने में असफल रहता है तो वह राशि जब्त कर ली जाती है।[17] निर्वाचन के लिए प्रत्येक अभ्यर्थी (Applicant) को संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा की शपथ लेनी होती है या प्रतिज्ञान (Oath or Affirmation) करना होता है जिसका प्रारूप संविधान की तीसरी अनुसूची में दिया गया है। रिटर्निंग अधिकारी, नामांकन-पत्र की वैधता (Validity of Nomination Paper) की जांच करने के पश्चात्, वैध रूप से नामांकित उम्मीदवारों की एक सूची प्रकाशित करता है।

राज्यों के चुनाव क्षेत्रों से चुनाव के लिए, प्रत्येक राज्य को लोक सभा में स्थान दिए गए हैं। इन स्थानों का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक राज्य को दिये गये स्थानों और उसकी जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के मामले में, जहां तक व्यवहार्य हो, एक जैसा रहे। उसके बाद प्रत्येक राज्य को चुनाव क्षेत्रों (Constituencies) में इस प्रकार बांटा गया है कि प्रत्येक चुनाव क्षेत्र को दिए गए स्थानों और उसकी जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के मामले में, जहां तक व्यवहार्य हो, एक जैसा रहे। "जनसंख्या से अभिप्राय वह जनसंख्या है जो स्थानों के नियतन से पहले की जनगणना के अनुसार हो और जिसके आंकड़े प्रकाशित हुए हों।[18]

मतदान पूरा हो जाने के पश्चात् मतों की गणना ऐसी तिथि को और ऐसे समय पर होती है जो रिटर्निंग अधिकारी निर्धारित करे। वही परिणाम की घोषणा करता है और निर्वाचन आयोग को और सम्बद्ध सदन के महासचिव को उसकी सूचना देता है।

यदि यह प्रश्न उठता है कि संसद् के किसी सदन का कोई सदस्य संविधान के अनुच्छेद 102 के खंड (1) में वर्णित किसी निरर्हता (Disqualification) से ग्रस्त हो गया है या नहीं तो वह प्रश्न राष्ट्रपति को विनिश्चय (Decision) के लिए निर्देशित किया जाएगा और उसका विनिश्चय अन्तिम होगा : परन्तु ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चय करने से पहले राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग की राय लेता है और ऐसी राय के अनुसार कार्य करता है।[19]

स्थानों का रिक्त हो जाना यदि कोई सदस्य लोक सभा का पहले से ही सदस्य है और वह राज्य सभा के लिए भी निर्वाचित हो जाता है तो लोक सभा में उसका स्थान उस तारीख को, जिसको वह ऐसे चुना जाता है, रिक्त हो जाता है। इसी प्रकार यदि कोई सदस्य राज्य सभा का पहले से ही सदस्य है और वह लोक सभा के लिए भी निर्वाचित हो जाता है तो राज्य सभा में उसका स्थान उस तारीख

को, जिसको वह ऐसे चुना जाता है, रिक्त हो जाता है।[30] यदि कोई सदस्य किसी राज्य विधानमण्डल के सदस्य के रूप में भी चुन लिया जाता है तो, यदि वह राज्य विधानमण्डल में अपने स्थान से, राज्य के राजपत्र में घोषणा के प्रकाशन से 14 दिनों के भीतर, त्याग-पत्र नहीं दे देता तो, संसद का सदस्य नहीं रहता। कोई सदस्य, यथास्थिति, राज्य सभा के सभापति या लोक सभा के अध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपने स्थान को त्याग कर सकता है, ऐसा होने पर उसका स्थान रिक्त हो जाता है। यदि संसद् के किसी सदन का कोई सदस्य साठ दिन की अवधि तक सदन की अनुज्ञा के बिना उसके सभी अधिवेशनों (Sessions) से अनुपस्थित रहता है तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है।[31] इसके अतिरिक्त, किसी सदस्य को सदन में अपना स्थान रिक्त करना पड़ता है यदि (एक) वह लाभ का कोई पद धारण करता है, (दो), उसे विकृतचित्त वाला व्यक्ति घोषित कर दिया जाता है या अनुन्मोचित दिवालिया (Undischarged insolvent) घोषित कर दिया जाता है, (तीन) वह स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर लेता है, (चार) उसका निर्वाचन न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया जाता है (पांच) वह सदन द्वारा निष्कासन का प्रस्ताव स्वीकृत किए जाने पर निष्कासित कर दिया जाता है, या (छः) वह राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल चुन लिया जाता है।[32]

दल-बदल के आधार पर अनर्हित होना पिछले दिनों हमारे देश में राजनीतिक दल-बदल (Defection) की समस्या ने बड़ा गंभीर रूप धारण कर लिया था। एक ही दिन में दल-बदल (मनोरंजन कारिणी) के तरह के खेल तक हम्हाल देखने को आए। फलस्वरूप संसद द्वारा संविधान में संशोधन करके 1985 में दल-बदल रोक विधि बनाई गई।[33] इस संवैधानिक संशोधन के अधीन किसी राजनीतिक दल का, संसद् का या राज्य विधान मण्डल का कोई सदस्य सदन की सदस्यता से अनर्ह (Disqualify) कर दिया जाएगा और उसे अपना स्थान रिक्त करना पड़ेगा—

(क) यदि उसने ऐसे राजनीतिक दल की, जिसका वह सदस्य है, सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी या

(ख) यदि वह ऐसे राजनीतिक दल द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा दिए गए निदेश का उल्लंघन करते हुए उसकी पूर्व अनुज्ञा के बिना सदन में मतदान करता है या मतदान करने से विरत रहने की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर उसके राजनीतिक दल अथवा प्राधिकृत व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा ऐसी कार्यवाही को क्षमा नहीं कर दिया जाता।

सदन का कोई निर्वाचित सदस्य, जो निर्दलीय (Independent) सदस्य के रूप में निर्वाचित हुआ है, सदन का सदस्य होने के लिए निरर्हित होगा, यदि वह

ऐसे निर्वाचन के पश्चात् किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है। इसी प्रकार सदन का कोई नाम निर्देशित (Nominated) सदस्य, सदन का सदस्य होने के लिए निर्रहित होगा यदि वह अपना स्थान ग्रहण करने की तारीख से छह मास की समाप्ति के पश्चात् किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है। इससे अभिप्रेत है कि यदि उक्त सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने की तिथि से छह मास की अवधि के भीतर किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है तो वह इस प्रकार अनर्ह नहीं होगा।

दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता का उपबन्ध ऐसे सदस्य पर लागू नहीं होता जिसके मूल राजनीतिक दल का किसी अन्य राजनीतिक दल में विलय हो जाता है और जो यह दावा करता है कि वह और उसके मूल राजनीतिक दल के अन्य सदस्य, ऐसे अन्य राजनीतिक दल के या ऐसे विलय से बने नए राजनीतिक दल के सदस्य बन गए हैं; या उन्होंने विलय स्वीकार नहीं किया है और एक पृथक् समूह के रूप में कार्य करने का विनिश्चय किया है। विधि के अनुसार, दल में विभाजन (Division) हुआ तब माना जाएगा यदि किसी विधायी दल के कम से कम एक-तिहाई सदस्य अपने मूल दल को छोड़ दें। इसी प्रकार विलय हुआ तब समझा जायगा जब सम्बन्धित विधान-दल के कम से कम दो-तिहाई सदस्य ऐसे विलय के लिए सहमत हो जायें।

कोई व्यक्ति जो लोक-सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा राज्य सभा के उप-सभापति अथवा किसी राज्य की विधान परिषद् के सभापति या उप-सभापति अथवा किसी राज्य की विधान सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के पद पर निर्वाचित हो जाता है, वह निरर्हित नहीं होगा यदि वह ऐसे पद पर अपने निर्वाचन के कारण अपने दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है या यदि वह ऐसे पद पर न रह जाने के पश्चात् ऐसे राजनीतिक दल में पुन सम्मिलित हो जाता है।

दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता के बारे में प्रश्नों को, यथास्थिति, सभापति या अध्यक्ष के विनिश्चय (Decision) के लिए निर्दिष्ट किया जाएगा और उसका विनिश्चय अन्तिम होगा। दल-बदल रोक विधि (Anti Defection Rules) के अधीन सदस्यों की अनर्हता से सबंधित कोई भी मामला न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र में नहीं होगा।

निर्वाचन संबंधी विवाद —निर्वाचनों के सम्बन्ध में हुए विवादों के बारे में निर्वाचन याचिकाओं (Election petitions) पर उच्च न्यायालय में ही विचार हो सकता है। अन्यथा ऐसा उपबन्ध है कि संसद के या किसी राज्य विधान मण्डल के किसी सदन के लिए हुए किसी निर्वाचन को चुनौती नहीं दी जाएगी।[15] ऐसी याचिका निर्वाचन में किसी उम्मीदवार द्वारा या किसी मतदाता द्वारा, पेश की जा सकती है। याचिका ऐसा स्थान भरने के लिए या निर्वाचन के दौरान कोई

भ्रष्ट आचरण किये जाने के कारण जिस पर विधि द्वारा रोक हो, अनर्हता के आधार पर पेश की जा सकती है। यदि अभियोग सिद्ध हो जाते हैं तो उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उपरोक्त किसी एक आधार पर सफल उम्मीदवार का निर्वाचन शून्य घोषित कर दे।[25]

यदि प्रत्यार्थी (Petitioner) द्वारा यह दावा किया जाता है कि उसको विधि मान्य मतों में से बहु-संख्या में मत प्राप्त हुए थे और यदि निर्वाचित अभ्यर्थी ऐसे किसी भ्रष्ट आचरण को न अपनाता जो उसने अपनाए तो वह निर्वाचन जीत नहीं सकता था तो उच्च न्यायालय, संतुष्ट हो जाने पर, निर्वाचित अभ्यर्थी के निर्वाचन को शून्य घोषित कर सकता है और प्रार्थी को सम्यकरूप से निर्वाचित घोषित कर सकता है और।[26] उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

संदर्भ

1 अनु 324 (1), 325 और 326
2 अनु 324
3. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950, धारा 13 क और 13 कक
4 लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 26 और 27
5 वही 11, 28
6 वही, 21 और 24
7 अनु 326, देखिए लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 16
8 अनु 327
9 अनु 84 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 3 और 4
10 दसवीं अनुसूची और अनु 102 (2) और 191 (2)
11 अनु 102
12 अनु 80 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 27 (क) और 27 (ख)
13 अनु 83 (1) और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 धारा 154
14 लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 153
15 वही, धारा 12

16. वही, धारा 14
17. वही, धारा 24 और 158
18. अनु. 81
19. अनु 103
20. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 धारा 69
21. अनु. 101 (3) और (4)
22. अनु. 59 (1), 66 (1), 102 (1), 158 (1) और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 धारा 100 (1)
23. सविधान (52वां सशोधन) अधिनियम, 1985 और लोक सभा (दल-बदल के आधार पर अनर्हता) नियम, 1985,
24. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 80 और 80 (क)
25. वही, धारा 100
26. वही, धारा 101

4

संसदीय कार्य में प्रक्रिया का महत्व

संसदीय कार्यविधि एक निरन्तर गतिमान प्रक्रिया है। लोकतन्त्रीय देशों की संसदीय प्रणालियों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उन देशों में धीरे-धीरे संसदीय प्रणाली का विकास हुआ। संसदीय शासन वाली प्रणाली में कार्यपालिका (Executive) संसद् के प्रति जवाबदेह होती है और विपक्ष की आलोचना को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिये जाते हैं। अतः संसदीय सरकार की मूल अवधारणा यही है कि स्वतन्त्र रूप में चर्चा हो, खुले आम आलोचना हो और उसके बाद निर्णय किये जायें। इस व्यवस्था के संचालन को सुगम बनाने के लिए यह आवश्यक है कि कानून तथा विनियमों द्वारा निश्चित प्रक्रिया निर्धारित की जाये जिसका सभी दल पालन करें। संसदीय प्रणाली की विभिन्न प्रक्रियाओं में भाग लेने वाले सदस्यों के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वे इन नियमों, अध्यक्षपीठ (Chair) से दिये गये निदेशों (Directions) और विनिर्णयों (Rulings) को सीखें और उनका सुचारु रूप से प्रयोग करें जिससे संसदीय कार्यवाही व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न हो। संसदीय प्रणाली का एक महान् गुण यह है कि इसमें संसद् अपनी प्रक्रिया की स्वामी है। जैसा कि डार्सी ने कहा है "किसी लोकतन्त्रात्मक देश में सारी संसदीय प्रक्रिया, परिपाटी पर आधारित कानून के अतिरिक्त कुछ नहीं, परन्तु वह लिखित या छपे हुए नियमों के रूप में होती है।"

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—भारत में आधुनिक संसदीय प्रक्रिया का प्रारम्भ 1854 से होता है किन्तु वर्ष 1921 तक इसमें मामूली परिवर्तन किये गये। वास्तव में महत्वपूर्ण परिवर्तन 1921 में आये। संसदीय इतिहास में पहली बार प्रक्रिया में लोकतन्त्रात्मक तत्वों का समावेश हुआ किन्तु इस प्रक्रिया पर गवर्नर जनरल का पूरा नियन्त्रण था। 1921 में केन्द्रीय विधान मण्डल में जिस प्रक्रिया की स्थापना की गयी, वह मामूली परिवर्तनों के साथ ब्रिटिश संसद् द्वारा भारत स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 पास किये जाने तक लागू रही, परन्तु फिर भी संसदीय प्रक्रिया के अध्ययन की दृष्टि से 1921 और 1947 के बीच की अवधि ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व की अवधि है, क्योंकि इसमें भारत के विधायक आधु-

निक प्रक्रिया के कई तत्वों में परिवर्तन हुए। इस प्रकार जब 1947 में, स्वतन्त्रता अधिनियम के पास होने के बाद, प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन करने की शक्ति भारतीयों के हाथ में आयी, तब उन्हें ठीक-ठीक मालूम था कि उसमें क्या दोष हैं और उनको ठीक करने के लिए क्या करना चाहिए। भारत सरकार अधिनियम, 1925 का अनुकूलन (Adaptation) किया गया और वे सारे परिसीमन (limitations) और परिरक्षण (Reservations) हटा दिये गये जिनके कारण भारतीयों के हाथों में शक्ति पर रोक लगायी गयी थी। परिणामस्वरूप संविधान सभा (विधायी) की प्रक्रिया स्वतन्त्र संसद् की प्रक्रिया बन गई, जिसमें अध्यक्ष को पूरी शक्तियां प्राप्त हुई तथा संसदीय मामलों में कार्यपालिका का हस्तक्षेप समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार भारत में नई स्थितियों और परिस्थितियों के अनुरूप संसदीय प्रक्रिया का विकास प्रारम्भ हुआ। नियमों में अनेक नयी संकल्पनायें जोड़ी गई यथा कार्यमन्त्रणा समिति (Business Advisory Committee) की सिफारिश पर समय का नियतन, ध्यान आकर्षण की सूचनायें, आश्वासनों सम्बन्धी समिति (Committe on Assurances) याचिका समिति के व्यापक कार्य, अल्पकालिक चर्चायें (Short duration discussions) आदि।

संविधान सभा (विधायी), के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन सम्बन्धी नियमों (Rules of procedure and conduct of bussiness) को, जो भारतीय संविधान लागू होने से तत्काल पूर्व प्रभावी थे, लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा संविधान के अनुच्छेद 118 (2) के अधीन प्रदत्त शक्तियों के निवहन में संशोधित तथा अनुकूलित किया गया और "लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियम" (Rules of procedure and conduct of Business in Lok Sabha) शीर्षक के अन्तर्गत 17 अप्रैल, 1952 को भारत के राजपत्र असाधारण में प्रकाशित किया गया। सभा की नियम समिति (Rules Committee) की सिफारिशों के आधार पर अध्यक्ष द्वारा इन नियमों में समय-समय पर संशोधन किए गये और इसका नया संस्करण (edition) निकाला गया अब तक इसका सातवां संस्करण निकाला जा चुका है।

नियमों का पालन न करने से समय की बर्बादी : निःसन्देह संसद् जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति का सही मंच (फोरम) है। इस मन्च का सही उपभोग तभी सम्भव है *जब जन-प्रतिनिधियों को अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान हो* और वे सभा के प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों (Rules), विनियमों (Regulations) से पूर्णतः परिचित हों। परन्तु आज देखने में आता है कि लोकसभा और राज्य सभा, दोनों में ही, ऐसे मामलों पर घण्टों व्यर्थ गवाए जाते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध संसदीय शासन प्रणाली से नहीं होता है। छोटे-छोटे, महत्वहीन मामलों को लेकर समय गवाया जाता है जो कि बड़ी गम्भीर बात है। यद्यपि संसद् सदस्य को लोकसभा अथवा राज्य सभा में अपने कार्य का करने में कोई नहीं रोक सकता है तथापि संसद् का

अधिकार प्रत्येक सदस्य के अधिकार से बड़ा है। अतः प्रत्येक सांसद को अपना कार्य संसदीय औचित्य की मर्यादाओं और सीमाओं में रहकर करना ही श्रेयस्कर है।

सदस्यों द्वारा पालनीय नियम

जब अध्यक्ष सभा को सबोधित करने के लिए उठे तो सदस्य उसे चुपचाप सुनें। अगर कोई सदस्य बोल भी रहा हो तो उसे बैठ जाना चाहिए। उस समय किसी सदस्य को अपना स्थान छोड़कर नहीं जाना चाहिए। जब अध्यक्ष या अध्यक्ष पद पर बैठा हुआ कोई व्यक्ति "शान्ति-शान्ति" कहे तो प्रत्येक सदस्य को बैठ जाना चाहिए। सदस्यों को, जब सभापति खड़ा हो, न खड़े होना चाहिए, न चलना चाहिए, न उठकर बैठना चाहिए और जब वह बोल रहा हो तो कोई व्यवस्था का भी प्रश्न (Point of order) नहीं उठाना चाहिए। अतः यदि संसद् सदस्य इस नियम का पालन नहीं करता है तो पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) के लिए सभा की कार्यवाही सामान्य ढंग से चलाने और अनुशासन को कायम रखना सम्भव नहीं होता।

सभा के कार्य में बाधा डालने पर निलम्बन (Suspension)

यदि कोई सदस्य अनुशासन भंग करता है तो अध्यक्ष उसे नामित करता है। तत्पश्चात् सत्ता पक्ष के किसी सदस्य के प्रस्ताव पर उसे सदन से निलम्बित करने का प्रस्ताव पारित किया जाता है।[4] पिछले पावस-कालीन सत्र के दौरान पीठासीन अधिकारियों को संसद् में इस प्रकार की घोर अव्यवस्था का सामना करना पड़ा। लोकसभा और राज्य सभा में पहले तीन दिन काफी शोर गुल हुआ जिसमें अध्यक्ष तो क्या सदस्य भी क्या कह रहे थे, किसी को कुछ सुनाई नहीं पड़ा। दो दिन पश्चात् इस काण्ड की परिणति लोक सभा में विपक्ष के 68 सदस्यों के त्याग-पत्र में हुई और उनका त्यागपत्र उसी दिन स्वीकृत घोषित कर दिया गया। इन्हीं परिस्थितियों में लोक सभा अध्यक्ष बाध्य हुए कि नियन्त्रक और महा-लेखाकार (Comptroller and Auditor General) की रिपोर्ट पर चर्चा की अनुमति दी जाए। इस प्रकार संसद् की यह परम्परा कि महालेखाकार की रिपोर्ट पर तभी चर्चा होती है जब लोक सभा-समिति उस पर अपनी रिपोर्ट दे दे, भंग हो गई। फलस्वरूप, लोक सभा में प्रश्नों और प्रस्तावों के जरिए चर्चा के नियमों और अध्यक्षीय निदेशों (directions) में व्यापक परिवर्तन किए गए जिनके तहत अब मुख्य चुनाव आयुक्त, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक, न्यायालयों तथा ऐसी अन्य संस्थाओं के अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) में आने वाले विषयों पर सदन में प्रश्न नहीं किए जा सकेंगे।

नए नियमों के अन्तर्गत यदि किसी प्रस्ताव में कोई वक्तव्य उद्धृत है तो प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को उस वक्तव्य की सच्चाई की जिम्मेदारी लेनी

होगी। किसी निजी सदस्य द्वारा सदन के पटल (Table of the House) पर रखे गए किसी भी दस्तावेज (document) पर चर्चा करने वाला प्रस्ताव अब लोक सभा मे पेश नहीं किया जा सकेगा।

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-सचालन नियम के नियम 186 मे जोडे गए नए उपबधो (New provisions) के अनुसार किसी भी ससदीय समिति के विचाराधीन मामलो पर चर्चा करने की माग वाला प्रस्ताव सामान्यत स्वीकार नही किया जाएगा। प्रस्तावों मे केवल ऐसे मामलो का जिक्र हो सकेगा जिनसे मन्त्री का प्रधिकारिक सम्बन्ध है। नियम 389 के अन्तर्गत अध्यक्ष द्वारा किए गए सशोधनो मे एक नया 10 "ए" निर्देश जोडा गया है जिसके अन्तर्गत किसी भी लेख, समाचार, व्याख्यान और सार्वजनिक सभाओं मे किसी व्यक्ति की निजी राय के बारे मे कोई प्रश्न नही किया जा सकेगा। यदि अध्यक्ष इस बात से सन्तुष्ट है कि किसी प्रश्न का आधार तथ्यात्मक नहीं है तो उसे नामन्जूर किया जा सकेगा। नियम 349 मे जोडे गए नए उपबन्धो के अनुसार कोई सदस्य सदन मे नारा नही लगाएगा। अध्यक्ष के आसन तक स्वय नहीं आ सकेगा, सदन मे कोई बिल्ला नहीं लगाएगा तथा किसी झण्डे, निशान अथवा वस्तु का प्रदर्शन नही कर सकेगा।

सभा मे किसी विषय को उठाने के लिए सूचना का महत्व -

सभा मे अपने मतव्य को अभिव्यक्त करने, किसी जानकारी को प्राप्त करने एव किसी विषय को उठाने के कई अवसर प्राप्त होते हैं, यथा प्रश्न, सकल्प, प्रस्ताव विधेयक, सशोधन आदि के रूप मे विषय को उठाया जा सकता है। किन्तु किसी भी रूप मे विषय को उठाने के लिए, उसके बारे मे पहले सूचना देने की आवश्यकता होती है। नियमों के अन्तर्गत अपेक्षित प्रत्येक सूचना (notice) लिखित रूप मे, महासचिव को सम्बोधित होनी चाहिए। उस पर सूचना देने वाले सदस्य के हस्ताक्षर होने चाहिये और वह अधिसूचित घण्टो के भीतर ससद् सूचना कार्यालय मे दी जानी चाहिए।[3]

कार्य के विभिन्न मुद्दो के लिए नियमो के अन्तर्गत निहित सूचना (नोटिस) की अवधि इस प्रकार है :—

प्रश्न . (Questions) जब तक अध्यक्ष अन्यथा निर्देश न दे, प्रश्न के लिए कम से कम पूरे दस दिन और अधिक से अधिक इक्कीस दिन।[4]

अल्प-सूचना प्रश्न : (Short notice question) इस सम्बन्ध मे कोई प्रश्न पूरे दस दिन से कम की सूचना पर पूछा जा सकता है।[5]

स्थगन प्रस्ताव (Adjournment motion) इस सम्बन्ध मे सूचना उस दिन को बैठक प्रारम्भ से पूर्व जिस दिन कि प्रस्ताव करने का विचार हो।[6]

अविलम्बनीय लोक-महत्त्व के विषयों (Matter of urgent public importance) पर ध्यान दिलाना : बैठक प्रारम्भ होने से पहले, 10.00 बजे तक।[7]

गैर सरकारी सदस्यों के संकल्प (Private mambers resolution) : कोई गैर-सरकारी सदस्य जो संकल्प प्रस्तुत करना चाहता हो, मतपत्र (बैलट) की तारीख से कम से कम दो दिन पहले इस आशय की सूचना देगा।[8]

संकल्प (Resolution) **में संशोधन** : संकल्प प्रस्तुत किये जाने के दिन से पूर्व एक दिन।[9]

विधेयक (Bills) **गैर सरकारी सदस्यों के** : विधेयक को पुनः स्थापित करने की अनुमति के लिए प्रस्ताव की सूचना की कालावधि एक मास होगी।[10]

विधेयकों में संशोधन : विधेयक पर विचार किये जाने के दिन से एक दिन पूर्व।[11]

कटौती प्रस्ताव (Cut motions) : मांग के विचाराधीन दिन से एक दिन पूर्व।[12]

आध घण्टे की चर्चा उठाने के संबंध में : जिस दिन उस विषय को उठाना हो उस दिन से तीन दिन पूर्व।[13]

अल्पकालीन चर्चा (Short duration discussion) : सूचना की कोई अवधि नहीं रखी गई।[14]

लोक-हित के किसी विषय पर चर्चा सम्बन्धी प्रस्ताव (अनियत दिन वाला प्रस्ताव) (No-day-yet named motions) सूचना की कोई अवधि नहीं रखी गई।[15]

विशेषाधिकार (Question of privilege) **प्रश्न** : उस दिन की बैठक प्रारम्भ होने से पूर्व जिस दिन कि प्रश्न उठाने का विचार हो।[16]

मन्त्रिपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव (Motion of no-confidence in council of Ministers) : बैठक प्रारम्भ होने से पहले।[17]

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को पदच्युत करने के संकल्प (Resolution for removel of Speaker or Deputy-speaker from the office) : इस सम्बन्ध में कोई संकल्प तब तक प्रस्तावित नहीं किया जायेगा जब तक कि उस संकल्प को प्रस्तावित करने के आशय की कम से कम चौदह दिन की सूचना न दी गई हो।[18]

जिस सूचना (notice) के सम्बन्ध में नियमों में यह कहा गया है कि वह "बैठक प्रारम्भ होने से पहले" मिलनी चाहिए, ऐसी सूचना बैठक प्रारम्भ होने से कम से कम आधा घण्टे पहले दी जानी चाहिए। यदि ऐसी सूचना बैठक प्रारम्भ होने से कम से कम आधा घण्टे पहले न मिले, तो अगली बैठक के लिए सूचना मानी जाती है।

एक ही जैसे या विषय-वस्तु में एक समान प्रश्नों को, जिनकी सूचना कई सदस्यों ने अलग-अलग दी हो, सम्मिलित कर दिया जाता है और या उस प्रश्न को गृहीत किया जाता है जिसकी भाषा सबसे अधिक उपयुक्त हो और बाकी सब सदस्यों के नाम उस पर जोड़ दिये जाते हैं। जब प्रश्नों की सूची में कोई प्रश्न एक से अधिक सदस्यों के नाम से छपा हो, तो वह प्रश्न उन सभी सदस्यों के नाम से माना जाता है। जब किसी सम्मिलित प्रश्न पर जिन सदस्यों के नाम हैं, उनमे सबसे पहला

सदस्य अनुपस्थित हो तो बाकी उपस्थित सदस्यो मे से कोई भी जिसके नाम उस सूची मे हो वह प्रश्न पूछ सकता है ।

जहाँ दो या अधिक सदस्य एक जैसे प्रस्ताव या एक ही विषय के सम्बन्ध मे प्रस्तावो की अलग-अलग सूचना देते है तो ऐसे सभी सदस्यो के नाम गृहीत सूचना पर इकट्ठे लिखे जाते हैं । इन सदस्यो के नाम उसी क्रम मे लिखे जाते हैं जिस क्रम मे उनकी सूचना प्राप्त हुई हो या यदि उस मामले मे बैलेट आवश्यक हो तो बैलेट मे आये क्रमानुसार उनके नाम सूचनाओ पर लिखे जाते हैं । ऐसे मामले मे प्रस्ताव सदन मे उसी क्रमानुसार पेश किये जाते हैं । सूची मे सबसे पहले जिस सदस्य का नाम दर्ज होता है वह ही प्रस्ताव पेश करता है । उसकी अनुपस्थिति मे क्रम मे दूसरे स्थान पर दर्ज सदस्य प्रस्ताव पेश करता है । इसी प्रकार विधेयको के बारे मे भी जिन सदस्यो ने एक ही जैसे विधेयक की सूचनायें दी हो, उन सब के नाम उस क्रम मे जिसमे सूचनायें प्राप्त हुई हो, रखे जाते हैं । जिस सदस्य ने सबसे पहले सूचना दी हो, उसे यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह विधेयक को पुर. स्थापित करने की अनुमति देने का प्रस्ताव पेश करे ।

जिस सदस्य ने किसी विधेयक को पुर. स्थापित करने की अनुमति मागने का प्रस्ताव रखने की सूचना दी हो, वह किसी अन्य सदस्य को अपनी ओर से यह प्रस्ताव रखने का अधिकार दे सकता है बशर्ते कि ऐसा अधिकार लिखित रूप मे दिया गया हो । परन्तु कोई सशोधन (Amendment) या कटौती प्रस्ताव (Cutmotion) किसी सदस्य द्वारा किसी अन्य सदस्य की ओर से पेश नही किया जा सकता । जब किसी सदस्य को अपने सशोधन या कटौती प्रस्ताव रखने के लिए पुकारा जाता है और वह सभा मे उपस्थित नही होता तो वह प्रस्ताव रखने का अपना अवसर खो देता है ।

सकल्पो (Resolution) के मामले मे किसी अन्य सदस्य को अधिकार देने की अनुमति है । अध्यक्ष की अनुमति से कोई सदस्य किसी ऐसे सदस्य को, जिसके नाम मे वही सकल्प कार्य-सूची मे काफी नीचे हो, यह अधिकार दे सकता है कि वह उसकी ओर से सकल्प पेश कर सकता है । यदि सकल्प की सूचना देने वाले सदस्य को सदन मे सकल्प रखने के लिये पुकारा जाता है और वह सदन मे उपस्थित नही होता तो उसकी ओर से कोई अन्य सदस्य, जिसे उसने लिखित रूप मे अधिकार दिया हो, अध्यक्ष की अनुमति से उस सकल्प को पेश कर सकता है ।[19]

संभाव्य सूचना कॉनटीनजेन्ट नोटिस . कोई सदस्य ऐसे प्रस्ताव या सकल्प या विधेयक की सूचना दे सकता है, जिसे वह चाहता हो कि ऐसे अन्य कार्य की समाप्ति पर लिया जाये जिस पर यह प्रस्ताव सभाव्य हो और यदि ऐसी सूचना अध्यक्ष द्वारा गृहीत कर ली जाये तो उसे कार्य-सूची मे, यथास्थिति, प्रस्ताव या सकल्प या विधेयक की सभाव्य सूचना शीर्षक के अतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है । सदन मे ऐसी सूचना को तभी लिया जा सकता है जब कार्य की वह

सद निरस्तारी या चुकी हो जिस पर वह आश्रित हो।[21] समान्य सूचनाएं सामान्यतया विनियोग विधेयकों (Appropriation Bills) के संबंध में दी जाती हैं, जिन्हें सरकार, सदन द्वारा अनुदानों की मांगों के स्वीकार किये जाने के बाद यथाशीघ्र पास करवाना चाहती है।

यदि अध्यक्ष की राय में किसी सूचना में ऐसे शब्द, वाक्यांश या पद हों, जो प्रतर्कात्मक (argumentative), असंसदीय (unparliamentary), व्यंग्यात्मक (ironical), असंगत (irrelevant), आडम्बरपूर्ण (verbose) या अन्यथा अनुचित हों तो वह स्वविवेक से ऐसी सूचना में परिचालित किए जाने से पूर्व संशोधन कर सकता है।[21] यदि कोई सदस्य किसी ऐसे विषय पर चर्चा उठाना चाहता हो, जिसकी सूचना पहले से ही किसी अन्य सदस्य या मंत्री ने दे रखी हो, उसे इस आधार पर अनुमति नहीं दी जाती कि वह आने वाली चर्चा की प्रत्याशा कर रहा है, परन्तु यह निर्धारित करने के लिए कि चर्चा प्रत्याशा के आधार पर नियम बाह्य है या नहीं अध्यक्ष प्रत्याशित विषय के सदन के सामने उचित समय के भीतर लाए जाने का ध्यान रखता है।

सूचनाओं का व्यपगत होना (Lapse of notices) सदन के सत्रावसान पर विधेयक पुर: स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव की सूचना को छोड़ कर सभी लम्बित सूचनाएं (Pending notices) व्यपगत हो जाती हैं और यदि सम्बन्धित सदस्य अगले सत्र में इस विषय को उठाना चाहें तो उन्हें अपनी सूचनाएं फिर से देनी पड़ती हैं, परन्तु किसी ऐसे विधेयक को पुर: स्थापित करने के लिए अनुमति का प्रस्ताव रखने के लिए नयी सूचना की आवश्यकता होती है, जिसके संबंध में राष्ट्रपति की यथापेक्षित मंजूरी या सिफारिश आवश्यक हो और पहले दी गई मंजूरी या सिफारिश प्रभावी न रही हो।[22]

सदस्यों को भाषण देने के लिए बुलाना : जो सदस्य सभा में वाद-विवाद अथवा चर्चा में भाग लेना चाहता हो, वह (एक) अपने संसदीय दल अथवा ग्रुप के माध्यम से अध्यक्ष का अपना नाम दे सकता है, (दो) अपने संसदीय दल अथवा ग्रुप के माध्यम के बिना भी अपना नाम सीधे अध्यक्ष को दे सकता है, और (तीन) अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट कर सकता है। किन्तु अध्यक्ष को वाद-विवाद का निर्यमन करने तथा वाद-विवाद में भाग लेने के लिए सदस्यों का चयन करने का अधिकार प्राप्त है। कोई भी सदस्य इस बात के लिए आग्रह नहीं कर सकता कि उसे अवश्य बोलने का अवसर दिया जाये। प्रत्येक सदस्य को बोलने के लिए अवसर प्राप्त करने हेतु अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करना होता है, चाहे उसने अध्यक्ष को पहले रूप से लिखा हो अथवा अपना नाम अपने दल अथवा ग्रुप के माध्यम से भेजा हो। जब तक सदस्य अपने स्थान पर खड़ा नहीं होता, उसे बोलने के लिये नहीं पुकारा जा सकता, भले ही उसने दल अथवा ग्रुप अथवा उसने स्वयं लिखित रूप से अध्यक्ष से अनुरोध किया हो।

जिस क्रम में सदस्यों को बोलने हेतु अध्यक्ष बुलाएगा, उसका निर्धारण वह स्वयं करता है। कोई सदस्य यह नहीं कह सकता कि उसको अमुक क्रम में बुलाया जाये। सदस्यों के चयन हेतु संसदीय दलों अथवा ग्रुपों के सचेतकों द्वारा अध्यक्ष को वक्ताओं की सूचियां दी जाती हैं ताकि एक सुविनियमित तथा संतुलित वाद-विवाद सुनिश्चित किया जा सके।

सभा को संबोधित करने की विधि (Mode of addressing House). जो सदस्य सभा के सामने किसी विषय के संबंध में कोई बात कहना चाहता हो, उसे अपने स्थान पर खड़े होकर बोलना चाहिए। उसे अध्यक्ष को सम्बोधित करना चाहिए जो सदस्य रोग या दुर्बलता के कारण असमर्थ हो, अध्यक्ष उसे अपने स्थान पर बैठे-बैठे बोलने की अनुमति दे सकता है।[23]

बोलते समय सदस्य को (एक) किसी ऐसे तथ्य अथवा विषय का उल्लेख नहीं करना चाहिए जिस पर न्यायिक निर्णय (Judicial decision) लम्बित हो, (दो) संसद् या किसी राज्य विधान मंडल की कार्यवाही के संचालन के विषय में अप्रिय बातों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, (तीन) सदन के किसी निश्चय पर, उसे रद्द कराने के प्रस्ताव के सिवाय, कोई आक्षेप नहीं करना चाहिए, (चार) वाद-विवाद पर प्रभाव डालने के प्रयोजन से राष्ट्रपति के नाम का उपयोग नहीं करना चाहिए, (पांच) अभिद्रोहात्मक (Treasonable), राजद्रोहात्मक (Seditions) या मान हानिकारक (Defamatory) शब्द नहीं कहने चाहिए, (छः) अपने भाषण के अधिकार का प्रयोग सदन के कार्य में बाधा डालने के प्रयोजन के लिए नहीं करना चाहिए; (सात) उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर आक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक कि उक्त चर्चा समुचित रूप से रखे गये मूल प्रस्ताव (Substantive motion) पर आधारित न हो; (आठ) अध्यक्ष पीठ (Chair) की पूर्व अनुमति के बिना लिखित भाषण नहीं पढ़ना चाहिए, किन्तु बोलते समय टिप्पण (नोट्स) का सहारा लिया जा सकता है। (नौ) किसी सरकारी अधिकारी का उल्लेख उसका नाम लेकर नहीं करना चाहिए; (दस) सभा के किसी अन्य सदस्य के विरुद्ध आरोप, हित पूर्ति का लांछन लगा करके या उसकी सद्भावना पर आपत्ति करके कोई व्यक्तिगत उल्लेख नहीं करना चाहिए, जब तक कि वाद-विवाद, जो स्वयं विवाद विषय या उससे संगत है, के प्रयोजन के लिए ऐसा करना अत्यावश्यक न हो; और *(ग्यारह) किसी अन्य सदस्य का भाषण नहीं पढ़ना चाहिए।*

अध्यक्ष द्वारा सम्बोधन अध्यक्ष स्वयं ही या किसी सदस्य द्वारा प्रश्न उठाये जाने पर या प्रार्थना की जाने पर, किसी भी समय सदन में विचाराधीन विषय पर सदस्यों को उनके विचार कार्य में सहायता की दृष्टि से, सदन को सम्बोधित कर सकता है। इस प्रकार व्यक्त किये गये मत को किसी प्रकार निर्णय के रूप नहीं माना जा सकता।[24]

समापन और वाद-विवाद की परिसीमा (*Closure and limitation of Debate*) किसी प्रस्ताव के किये जाने के बाद किसी भी समय कोई सदस्य यह प्रस्ताव कर सकता है "कि अब प्रस्ताव मतदान के लिये रखा जाये" और यदि अध्यक्ष को यह प्रतीत न हो कि प्रस्ताव नियमो का दुरुपयोग है या उससे उचित वाद-विवाद के अधिकार का उल्लंघन होता है, तो वह प्रस्ताव रखता है कि "अब प्रस्ताव मतदान के लिये रखा जाये" जब यह प्रस्ताव "कि अब प्रस्ताव मतदान के लिये रखा जाये" स्वीकृत हो जाये तो उससे आनुषंगिक प्रस्ताव या प्रस्तावो को आगे वाद-विवाद के बिना मतदान के लिए तुरन्त रखा जाता है। हा, उसके पहले अध्यक्ष किसी सदस्य को उत्तर देने के अधिकार का प्रयोग करने की अनुमति दे सकता है।[25]

समापन प्रस्ताव किसी भी समय रखा जा सकता है। इस पर केवल यह शर्त लागू होती है कि यदि उस समय कोई सदस्य बोल रहा हो, तो उसे अपना भाषण पूरा करने की अनुमति दी जाती है और यदि प्रस्तावक को वाद-विवाद के उत्तर का अधिकार हो तो उसको उत्तर देने दिया जाता है। यह अध्यक्ष के विवेक पर निर्भर है कि यदि वह यह समझे कि पर्याप्त वाद-विवाद हो चुका है और ऐसा प्रस्ताव रखने का उपयुक्त समय है तो वह उस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता है।

जब कभी विधेयक के सम्बन्ध मे किसी प्रस्ताव पर या किसी अन्य प्रस्ताव पर वाद-विवाद अनुचित रूप से लम्बा हो जाये, तो अध्यक्ष सदन का अभिप्राय जानने के बाद, यथास्थिति, विधेयक के किसी प्रक्रम (Stage) या सभी प्रक्रमो या प्रस्ताव पर चर्चा की समाप्ति के लिये समय-सीमा निश्चित कर सकता है। विधेयक या प्रस्ताव के किसी खास प्रक्रम को पूरा करने के लिए निश्चित समय-सीमा के अनुसार नियत समय पर, यदि वाद-विवाद उससे पूर्व समाप्त न हो गया हो तो अध्यक्ष विधेयक या प्रस्ताव के उस प्रक्रम के सम्बन्ध मे सभी अवशिष्ट विषयो को निपटाने के लिए आवश्यक प्रस्ताव मतदान के लिये रखता है।[26]

मत विभाजन (*division*) यदि किसी मामले मे सदन का निर्णय अपेक्षित हो तो उस पर निर्णय सदस्य द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव पर पीठासीन अधिकारी द्वारा प्रश्न पूछ कर किया जाता है। वाद-विवाद समाप्त हो जाने पर पीठासीन अधिकारी प्रश्न को सभा के समक्ष प्रस्तुत करता है जो सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में हो उनसे "हाँ" और जो प्रस्ताव के विरुद्ध हो उनसे "न" कहने के लिए कहा जाता है। उसके पश्चात् पीठासीन अधिकारी कहता है, "मै समझता हू कि "हाँ" या "न" यथास्थिति वाले जीते"। यदि पीठासीन अधिकारी के इस निर्णय पर कोई आपत्ति नही की जाती तो वह दो बार कहता है कि "हाँ" या ("न" यथास्थिति) वालो का बहुमत है और सदन के समक्ष प्रस्तुत किया गया प्रश्न तद्नुसार निर्णीत किया जाता है। परन्तु यदि पीठासीन अधिकारी की इस राय पर

किसी सदस्य द्वारा आपत्ति की जाती है तो पीठासीन अधिकारी यह आदेश देता है कि भीतरी कक्ष (लॉबी) को सदस्यों से भिन्न व्यक्तियों से खाली कराया जाये। लगभग तीन मिनट बीत जाने पर पीठासीन अधिकारी दो बार प्रस्ताव रखता है और यह घोषणा करता है कि उसके विचार में "हाँ" वाले जीते हैं या कि "न" वाले। यदि उसकी इस प्रकार व्यक्त राय को फिर चुनौती दी जाती है, तो अध्यक्ष यह निदेश देता है कि मत या तो स्वचालित मत यंत्र के माध्यम से लिये जायें या सदस्यों द्वारा लोक सभा चैम्बर में जाकर मत डालकर।[27] जब से स्वचालित मत अभिलेख यंत्र लगा दिया गया है तब से लॉबी में जाकर मतदान करने की प्रणाली अप्रचलित हो गई है। मशीन खराब होने पर मतदान पर्चियों के द्वारा कराया जाता है।

अध्यक्ष यह सुनिश्चित करता है कि मत-विभाजन अनावश्यक रूप से न कराया जाये। वह निराधार कारणों से मत विभाजन के लिए की गई प्रार्थनायें अस्वीकार कर देता है।

संविधान के उपबन्ध के अनुसार अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति मत विभाजन में मत नहीं दे सकता। उसे निर्णायक मत देने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु उसका प्रयोग वह तभी करता है जब किसी विषय के पक्ष में या विपक्ष में बराबर मत आयें।[28]

व्यवस्था का प्रश्न (Point of order) व्यवस्था का प्रश्न एक असाधारण प्रक्रिया है, जिसके उठाये जाने पर सदन की कार्यवाही विलंबित हो जाती है और उस समय बोल रहा सदस्य अपना भाषण रोक देता है। इसका उद्देश्य सभा का कार्य विनियमित करने के लिये नियमों, निदेशों तथा संविधान के उपबंधों के प्रवर्तन में अध्यक्ष को सहायता प्रदान करना है। यह अनिवार्यतः प्रक्रिया के बारे में होना चाहिए और उस समय सभा के समक्ष कार्य से सम्बन्धित होना चाहिए। उस दिन की कार्य-सूची में पहले से सम्मिलित कार्य मदों के विन्यास से भी यह सम्बन्धित होना चाहिए।

व्यवस्था प्रश्न प्रक्रिया नियमों या संविधान के ऐसे अनुच्छेदों के निर्वाचन या लागू किये जाने से संबंधित होना चाहिए, जो सभा के कार्य के विनियमन से संबंधित है और उसके माध्यम से केवल ऐसा प्रश्न उठाया जाना चाहिए, जो कि अध्यक्ष के संज्ञान में हो।[29]

कार्य न होने की स्थिति में व्यवस्था का प्रश्न नहीं हो सकता। यह उस समय सदन के समक्ष कार्य से ही सम्बन्धित होना चाहिए। तथापि, अध्यक्ष किसी सदस्य को कार्य की एक मद समाप्त होने और दूसरी के प्रारम्भ होने के बीच की अन्तरावधि में व्यवस्था का प्रश्न उठाने की अनुमति दे सकता है, यदि यह सदन में व्यवस्था बनाए रखने या सदन के समक्ष कार्य-विन्यास के सम्बन्ध में हो।

34 नियम (1) तथा (2) में उल्लिखित शर्तों के अध्यधीन रहते हुए कोई सदस्य व्यवस्था का प्रश्न उठा सकता है और अध्यक्ष यह निर्णय करता है कि उठाया गया प्रश्न व्यवस्था का प्रश्न है या नहीं और यदि यह हो तो उस पर अध्यक्ष अपना निर्णय देता है जो अन्तिम होता है। व्यवस्था प्रश्न पर किसी वाद-विवाद की अनुमति नहीं दी जाती, परन्तु यदि अध्यक्ष उचित समझे तो वह अपना निर्णय देने से पहले सदस्यों की बात सुन सकता है। व्यवस्था का प्रश्न विशेषाधिकार प्रश्न नहीं होता।

किसी सदस्य का निम्नलिखित बातों के लिये व्यवस्था का प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं है

(क) जानकारी प्राप्त करने के लिये, या

(ख) अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये, या

(ग) उस समय जब किसी प्रस्ताव को मतदान के लिये सदन के सामने रखा जा रहा हो, या

(घ) जो काल्पनिक हो, या

(ङ) कि मत-विभाजन घण्टी नहीं बजी या सुनायी नहीं पड़ी।

व्यवस्था का प्रश्न उठाये जाने पर सदन की कार्यवाही निलम्बित हो जाती है। जिस सदस्य ने अध्यक्ष की आज्ञा लेकर और पूर्व सूचना के उपरान्त व्यवस्था का प्रश्न उठाया होता है उसको सुनने के पश्चात् अध्यक्ष अपना निर्णय देता है।

सदस्यों द्वारा वाद-विवाद में प्रयुक्त की जाने वाली भाषाएं संविधान के अनुच्छेद 120 के अन्तर्गत सदन का कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में किया जाता है, परन्तु जो सदस्य इन दोनों भाषाओं में से किसी भी भाषा में अपने विचारों को अच्छी तरह से व्यक्त नहीं कर सकता वह अध्यक्ष की अनुमति से संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं में से किसी भी भाषा में सदन में भाषण कर सकता है।

सदस्यों की सुविधा के लिए सदन की समूची कार्यवाही का पार्लियामेंटरी इन्टरप्रेटरों द्वारा अंग्रेजी से हिन्दी में और हिन्दी से अंग्रेजी में साथ-साथ अनुवाद किया जाता है और सदस्य इन दोनों भाषाओं में से किसी भाषा में लोक सभा चैम्बर में प्रत्येक सीट पर लगे हुए भाषा चयन स्विचों के जरिये और हैड फोन इस्तेमाल करके सदन की कार्यवाही सुन सकते हैं।

लोक सभा में असमी, बंगला, गुजराती, कन्नड, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलगु और उर्दू भाषा में दिये जाने वाले भाषणों का साथ-साथ अंग्रेजी तथा हिन्दी में अनुवाद किये जाने की भी व्यवस्था है।

संदर्भ

1 लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम, नियम 349
2. नियम 374
3 नियम 332
4 नियम 33
5 नियम 54
6 नियम 57
7 नियम 197 (1), व्याख्या (दो)
8 नियम 170
9 नियम 177 (2)
10 नियम 65 (3)
11 नियम 79 (1)
12 नियम 212
13 नियम 55 (2)
14 नियम 193
15 नियम 185
16 नियम 223
17. नियम 198 (ख)
18. अनुच्छेद 94, पहला परन्तुक।
19 नियम 176 (2) और (3)
20. नियम 333
21 नियम 337
22. नियम 335
23. नियम 351
24. नियम 360
25 नियम 362
26 नियम 363
27. नियम 367
28. अनुच्छेद 100 (1)
29 नियम 376 (1)

5

सदनों के सत्र और बैठकें

आमन्त्रण, कार्यक्रम, कार्यसूची, गणपूर्ति, स्थगन और विघटन की प्रक्रिया

संसद्, राष्ट्रपति और दो सभाओं-लोक सभा और राज्य सभा-से मिलकर बनती है। प्रत्येक सभा अपने-अपने निर्धारित क्षेत्र में संविधान के अनुसार कार्य करती है। इनमें से राज्य सभा एक स्थाई सभा है जिसका विघटन नहीं होता है, किन्तु इसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष की अवधि के पश्चात् सेवानिवृत्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित किये जाते हैं। लोक सभा वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे निर्वाचित लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा बनती है। इसका विधिवत गठन प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् निर्वाचन आयोग द्वारा अधिसूचना जारी किए जाने पर होता है।[1] यदि इसका विघटन पहले न कर दिया जाये, तो इसकी कार्यविधि प्रथम बैठक की तारीख से शुरू होकर पांच वर्ष तक होती है और पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा हो जाने के पश्चात् इसका विघटन हुआ माना जाता है। इसकी प्रथम बैठक नव-निर्वाचित सदस्यों द्वारा भारत के संविधान के प्रति शपथ अथवा प्रतिज्ञान (Oath or affirmation) किये जाने से शुरू होती है। शपथ या प्रतिज्ञान, इस प्रयोजन के लिए तीसरी अनुसूची में दिए गए प्रारूप के अनुसार ली जाती है। संसद् के प्रत्येक सदस्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपना स्थान ग्रहण करने से पहले उक्त शपथ ले या प्रतिज्ञान (Oath or affirmation) करे।[2] शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के पश्चात् सदन में अपना स्थान ग्रहण कर लिये जाने पर ही संसद् सदस्य उन उन्मुक्तियों (Immunities) तथा विशेषाधिकारों (Privileges) का अधिकारी बनता है जो सदस्यों के लिए उपलब्ध होते हैं। इसके पश्चात् ही उसको मतदान करने और संसद् की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार प्राप्त होता है।

बैठक का आमन्त्रण (Summon for Sitting)

राष्ट्रपति समय-समय पर संसद् के प्रत्येक सदन को अधिवेशन के लिए आमन्त्रित करता है। प्रत्येक सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास का अन्तर नहीं होना चाहिए।[3] छः मास की अवधि के भीतर अगले सत्र की बैठक होनी चाहिये। अधिवेशन के प्रारम्भ की प्रस्तावित तिथि और उसकी अवधि की सूचना संसदीय कार्य विभाग द्वारा राज्य सभा और लोक सभा के महासचिवों को दी जाती है। उक्त प्रस्ताव पर राज्य सभा के सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष के सहमत हो जाने पर दोनों सदनों के महासचिव उल्लेखित तारीख और समय पर सदनों को बैठक के लिए आमन्त्रित करने के लिए राष्ट्रपति के आदेश प्राप्त करते है। आदेश प्राप्त हो जाने पर उनको असाधारण राजपत्र में अधिसूचित करते हैं और तत्सम्बन्धी विज्ञप्ति जारी करते है तथा सत्र के लिए तिथि एवं स्थान का उल्लेख करते हुए प्रत्येक सदस्य को आमन्त्रण भेजते है।[4]

अस्थायी (प्रोटम) अध्यक्ष (Speaker Protem) की नियुक्ति

लोक सभा का विघटन (Dissolution) हो जाने पर भी, अध्यक्ष अपने पद पर बना रहता है और नई लोक सभा की पहली बैठक शुरू होने से पहले तक अपना पद रिक्त नहीं करता। जैसे कि पहले बताया जा चुका है, संसद् के प्रत्येक सदन का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पहले, राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त व्यक्ति के समक्ष, तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार, शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है और उस पर अपने हस्ताक्षर करता है। आम चुनाव के पश्चात् जब लोक सभा पहली बार बैठक के लिए आमन्त्रित की जाती है तो राष्ट्रपति लोक सभा के किसी सदस्य को अस्थायी अध्यक्ष (Speaker-Protem) नियुक्त करता है। सामान्यतया लोक सभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य को अस्थायी अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है। अस्थायी अध्यक्ष सदन की अध्यक्षता करता है ताकि नये सदस्य शपथ आदि ले सकें और अपना अध्यक्ष चुन सकें। इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति तब तक अपने पद पर रहता है जब तक कि अध्यक्ष का निर्वाचन नहीं हो जाता।

राष्ट्रपति का अभिभाषण

लोक सभा के लिए प्रत्येक आम चुनाव के बाद उसके पहले सत्र और प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ पर, संसद् भवन के "सेन्ट्रल हाल" में एक साथ समवेत दोनों सदनों के सामने राष्ट्रपति अभिभाषण करते है।

विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र के राज्याध्यक्ष की गरिमा के अनुकूल राष्ट्रपति शोभायात्रा द्वारा अभिभाषण के लिए संसद् भवन पहुँचते हैं जहां मुख्य द्वार पर राज्य सभा के सभापति, लोक सभा के अध्यक्ष, संसदीय कार्य मन्त्री और दोनों

सदनों के महासचिव उनकी अगवानी करते हैं और उन्हें समारोहपूर्ण जुलूस में लाल कालीन से सुसज्जित मार्ग द्वारा सेन्ट्रल हाल में ले जाते हैं। उनके पहुँचने पर राष्ट्रगान होता है और तत्पश्चात् वे अपना अभिभाषण पढ़ते हैं। उनके अभिभाषण में पिछले वर्ष के दौरान सरकार द्वारा किये गये कार्यों और उपलब्धियों का उल्लेख होता है तथा आगामी वर्ष के कार्यक्रमों एवं नीतियों का विवरण दिया जाता है उन विधेयकों आदि का जिक्र होता है जिन्हें सरकार पुरःस्थापित करना और पारित करना चाहती है। एक प्रकार से राष्ट्रपति का अभिभाषण सरकार के कार्यकलापों और तत्सम्बन्धी नीतियों का कच्चा चिट्ठा होता है और उस पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान सदन में विचार किया जाता है। प्रत्येक सदन में किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत तथा अन्य सदस्य द्वारा अनुमोदित धन्यवाद प्रस्ताव पर दोनों सदनों में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा होती है।[6] अध्यक्ष की स्वीकृति से धन्यवाद प्रस्ताव पर संशोधन के माध्यम से उन महत्वपूर्ण विषयों पर भी चर्चा की जाती है जिनके विषय में अभिभाषण में प्रकाश न डाला गया हो।[7] इस प्रकार बड़ी व्यापक चर्चा की जाती है और जागरूक सांसदों की नजर से प्रशासन की गतिविधियों का कोई भी कोना अछूता नहीं रहता है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सभी मामलों पर विचार किया जाता है। किन्तु ऐसे किसी विषय को चर्चा का माध्यम नहीं बनाया जाता है जिसका भारत सरकार से कोई सीधा सम्बन्ध न हो। स्पष्ट है कि राष्ट्रपति का अभिभाषण सरकार द्वारा तैयार किया गया उसके कार्यकलापों और नीतियों का मसौदा होता है, उन कार्यकलापों और नीतियों के लिये सरकार जवाबदेह होती है, न कि राष्ट्रपति। अतः चर्चा के दौरान राष्ट्रपति के नाम का उल्लेख नहीं किया जा सकता।

चर्चा के अन्त में, प्रधानमन्त्री द्वारा राष्ट्रपति के अभिभाषण पर वाद-विवाद का उत्तर देने की परम्परा है जिसके द्वारा सरकार की स्थिति स्पष्ट की जाती है।[8] तत्पश्चात्, संशोधनों को निपटाया जाता है और धन्यवाद प्रस्ताव सदन के मतदान के लिए रखा जाता है। प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद औपचारिक समावेदन द्वारा अध्यक्ष की मार्फत उसकी सूचना राष्ट्रपति को दे दी जाती है।[9]

अध्यक्ष/उपाध्यक्ष का निर्वाचन (Election of Speaker-Deputy Speaker)

अनुच्छेद 93 के उपबन्धों के अनुसार यह अपेक्षित है कि लोक सभा उसके गठन और प्रथम बैठक के पश्चात्, यथा संभव शीघ्र अपने दो सदस्यों को अपना अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुने। प्रधानमन्त्री या मन्त्रिमण्डल अध्यक्ष/उपाध्यक्ष के निर्वाचन का सुझाव लोक सभा सचिवालय को भेजता है और लोक सभा का महासचिव प्रधान मन्त्री के सुझाव को राष्ट्रपति को भेजता है जो निर्वाचन के लिए तिथि का अनुमोदन करता है। तत्पश्चात् महासचिव उस तिथि की सूचना प्रत्येक सदस्य को भेजता है।[10]

इस प्रकार निश्चित तिथि से एक दिन पूर्व कोई भी सदस्य, किसी भी समय, महासचिव को किसी अन्य सदस्य को सभा का अध्यक्ष चुनने के प्रस्ताव की लिखित सूचना दे सकता है। इस सूचना के साथ उस सदस्य का जिसका नाम सूचना में प्रस्तावित किया गया हो, यह कथन संलग्न होना चाहिए कि निर्वाचित होने पर वह अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए तैयार है। सामान्यतया, सत्ताधारी दल द्वारा चुने गये उम्मीदवार के निर्वाचन के लिए प्रस्ताव की सूचना प्रधानमन्त्री द्वारा या संसदीय कार्य मन्त्री द्वारा दी जाती है। प्रस्ताव की नियमानुकूल पायी जाने वाली सभी सूचनाएँ उसी क्रम में रखी जाती हैं जिस क्रमानुसार वह प्राप्त हुई हों।

निर्वाचन के लिए निर्धारित तिथि की कार्य-सूची में, जिस सदस्य के नाम में कोई प्रस्ताव हो, वह पुकारे जाने पर प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। जो प्रस्ताव प्रस्तुत किए जाते हैं और विधिवत अनुमोदित हो जाते हैं उन्हें एक-एक करके उसी क्रम में रखा जाता है जिसमें कि वे प्रस्तुत किए गए हों और यदि आवश्यक हो तो विभाजन द्वारा निश्चित किया जाता है। जैसे ही कोई प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो पीठासीन अधिकारी बाद के प्रस्तावों को रखे बिना, घोषणा करता है कि स्वीकृत प्रस्ताव में प्रस्थापित (Proposed in the motion) सदस्य सभा का अध्यक्ष चुन लिया गया है।[12]

उपाध्यक्ष को चुनने की प्रक्रिया भी वही है जैसे कि अध्यक्ष के निर्वाचन की, सिवाए इसके कि उपाध्यक्ष की निर्वाचन की तिथि अध्यक्ष नियत करता है।[13]

अध्यक्ष/उपाध्यक्ष का पद रिक्त होना

लोक सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के रूप में पद धारण करने वाला सदस्य अपना पद रिक्त कर देगा। (क) यदि वह लोक सभा का सदस्य नहीं रहे (ख) यदि वह सदस्य अध्यक्ष है तो उपाध्यक्ष को और उपाध्यक्ष है तो अध्यक्ष को अपना त्याग-पत्र भेज दे, और (ग) यदि लोक सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत द्वारा उसे पद से हटाने के लिए संकल्प (Resolution) पारित कर दिया जाये।[14]

अध्यक्ष लोक सभा के विघटन (Dissolution) के पश्चात् भी "सभा के प्रथम अधिवेशन के ठीक पहले" तक अपने पद पर बना रहता है।

सदनों की बैठकें

किसी अधिवेशन के लिए आमन्त्रण के साथ ही या उसके जारी होने के फौरन बाद प्रत्येक सदस्य को बैठकों के अस्थायी कार्यक्रम की छपी हुई प्रति भेजी जाती है जिसमें बताया जाता है कि लोक सभा की बैठक किस किस दिन होगी और कौन-कौन सा कार्य (सरकारी-गैर-सरकारी) किया जायेगा। प्रश्नों का चार्ट भी भेजा जाता है जिसमें यह जानकारी दी जाती है कि प्रश्नों के उत्तर के लिए विभिन्न मन्त्रालयों के लिए कौन-कौन से दिन नियत किये गये हैं। प्रश्नों की सूचना देने के

सम्बन्ध में ब्यौरेवार जानकारी दी जाती है। अधिवेशन (Session) के प्रारम्भ होने सम्बन्धी विभिन्न मामलों पर अन्य जानकारी के साथ-साथ उक्त सूचना संसदीय समाचार (बुलेटिन) में प्रकाशित की जाती है।

सदन की बैठकें, यदि अध्यक्ष अन्यथा निदेश नहीं देता तो, साधारणतया 11.00 बजे म.पू. प्रारम्भ होती हैं और बैठकों का सामान्य समय 11.00 बजे म.पू. से 13.00 बजे तक और 14.00 बजे से 18.00 बजे तक होता है। 13.00 बजे से 14.00 बजे तक का समय मध्याह्न भोजन के लिए छोड़ा जाता है।[15] कार्यभार की अधिकता के परिणामस्वरूप अनेक अवसरों पर आवश्यकतानुसार स्थगित कर दिया जाता है और सदन की बैठकें देर रात तक भी चलती हैं।

कार्यक्रम और कार्य-सूची

संसदीय कार्य को, सरकारी कार्य और गैर-सरकारी कार्य नाम से दो मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है,[16] अर्थात् (क) सरकार द्वारा प्रारम्भ किये जाने वाले कार्य और (ख) गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा प्रारम्भ किए जाने वाले कार्य, जो सरकारी समय में किये जाते हैं

अध्यक्ष द्वारा दिए गए निदेशों (Directions) के निदेश के अनुसार यदि किसी विशिष्ट अवसर पर अध्यक्ष निदेश न दे तो सभा के समक्ष कार्य निम्नलिखित क्रम में किया जाता है, यथा शपथ या प्रतिज्ञान, (Oath or affirmation) निधन सम्बन्धी उल्लेख, (Obituary reference) प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव (Adjournment motion) पेश करने की अनुमति, विशेषाधिकार भंग (Breach of privilege) सम्बन्धी प्रश्न, सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्र, राष्ट्रपति से प्राप्त संदेशों की सूचना, ध्यानाकर्षण सूचनाएं, वक्तव्य और वैयक्तिक स्पष्टीकरण, समितियों के लिए निर्वाचन सम्बन्धी प्रस्ताव, पेश किए जाने वाले विधेयक, नियम 377 के अधीन मामले, इत्यादि।

गैर सरकारी सदस्यों के कार्य, अर्थात् विधेयकों (Bills) और संकल्पों (Resolutions) पर प्रत्येक शुक्रवार के दिन या ऐसे अन्य दिन जो अध्यक्ष नियत करे ढाई घण्टे तक विचार होता है।[17] कार्य की कुछ ऐसी मदें भी हैं जो गैर सरकारी सदस्यों द्वारा शुरू की जाती हैं लेकिन जिन पर सरकारी कार्य के लिए नियत समय में विचार किया जाता है। किसी मन्त्री या सदस्य द्वारा दिए गए वक्तव्यों की गलतियां बताने वाले वक्तव्य और सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के अतिरिक्त इस श्रेणी में कुछ अन्य कार्य भी आते हैं जैसे: प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव, अविलम्बनीय लोक महत्त्व के मामलों (Matters of urgent Public Importance) की ओर ध्यान दिलाना, विशेषाधिकार के प्रश्न, अविलम्बनीय लोक महत्त्व के विषयों पर थोड़े समय की चर्चा, मन्त्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्ताव, प्रश्नों और उनके उत्तरों से उत्पन्न विषयों पर आधे घण्टे की चर्चाएं, नियम 377 के अधीन

मामले, इत्यादि । सरकारी कार्य की विभिन्न मदों और अन्य उन मदों के लिए, जो सरकारी समय में ली जाती है, समय की सिफारिश सामान्यत. कार्य मन्त्रणा *समिति द्वारा की जाती है ।*

गणपूर्ति (Quorum)

सभा की बैठक के लिए गणपूर्ति (कोरम) अध्यक्ष या अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे व्यक्ति सहित सदन के सदस्यों की कुल संख्या का दसवां भाग अथवा 55 सदस्यों से होती है । बैठक के प्रारम्भ में, अध्यक्ष के पीठासीन होने से पहले, प्रतिदिन यह सुनिश्चित किया जाता है कि सदन में गणपूर्ति है । गणपूर्ति न पाई जाने पर गणपूर्ति-घण्टी (Quorum Bell) बजाई जाती है और गणपूर्ति हो जाने के पश्चात् ही अध्यक्ष पीठासीन होता है । मध्याह्न भोजन के पश्चात् या स्थगित होने के पश्चात् जब सदन पुन. समवेत होता है तब भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है । सभा की बैठक के शेष समय के दौरान एक प्रथा सी है यथा बैठकों के बढ़े हुए समय में, मध्याह्न भोजन के दौरान या जब सदन की बैठक सामान्य समय के *बाद तक के लिये बढ़ा दी जाती है तो यह प्रश्न नहीं उठाया जाता । किन्तु यदि* एक भी सदस्य एक बार गणपूर्ति का प्रश्न उठा देता है तो कार्यवाही रोकनी पड़ती है और गणपूर्ति घण्टी बजानी पड़ती है और सदन की कार्यवाही गणपूर्ति होने पर ही पुन आरम्भ की जाती है ।

सभा का स्थगन या विघटन (Adjournment of House or dissolution)

दोनों सदनों या किसी एक सदन का सत्रावसान (Prorogation) करने और लोक सभा को विघटित (Dissolution) करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है । अनुच्छेद (85) (2) के अन्तर्गत राष्ट्रपति के आदेश द्वारा सभा के किसी सत्र के समाप्त किये जाने को "सत्रावसान" कहते है ।

सभा की बैठक अनिश्चिकाल के लिये या किसी और दिन तक के लिये या उसी दिन के किसी समय तक के लिये स्थगित (Adjourn) करने की शक्ति अध्यक्ष में निहित है । *अध्यक्ष सभा के अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित होने के बाद* किसी भी समय, सभा की बैठक बुला सकता है ।[18] किन्तु एक बार सभा का सत्रावसान हो जाने के पश्चात् केवल राष्ट्रपति ही दोनों सदनों को अधिवेशन के लिए आहूत कर सकता है ।

सामान्यत. किसी भी सभा के अनिश्चितकाल (Sine-die) तक के लिए स्थगित होने के बाद राष्ट्रपति उनका सत्रावसान करता है । सभा के अनिश्चितकाल के लिए स्थगित होने और उसके सत्रावसान के बीच सामान्यत दो चार दिन का अन्तराल होता है । लोकसभा के स्थगन या अनिश्चितकाल के लिए स्थगन पर सभा में लम्बित कार्य व्यपगत(Lapse) नहीं होता है, परन्तु लोकसभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियमों के नियम 335 के अनुसार सदन का सत्रावसान होने

पर किसी विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति के लिये प्रस्ताव करने के विचार की सूचनाओं के अतिरिक्त सब लम्बित सूचनायें व्यपगत हो जाती हैं और अगले सत्र के लिये नई सूचनायें देनी पड़ती है।

लोक सभा अपनी प्रथम बैठक के लिए निर्धारित तिथि से पांच वर्षों तक चलती रहती है। यदि उसे कार्यावधि पूरी होने से पूर्व भंग नहीं कर दिया जाता या उसकी कार्यावधि बढ़ायी नहीं जाती है तो राष्ट्रपति द्वारा उसे भंग करने का औपचारिक आदेश जारी न किए जाने पर भी सभा पांच वर्षों की अवधि की समाप्ति पर अपने आप भंग हो जाती है।[19]

विघटन के प्रभाव (Effects of dissolution)

लोक सभा का विघटन (Dissolution) हो जाने पर वह केवल सामान्य निर्वाचन (General election) के बाद ही समवेत होती है। संविधान के अनुसार लोक सभा का ही विघटन हो सकता है और विघटन से उसका सारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। राज्य सभा सदा बनी रहती है और वह विघटित नहीं होती है। लोक सभा के विघटन पर सभा या उसकी किसी समिति के समक्ष लम्बित (Pending) प्रत्येक विषय व्यपगत (Lapse) हो जाता है। विघटित सभा के रिकार्ड का कोई भी अंश आगे नहीं ले जाया जा सकता और नयी सभा के रिकार्ड या रजिस्टरों में समाविष्ट नहीं किया जा सकता।

सभा में लम्बित विभिन्न प्रकार के कार्यों पर विघटन के प्रभाव का संक्षिप्त ब्यौरा निम्नलिखित है —

(एक) लोक सभा में, विघटन के समय लम्बित सभी विधेयक व्यपगत हो जाते हैं, वे चाहे लोक सभा में प्रारम्भ हुए हों अथवा राज्य सभा द्वारा इसके पास भेजे गए हों, और

(दो) लोक सभा द्वारा पारित करके राज्य सभा को भेजे गए और उसके द्वारा न निबटाये गये विधेयक जो विघटन की तिथि को राज्य सभा में लम्बित हों, व्यपगत हो जाते हैं,

(तीन) राज्य सभा में पुरःस्थापित किये गये विधेयक, जो लोक सभा द्वारा पारित नहीं किए गए हों बल्कि अभी राज्य सभा में लम्बित हों, व्यपगत नहीं होते।

(चार) यदि किसी विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों में असहमति है और विघटन से पहले उस पर विचार करने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत करने के अपने आशय की सूचना राष्ट्रपति ने दे दी हो तो वह विधेयक व्यपगत नहीं होता और राष्ट्रपति द्वारा संयुक्त बैठक बुलाने के अपने आशय की सूचना देने के बाद लोक सभा का विघटन हो जाने पर भी, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में उसे पारित किया जा सकता है।[20]

(पांच) दोनो सदनो द्वारा पास किया गया और राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उसके पास भेजा गया विधेयक लोक सभा के विघटन पर व्यपगत नही होता ।

(छह) राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटाया गया विधेयक व्यपगत नही होता और न ही सभा द्वारा उस पर विचार किया जा सकता है ।

(सात) लोक सभा मे लम्बित अन्य कार्य की सभी मदें, यथा प्रस्ताव, संकल्प, संशोधन, अनुदानों की अनुपूरक मागें आदि, चाहे वे विचार की किसी भी अवस्था मे हो, विघटन पर व्यपगत हो जाती हैं ।

(आठ) याचिका समिति को निर्दिष्ट, सभा मे पेश की गई सभी याचिकाएं विघटन हो जाने पर व्यपगत हो जाती हैं ।

(नौ) लोक सभा द्वारा पास किए गए सांविधिक नियमो के अनुमोदन या रूपभेद के लिए प्रस्ताव जो राज्य सभा को उसकी सम्मति के लिए भेजे गए हो, या उसी प्रकार राज्य सभा से लोक सभा के पास भेजे गए हो, वे भी लोक सभा के विघटन पर व्यपगत हो जाते हैं ।

(दस) आश्वासन, जिन्हे सरकार ने कार्यान्वित न किया हो, व्यपगत नहीं होते और नयी लोक सभा की सरकारी आश्वासनो सम्बन्धी समिति उन पर आगे विचार करती है ।

संदर्भ

1. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 73
2. अनु. 99 और तीसरी अनुसूची, निर्देश
3. अनु. 85
4. नियम 3
5. अनुच्छेद 84
6. नियम 17
7. नियम 18
8. नियम 20
9. नियम 247
10. नियम 7 (1)
11 नियम 7 (2)

12. नियम 7 (3) और (4)
13. नियम 8 (1)
14. अनुच्छेद 94
15. नियम 12
16. मन्त्री के अलावा अन्य प्रत्येक सदस्य को गैर सरकारी सदस्य कहा जाता है, चाहे वह किसी भी दल का हो। मन्त्री सरकारी सदस्य कहलाता है।
17. नियम 26
18. नियम 15
19. सुभाष काश्यप, डिज़ोल्यूशन ऑफ द लोक सभा, द पार्लियामेंटेरियन, 57, जनवरी, 1977
20. अनुच्छेद 108

□□

6

संसद् के अधिकारी

अध्यक्ष, पीठासीन अधिकारी तथा महासचिव

किसी सदन के कार्य का संचालन सुचारू रूप से और सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिये किसी प्राधिकारी का होना आवश्यक है ताकि वह उसकी कार्यवाहियों को नियन्त्रित कर सके और उसको गरिमा प्रदान कर सके। सदनों के इस महत्त्व को देखते हुए संविधान में लोक सभा के लिए अध्यक्ष (Speaker) और उपाध्यक्ष (Deputy-Speaker) का और राज्य सभा के लिये सभापति (Chairman) और *उप सभापति (Deputy-Chairman) का उपबन्ध किया गया है।* लोक सभा में अध्यक्ष की अनुपस्थिति में, उपाध्यक्ष पीठासीन होता है और सदन की कार्यवाही संचालित करता है। इसी प्रकार सभापति की अनुपस्थिति में उप सभापति राज्य सभा की कार्यवाही को संचालित करता है और पीठासीन होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सदन में ऐसे अवसर भी आते हैं जब उपर्युक्त दोनों अधिकारी आसन ग्रहण करने के लिये उपलब्ध नहीं होते हैं, अतः एक ऐसे व्यक्ति की भी आवश्यकता रहती है जो इन दोनों की अनुपस्थिति में सभा की अध्यक्षता कर सके। *इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक सदन में सभापति तालिका (Panel of Chairman)* बनाई जाती है जिसमें सदस्यों में से अधिक से अधिक छः सदस्यों का नाम निर्देशित किया जाता है जो अपने-अपने सदन की उस समय अध्यक्षता करते हैं जब वहां दोनों पीठासीन अधिकारियों (Presiding of officers) में से कोई भी उपस्थित न हो।[1] दोनों सदनों के उक्त दो पीठासीन अधिकारियों के अलावा प्रत्येक सदन में अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारी महासचिव (Secretary-General) है जो सदन का गैर-निर्वाचित स्थायी अधिकारी होता है।

अध्यक्ष

अध्यक्ष का पद संसदीय प्रणाली में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। गत 700 वर्षों के दौरान इसकी गरिमा और शक्तियों का निरंतर विकास हुआ है।

सर्व प्रथम ब्रिटेन में 1377 में कामन्स सभा के अध्यक्ष के पद की सर्जना हुयी थी जब सर टामस हंगर फोर्ड उसके अध्यक्ष चुने गये थे तब से यह पद अनवरत कायम है और धीरे-धीरे इसकी गरिमा और शक्तियों का विकास हुआ है। शुरू-शुरू में उसके कृत्य (Debate) वाद-विवाद के अन्त में, पक्ष और विपक्ष, दोनों के तर्कों का निष्कर्ष निकालना और सदन के विचार 'क्राउन' के समक्ष प्रस्तुत करना हुआ करता था। अब वह सम्राट् के समक्ष कामन्स सभा का प्रवक्ता या "स्पीकर" हुआ करता था। आज बिल्कुल उल्टा है अध्यक्ष बहुत ही कम बोलता है, वह केवल अपने व्यक्तित्व, मान्य निर्णयों महत्व और गौरव से ही सदन की व्यवस्था को बनाये रखता है और उसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है।

राष्ट्रमण्डलीय देश (Commonwealth Countries) होने के नाते भारत में अध्यक्ष की स्थिति लगभग वैसी ही है जैसे कि कामन्स सभा में अध्यक्ष की है। संसदीय प्रणाली में उसका बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। उसका पद गरिमा, प्राधिकार और प्रतिष्ठा का पद है। वह लोक सभा का प्रमुख है। सभा के कार्य का संचालन और नियन्त्रण उसके हाथ में होता है। सदन के कार्य को चलाने सम्बन्धी सभी अधिकार उसी को प्राप्त हैं। वह सभा का प्रमुख प्रवक्ता है उसकी सामूहिक आवाज और बाहरी दुनिया के लिये सभा का एक मात्र प्रतिनिधि संसदीय प्रणाली में अध्यक्ष के पद का अध्ययन करने पर पता चलता है कि स्वतन्त्रता और निष्पक्षता इस पदधारी के दो महत्वपूर्ण गुण रहे हैं। हमारे यहां भी यह उद्देश्य कई प्रकार से सुनिश्चित होता है। वरीयता के क्रम (Order of precedence) में अध्यक्ष को बहुत ऊँचा दर्जा प्राप्त है। इस क्रम में उसका स्थान चतुर्थ रखा गया है और वह केवल राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री के बाद और सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बराबर आता है। अतः प्रधान-मन्त्री के बाद मंत्री मंडल के अन्य सभी मन्त्रियों से उसका स्थान ऊँचा है। उसका वेतन तथा भत्ते भारत की संचित निधि (Consolidated fund of India) पर भारित व्यय है अर्थात् उनके लिये संसद् की स्वीकृति आवश्यक नहीं होती। उसके निर्णय पर सिवाए मूल (सबस्टांटिव) प्रस्ताव के आपत्ति नहीं की जा सकती। वह अपना निर्णायक मत (Casting Vote) केवल उसी दशा में देता है जब किसी प्रश्न के पक्ष तथा विपक्ष में बराबर-बराबर मत आए हों।[3] जब समान मत होने की ऐसी स्थिति में वह अपना निर्णायक मत देता है तो ऐसा सदा सुस्थापित संसदीय सिद्धान्तों और प्रथाओं के अनुसार ही किया जाता है। यह संतोष की बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में ऐसा एक भी अवसर नहीं आया जब कि अध्यक्ष को अपने निर्णायक मत (Casting Vote) का प्रयोग करना पड़ा हो। अध्यक्ष की कोई राजनीति नहीं होती, वह तटस्थ (neutral) होता है। अध्यक्ष निर्वाचित होने के बाद वह अपने दल की सब गतिविधियों से अलग हो जाता है। वह किसी दल से सम्बद्ध होते हुए भी अपने

दायित्व को इस प्रकार सम्पन्न करता है जिससे ऐसा लगता है कि वह किसी भी दल मे नही है।[3] वह किसी दल का पद धारण नही करता, किसी दल की बैठकों मे या क्रियाकलापो मे भाग नही लेता और राजनीतिक विवादो से और दल के अभियानो से दूर रहता है।[4]

अध्यक्ष संविधान में उपबन्धित अपनी शक्तियो और कृत्यो का निर्वहन करते हुए सदन को सचालित करता है और उसकी कार्यवाहियो को नियन्त्रित करता है। सभा मे व्यवस्था (Order) बनाये रखना अध्यक्ष का मूल कर्त्तव्य होता है और उसकी अनुशासनात्मक शक्तियो (Disciplinary powers) का उद्गम "लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम" है। उसके निर्णयो को चुनौती नही दी जा सकती है, वे अन्तिम होते है। सभा मे उसके द्वारा की गई संविधान के उपबन्धो और प्रक्रिया सम्बन्धी नियमो की व्याख्या (Interpretation) अन्तिम व्याख्या होती है। ऐसे सब विषय जिनके बारे मे नियमो मे विशेष रूप से उपबन्ध न किया गया हो उनके सम्बन्ध मे निर्देश देने की अवशिष्ट शक्तिया (Residuary powers) अध्यक्ष को प्राप्त है।[5] ऐसा विनिर्णय (Ruling) करते समय वह किसी सदस्य से या सरकार से तथ्य एव सूचना की माग कर सकता है अथवा साक्ष्य उपलब्ध कराने को कह सकता है। इस प्रकार हर दृष्टि से विचार करने के पश्चात् उसके द्वारा दिये गये निर्णय अन्तिम होते है उन्हे चुनौती नही दी जा सकती। सदस्य सभा मे या उसके बाहर अध्यक्ष द्वारा दिये गये विनिर्णय, व्यक्त किये गये विचार या दिये गये वक्तव्य को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आलोचना नही कर सकते। किसी मामले पर पुनर्विचार करने के लिये वे अध्यक्ष से निवेदन कर सकते हैं।

सदन मे व्यवस्था बनाये रखने और उसकी कार्यवाही को सुचारू ढग से सचालित करने के लिये अध्यक्ष को बहुत शक्तिया प्राप्त हैं।[6] पीठ सीन अधिकारी की अनुमति के बिना कोई भी सदस्य सदन मे बोल नही सकता, अध्यक्ष ही इस बात का निर्णय करता है कि कोई सदस्य कब बोले[7] और उसको कितनी बार बोलने का अवसर दिया जाए। जहा तक कि वह सदस्यो के भाषण की समय सीमा निर्धारित कर सकता है, सीमा का उल्लघन करने पर भाषण समाप्त करने को कह सकता है एवं भाषण मे अभिव्यक्त असंसदीय या अभद्र विचारो (Unparliamentary Expressions) को वापस ले लेने के लिये सदस्य को आदेश दे सकता है। वह यह आदेश भी दे सकता है कि सासद् द्वारा अभिव्यक्त असंसदीय बातो को कार्यवाही वृत्तात (Proceedings) से निकाल दिया जाये।[8] कार्यवाही वृत्तात से निकाली गयी ऐसी अभिव्यक्तियो (Expressions) को समाचार पत्रो द्वारा या अन्य माध्यमो द्वारा प्रकाशित नही किया जा सकता है क्यो कि ससद् के सदनो के कार्यवाही वृत्तान्तो को प्रकाशित करने का अधिकार नही है।

सभा मे व्यवस्था (Order) कायम करने के लिये अव्यवस्था फैलाने वाले सदस्य को अध्यक्ष सभा का त्याग करने के लिए कह सकता है। यदि सदस्य उसके

आदेशों की अवहेलना करता है और सभा की कार्यवाही में लगातार बाधा डालता है तो अध्यक्ष उसका नाम लेकर उसे सभा से निलम्बित कर सकता है। सभा में घोर अव्यवस्था (Disorder) होने पर वह सभा को स्थगित कर सकता है या उसकी कार्यवाही निलम्बित कर सकता है। सदस्यों को अध्यक्ष का सम्मान करना होता है जब भी अध्यक्ष बोलने के या अपने विनिर्णय (Ruling) देने के लिए खड़ा होता है तो उसे सभी सदस्य खामोशी से सुनते हैं और यदि कोई सदस्य बोल रहा हो या बोलने लगा हो, उसे बैठ जाना होता है। अन्य सदस्यों से अध्यक्ष के सामने से बड़ी सावधानी बरतने की अपेक्षा की जाती है। सभा के विशेषाधिकार भंग (Breach of privilege) या उसकी अवमानना किए जाने संबंधी किसी विषय में प्रथमदृष्ट्या कोई सार है या नहीं, इस बात का निर्णय अध्यक्ष ही करता है।[9] उसकी अनुमति के बिना किसी सदस्य, सभा या उसकी समिति के विशेषाधिकार भंग के सम्बन्ध में कोई भी प्रश्न सभा में नहीं उठाया जा सकता। अध्यक्ष अपने आप किसी ऐसे प्रश्न को, जिसे वह उचित समझे, विशेषाधिकार समिति को जांच, अन्वेषण तथा रिपोर्ट देने के लिए सौंप सकता है। यदि वह अपनी सम्मति प्रदान नहीं करता तो उस मामले पर आगे कार्यवाही नहीं की जाती। अध्यक्ष यह सुनिश्चित बनाता है कि कोई सदस्य सदन में किसी के विरुद्ध आरोपात्मक, मानहानिकारक या दोषारोपण करने वाले वक्तव्य न दे। ऐसा करने से पूर्व सदस्य को ऐसे स्वरूप के बारे में या जिस साक्ष्य पर वे आधारित है, उसकी पूर्व सूचना अध्यक्ष को देनी होती है।

कभी-कभी अध्यक्ष अपनी विनोदप्रियता एवं सूक्ष्म बुद्धि से तनावपूर्ण क्षणों में सदन के वातावरण को प्रफुल्ल और तनाव रहित बनाता है। यूं तो यह जन्मजात गुण होते हैं किन्तु एक संवेदनशील व्यक्ति अनुभवानुसार इन गुणों को अर्जित कर लेता है। इस प्रकार अपना दायित्व निबाहते हुए अध्यक्ष सभा की गरिमा और उसकी स्वतन्त्रता बनाए रखता है और स्वस्थ वातावरण में सदन की कार्यवाही को संचालित करता है। भिन्न-भिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों के सदन में कभी कभी उत्तेजना, कोलाहल और अन्तर्बाधा के क्षण उत्पन्न होने अनिवार्य हैं किन्तु बुद्धिमान और योग्य अध्यक्ष अपनी चतुराई और वाक्पटुता से स्थिति को सम्भाल लेता है और वाद-विवाद को व्यवस्थित और सुचारू ढंग से सहायता करता है।

सभा का अध्यक्ष होने के नाते वह अपने कृत्यों के निर्वहन द्वारा सभा की गरिमा को बढ़ाता है। सभा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है और अध्यक्ष राष्ट्र के हित को सदैव ध्यान में रखता है। समय-समय पर प्राप्त होने वाली विभिन्न प्रस्तावों की सूचनाओं, प्रश्नों आदि को गृहीत करने या न करने के बारे में विचार करते समय वह उनका चयन इस प्रकार करता है जिससे लोक महत्त्व के विभिन्न मामलों

पर सदन में विचार हो सके और उनके बारे में निर्णय लिये जा सकें। अध्यक्ष होने के बावजूद वह सदन का सेवक होता है, उसका स्वामी नहीं। संविधान और प्रक्रिया संबंधी नियमों द्वारा प्रदत्त अधिकारों और शक्तियों से वह अलंकृत नहीं होता है बल्कि अपनी शक्तियों को सदन का ही एक अंश मानता है तथा सदन की व्यवस्था बनाए रखने और उसको सुचारु ढंग से चलाने के लिए उन शक्तियों का प्रयोग करता है। अपने कार्य के दौरान स्वस्थ संसदीय परम्पराओं का निर्माण करता है जो आने वाले अध्यक्षों का मार्ग-दर्शन करती हैं।

सदन की ओर से संदेश अध्यक्ष के प्राधिकार से भेजे जाते हैं और उसी के प्राधिकार से प्राप्त होते हैं।[10] सदन द्वारा पारित विधेयकों का प्रमाणीकरण अध्यक्ष द्वारा ही किया जाता है और तत्पश्चात उनको राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजा जाता है। वह विधेयकों तथा संकल्पों के सम्बन्ध में रखे गये संशोधनों में से कुछ को सदन के समक्ष रखने के लिए चुन सकता है और किसी भी ऐसे संशोधन को सदन के समक्ष रखने से इनकार कर सकता है जो उसके विचार में तुच्छ हो। सदन द्वारा पारित किसी विधेयक में प्रत्यक्ष अशुद्धियों को अध्यक्ष शुद्ध कर सकता है। वह सदन द्वारा स्वीकृत संशोधनों के अनुरूप सदन द्वारा पारित किसी विधेयक में परिणामी परिवर्तन कर सकता है। अध्यक्ष होने के नाते, सदन को भेजे गए दस्तावेज, याचिकाएं और संदेश वही प्राप्त करता है और वही सदन के सब आदेशों को कार्यान्वित करता है। वही सदन के निर्णयों का अनुपालन सम्बद्ध प्राधिकारियों से करवाता है।

लोक सभा की सभी संसदीय समितियां अध्यक्ष के नियंत्रणाधीन कार्य करती हैं, चाहे वे उसके द्वारा गठित की गई हों अथवा सदन द्वारा। अध्यक्ष ही उनके सभापतियों की नियुक्ति करता है। वह समितियों के कार्यकरण के सम्बन्ध में अथवा उनके द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के मामले में निदेश जारी करता है।[11] यदि कोई प्रक्रिया सम्बन्धी विवाद उत्पन्न होता है तो मार्गदर्शन के लिए उसको अध्यक्ष को भेजा जाता है और तत्सम्बन्धी उसका निर्णय अन्तिम निर्णय होता है जिसका अनुपालन किया जाता है। कार्य मंत्रणा समिति, सामान्य प्रयोजन समिति और नियम समिति का सभापति स्वयं अध्यक्ष होता है और वे उसके नेतृत्व में कार्य करती हैं।[12]

दोनों सदनों के आपसी सम्बन्धों के मामले में संविधान के अन्तर्गत लोक सभा अध्यक्ष को विशेष स्थान दिया गया है। यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक (Money Bill) है या नहीं तो उस पर लोक सभा के अध्यक्ष का विनिश्चय अन्तिम होता है।[13] धन विधेयक अनुमति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते समय अध्यक्ष अपने हस्ताक्षर सहित यह प्रमाणित करता है कि यह धन विधेयक है। किसी विधेयक (Bill) पर दोनों सदनों में असहमति होने पर जब कभी दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई जाती है तो ऐसी संयुक्त बैठक (Joint

sitting) की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष करता है और उसकी बैठक के संचालन से प्रक्रिया सम्बन्धी सब नियम उसके आदेशों और निर्देशों से लागू होते हैं।[14]

अध्यक्ष का यह दायित्व होता है कि वह सदस्यों के लिए समुचित सुविधाओं यथा डाकघर, आवास, टेलीफोन, वेतन तथा भत्तों की अदायगी, संसद् भवन में जलपान और विश्राम कक्षों, संसदीय पत्रों के मुद्रण और उनकी पूर्ति की व्यवस्था करे। लोक सभा का सचिवालय और सदन की इमारत अध्यक्ष के नियंत्रण में होती है। इसका सारा प्रशासन अध्यक्ष के आदेशों से ही चलता है। संसद् भवन के परिसर में सुरक्षा प्रबन्धों की व्यवस्था उसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं। अध्यक्ष गैलरियों में दर्शकों[15] और प्रेस संवाददाताओं के प्रवेश को नियमित करता है। यदि कोई उसके निर्देशों का उल्लंघन करता है तो अध्यक्ष सदन के आदेश के अनुसार दर्शकों को आवश्यक दण्ड दे सकता है। यदि कोई व्यक्ति सदन की अवमानना करने अथवा विशेषाधिकार भंग करने का अपराध करता है और इस आरोप के कारण उसकी सदन के समक्ष उपस्थिति अपेक्षित हो तो अध्यक्ष उसके नाम "समन" जारी कर सकता है। यदि सदन किसी संसद सदस्य या बाहर के किसी व्यक्ति को कारावास का दण्ड देने का प्रस्ताव स्वीकृत करता है तो उसके विरुद्ध अध्यक्ष गिरफ्तारी के वारंट भी जारी कर सकता है।

संसदीय दलों को मान्यता प्रदान करने के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त अध्यक्ष निर्धारित करता है और लोक सभा में विपक्ष के किसी दल के नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता उसी के द्वारा दी जाती है। किसी सदस्य द्वारा सदस्यता से त्यागपत्र दिये जाने पर अध्यक्ष त्याग-पत्र स्वीकार करने से पूर्व इस बात का समाधान करता है कि त्याग-पत्र स्वेच्छा से दिया गया है और सही है। यदि जाँच के पश्चात् यह पाया जाता है कि त्याग-पत्र स्वैच्छिक या असली (Voluntary or genuine) नहीं है तो वह ऐसे त्याग-पत्र को स्वीकार नहीं करता।[16]

अपनी समस्या के समाधान के लिए कोई भी सदस्य अध्यक्ष को उसके कक्ष (Chamber) में मिल सकता है। दल-बदल अधिनियम (Anti defection Bill) के अन्तर्गत किसी सदस्य की अनर्हता सबंधी विवाद का निर्णय करने की सम्पूर्ण शक्ति अध्यक्ष को प्राप्त है। उसकी पूर्व अनुमति से समय निश्चित करके कोई भी सदस्य या मंत्री उसके कक्ष में उसको मिल सकता है। अध्यक्ष के अधिकार, उसकी निष्पक्षता, योग्यता, चरित्र या आचरण पर आक्षेप विशेषाधिकार भंग (Breach of Privilege) करना समझा जाता है। वह सभा की अन्तरात्मा और रक्षक होता है। अतः सदन की गरिमा की रक्षा के लिये उसको सर्वोच्च सम्मान दिया जाना चाहिये। उसके द्वारा दिये गये निर्णय (Rulings) अन्तिम होते हैं अतः उनकी सभा में अथवा सभा के बाहर आलोचना नहीं की जा सकती।

यदि लोक-सभा का कोई सदस्य किसी दाण्डिक आरोप (Riminal Charges) के आधार पर गिरफ्तार कर लिया जाता है या उसे कारावास का दण्ड दिया

जाता है या कार्यपालिका के आदेश (executive order) के अन्तर्गत बन्दी बना लिया जाता है तो दण्डाधिकारी (Magistrate) या सरकारी अधिकारी को उसकी सूचना तुरन्त अध्यक्ष को देनी होती है। इसी प्रकार की सूचना सदस्य की रिहाई के समय भी देनी अनिवार्य है। अध्यक्ष की अनुमति प्राप्त किए बिना किसी भी सदस्य को सभा के परिसर (Precincts of the House) मे न तो बदी बनाया जा सकता है और न ही फौजदारी या दीवानी (Civil or Criminal) कानून के अन्तर्गत कोई आदेशिका उसे दी जा सकती है।[17]

अध्यक्ष सभा मे निधन सम्बन्धी उल्लेख (Obituary Reference) करता है, कार्यावधि समाप्त होने पर विदाई भाषण देता है और साथ ही महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के सम्बन्ध मे औपचारिक रूप से उल्लेख भी करता है।

अध्यक्ष भारतीय ससदीय ग्रुप (Indian Parliamentary Group) का, जो भारत मे अन्तर ससदीय सघ के राष्ट्रीय समूह (National forum) के रूप मे और राष्ट्र मण्डल ससदीय सघ की मुख्य शाखा के रूप मे कार्य करता है, पदेन प्रेजिडेंट होता है। वह राज्य-सभा के सभापति के परामर्श से, विदेशो मे जाने वाले विभिन्न ससदीय प्रतिनिधि मण्डलो के सदस्य मनोनीत करता है। वह प्राय ऐसे प्रतिनिधि मण्डलो का नेतृत्व स्वयं करता है। अध्यक्ष भारत में विधायी निकायो के पीठासीन अधिकारियो के सम्मेलन का सभापति भी होता है।

अध्यक्ष लोक सभा सचिवालय का प्रमुख होता है जो कि उसके निर्देश और नियन्त्रण मे कार्य करता है। उसे सचिवालय के कर्मचारियों पर सदन के परिसर पर और संसद् भवन सम्पदा पर सर्वोच्च प्राधिकार प्राप्त है। वह अपने इस प्राधिकार का प्रयोग लोक सभा के महा सचिव की सहायता से करता है।[18]

अध्यक्ष की गरिमा और संसदीय प्रणाली में उसके महत्व को देखते हुए, तत्कालीन प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने 8 मार्च, 1958 को अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल के चित्र का अनावरण करते हुये कहा था ;

"अध्यक्ष सभा का प्रतिनिधि है। वह सभा की गरिमा और उसकी स्वतंत्रता का प्रतीक है और चूंकि सभा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है, अत: एक तरह से अध्यक्ष राष्ट्र की स्वतन्त्रता और आजादी का प्रतीक बन जाता है। अत यह उचित ही है कि अध्यक्ष का पद सम्मानित पद है। उसकी स्वतंत्र स्थिति है। इस पद पर वही व्यक्ति आसीन होने चाहिये जो असाधारण रूप से योग्य तथा निष्पक्ष हो।"

भारत मे अध्यक्ष पद का इतिहास 1921 से आरम्भ होता है। ब्रिटिश ससद् की सयुक्त समिति ने, जिसे मोंटेगू चेम्सफोर्ड समिति के नाम से भी जाना जाता है, भारत मे सवैधानिक सुधारो के बारे मे सिफारिश की थी जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय विधान सभा की व्यवस्था की गई और उस समय के वाइसराय ने सर फ्रेडरिक वाइट को केन्द्रीय विधान मंडल का प्रथम अध्यक्ष मनोनीत किया।

24 अगस्त, 1925 को श्री विट्ठल भाई पटेल, प्रथम गैर-सरकारी अध्यक्ष के रूप में चुने गये। 20 जनवरी, 1927 को वह पुन: निर्वाचित हुए और 1930 तक अध्यक्ष पद पर रहे। 25 अप्रैल, 1930 को उन्होंने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। श्री पटेल को केन्द्रीय विधान मण्डल का प्रथम भारतीय और प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष होने का श्रेय प्राप्त था।

श्री गणेश वासुदेव मावलंकर को 1946 में केन्द्रीय विधान सभा का प्रेजीडेंट बनाया गया। 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक वह इस पद पर रहे। 1947 में वह पुन: संविधान सभा (विधायी) के सर्व सम्मति से अध्यक्ष चुने गये। जनवरी 1950 को जब भारत को गणतन्त्र घोषित किया गया तो अस्थायी संसद् (Provisional Parliament) की अध्यक्षता का पद श्री मावलंकर को दिया गया। प्रथम आम चुनावों के परिणामस्वरूप गठित प्रथम लोक सभा में उनको प्रथम अध्यक्ष के रूप में चुना गया।

अब तक प्रेजीडेंट अध्यक्ष पद सुशोभित करने वाले व्यक्तियों के नाम और पदावधियां इस प्रकार हैं –

स्वतन्त्रता-पूर्व की अवधि

सर फ्रेडरिक व्हाईट	3 फरवरी, 1921	अगस्त, 1925
विट्ठलभाई जे पटेल	24 अगस्त, 1925	28 अप्रैल, 1930
मोहम्मद याकूब	9 जुलाई, 1930	31 जुलाई, 1930
इब्राहीम रहीमतुल्ला	17 जनवरी, 1931	7 मार्च, 1933
सर शनमुखम चेट्टी	14 मार्च, 1933	31 दिसम्बर, 1934
अब्दुर रहीम	24 जनवरी, 1935	1 अक्तूबर, 1945[20]
गणेश वासुदेव मावलंकर	24 जनवरी, 1946	14 अगस्त, 1947[21]

स्वतन्त्रता-पश्चात् की अवधि

गणेश वासुदेव मावलंकर	17 नवम्बर, 1947	25 जनवरी, 1950
	(संविधान सभा) (विधायी)	
	26 जनवरी, 1950	17 अप्रैल, 1952
	(अस्थाई संसद)	
	17 अप्रैल, 1952	15 मई, 1952[22]
	(लोक सभा)	
	15 मई, 1952	27 फरवरी, 1956
अनन्तशयनम अय्यंगार	8 मार्च, 1956	16 अप्रैल, 1962
हुकम सिंह	17 अप्रैल, 1962	16 मार्च, 1967
डा० नीलम संजीव रेड्डी	17 मार्च, 1967	19 जुलाई, 1969
डा० गुरदयाल सिंह ढिल्लन	9 अगस्त, 1969	1 दिसम्बर, 1975

बलिराम भगत	5 जनवरी, 1976	25 मार्च, 1977
डा० नीलम संजीव रेड्डी	26 मार्च, 1977	13 जुलाई, 1977
के० एम० हेगडे	21 जुलाई, 1977	21 जनवरी, 1980
डा० बलराम जाखड	22 जनवरी, 1980	18 दिसम्बर, 1989
रवि राय	19 दिसम्बर 1989	

उपाध्यक्ष

1950 में संविधान के लागू होने के बाद से उपाध्यक्ष के पद का महत्व बढ़ गया है और उसकी स्थिति अधिक प्रमुख हो गई है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सभा की अध्यक्षता (Preside) करता है। इस प्रकार अध्यक्षता करते हुए उसे वह सभी शक्तियां प्राप्त होती है, जो प्रक्रिया नियमों के अधीन अध्यक्ष को प्राप्त हैं।

उपाध्यक्ष उस बजट समिति का सभापति होता है जो सचिवालय के बजट प्रस्ताव सामान्य बजट में सम्मिलित करने के लिए वित्त मंत्रालय को भेजे जाने से पूर्व अनुमोदित करती है। वह अध्यक्ष के अधीन नहीं है, बल्कि उसकी स्वतंत्र स्थिति है और वह केवल सभा के प्रति उत्तरदायी है। जबकि अध्यक्ष लोक सभा का प्रमुख अधिकारी या प्रशासनिक प्रमुख होता है, सचिवालय के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी उसके अधीनस्थ कर्मचारी होते हैं, किन्तु उपाध्यक्ष, अध्यक्ष का कनिष्ठ अधिकारी नहीं होता है। वह तो भारत के संविधान के उपबन्धों के अधीन पीठासीन उप-अधिकारी (Deputy presiding officer) होता है।

केन्द्रीय विधान सभा के दिनों में, सभा की बैठकों का क्रम आज की तरह नहीं था। तब बैठक कम अवधि के लिए होती थी और वह भी काफी समय के बाद। आजकल लोक सभा की बैठक साल में लगभग सात महीने तक होती है और प्रत्येक बैठक लगभग सात घन्टे तक चलती है। अध्यक्ष के लिए यह व्यवहार्य नहीं होता है कि वह बैठक के दौरान सारा समय सभा में रहे। उसे अपने कक्ष में अन्य संसदीय मामलों को भी निपटाना होता है। अतः अध्यक्ष विशेषतया मध्याह्न पूर्व प्रश्न काल के दौरान और उसके तुरन्त बाद के कठिनाई के समय में पीठासीन रहता है। बैठकों के शेष समय, सदन की अध्यक्षता उपाध्यक्ष करता है। यदि वह अनिवार्य समझे तो सभा के किसी मामले को अध्यक्ष के विनिर्णय के लिए रक्षित रख सकता है या स्वयं निर्णय देने के पूर्व उससे परामर्श कर सकता है। इसके अतिरिक्त जब भी अध्यक्ष का पद रिक्त हो तो उपाध्यक्ष को उस पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है।

उपाध्यक्ष की स्थिति अध्यक्ष (Speaker) से भिन्न है। उपाध्यक्ष सभा में बोल सकता है, उसकी चर्चाओं में भाग ले सकता है और सभा के सामने किसी भी प्रश्न पर किसी अन्य सदस्य की तरह वोट दे सकता है, परन्तु यह काम वह तभी कर

सकता है जबकि अध्यक्ष सभा की अध्यक्षता कर रहा हो। जब उपाध्यक्ष सभा की अध्यक्षता कर रहा हो, उस समय वह तभी वोट दे सकता है जब किसी विषय के पक्ष में तथा विपक्ष में बराबर-बराबर वोट पड़ें।

उपाध्यक्ष अपने दल की राजनीति में भाग भी ले सकता है, परन्तु व्यवहार में वह सदन में अपनी निष्पक्षता बनाए रखने के लिए जहां तक हो सके विवादास्पद (Controversial) मामलों में भाग लेने से परहेज करता है।

संसद् के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के दौरान अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसी दिन की अध्यक्षता उपाध्यक्ष करता है।

उपाध्यक्ष के पद के साथ साथ कुछ अधिकार और परम्पराएं भी विकसित हुई हैं, यथा, यदि उपाध्यक्ष किसी संसदीय समिति का सदस्य मनोनीत होता है या नियुक्त किया जाता है तो वह पदेन उसका सभापति भी नियुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त, उपाध्यक्ष के पद के लिए सामान्यतया विपक्ष के किसी सदस्य को चुना जाता है।

1947 तक उपाध्यक्ष को "डिप्टी प्रेजीडेंट" कहा जाता था, जो व्यक्ति उपाध्यक्ष के पद पर रहे हैं, नीचे उनके नाम और निर्वाचन की तिथियां दी गई हैं

स्वतन्त्रता पूर्व

1. सच्चिदानन्द सिन्हा (3 फरवरी, 1921)
2. सर जमशेदजी जीजीभाय (21 सितम्बर, 1921)
3. दीवान बहादुर टी रंगाचारियर (4 फरवरी 1924)
4. सर मोहम्मद याकूब (30 जनवरी, 1927)
5. एच एस गौड़ (11 जुलाई 1930)
6. षनमुखम चेट्टी (19 जनवरी, 1931)
7. अब्दुल मातिन चौधरी (21 मार्च, 1934)
8. अखिल चन्द्र दत्त (5 फरवरी, 1936)
9. सर मोहम्मद यामीन खां (5 फरवरी, 1946)

स्वतन्त्रता पश्चात्

1. एम अनन्तशयनम अय्यंगार (30 मई, 1952–8 मई, 1956)
2. सरदार हुकम सिंह (20 मई, 1956–31 मार्च, 1962)
3. कृष्णमूर्ति राव (23 अप्रैल, 1962–3 मार्च, 1967)
4. आर के खाडिलकर (8 मार्च, 1967–1 नवम्बर, 1969)
5. जी जी स्वैल (9 दिसम्बर, 1969–6 जनवरी, 1977)
6. गौड़े मुराहरि (1 अप्रैल, 1977–22 अगस्त, 1979)
7. जी लक्ष्मणन (2 फरवरी, 1980–31 दिसम्बर, 1984)
8. थाम्बी दुरै (22 जनवरी, 1985–27 नवम्बर, 1989)

सभापति तालिका (Panel of Chairmen)

अध्यक्ष/उपाध्यक्ष के लिए लगातार सात घंटों के लिए सदन की बैठक में उपस्थित रहना सम्भव नहीं हो सकता है। क्योंकि वे तनिक आराम भी करना चाहेंगे, कभी अस्वस्थ हो सकते हैं, उन दोनों को सभा के बाहर भी कुछ काम हो सकते हैं, इस प्रयोजन के लिए अध्यक्ष समय-समय पर सभा के सदस्यों में से छह सदस्यों को सभापति तालिका (Panel of chairmen) के लिए मनोनीत करता है। इनमें से कोई एक सदस्य अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभा की बैठक की अध्यक्षता करता है। सदस्यों को सभापति तालिका के लिए मनोनीत करते समय अध्यक्ष सभा में विभिन्न दलों का ध्यान रखता है और यह भी ध्यान रखता है कि *उसमें महिला सदस्य भी हो। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए कि अध्यक्ष/उपाध्यक्ष* और सभापति तालिका का कोई भी सदस्य सदन में उपस्थित न हो तो सभापति के रूप में कार्य करने के लिए सदन द्वारा सदन का कोई अन्य सदस्य चुन लिया जाता है, और वह तब तक बैठक की अध्यक्षता करता है जब तक कि सभापति तालिका का कोई सदस्य या उपाध्यक्ष या अध्यक्ष पीठासीन होने के लिए सदन में नहीं आ जाता।

उपाध्यक्ष की तरह सभापति तालिका के सदस्य को भी सदन की बैठक की अध्यक्षता करते समय वही शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो कि अध्यक्ष को प्राप्त हैं। सभापति द्वारा दिए गए विनिर्णयों (Rulings) की आलोचना नहीं हो सकती, वे भी वैसे *ही अन्तिम और बंधनकारी होते हैं जैसे कि अध्यक्ष द्वारा दिये गये विनिर्णय होते हैं।* महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में अधिकृत विनिर्णय के लिए, सभापति उन विषयों को अध्यक्ष के लिए रक्षित रखता है। पीठासीन सभापति के आचरण की निन्दा करना सदन की अवमानना समझी जाती है अत उसे भी वही सम्मान दिया जाना चाहिए जो कि पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer) को दिया जाना होता है।

चूंकि सभापति तालिका में मनोनीत (Nominated) सदस्य दोनों पक्षों— सत्तारूढ़ दल (Ruling Party) और विपक्षी दलों में से लिये जाते हैं, अतः सभापति को सभा की सारी चर्चाओं में पूरी तरह से भाग लेने और विवादास्पद विषयों *समेत सदन के समक्ष आने वाले सभी विषयों में सक्रिय भाग लेने की स्वतन्त्रता होती है। वह अपने दल की बैठकों में भाग लेता है और सामान्यतः दल का सक्रिय* सदस्य होता है। सभापति तालिका का सदस्य, सामान्यतः इस पद पर एक वर्ष तक रहता है किन्तु एक ही व्यक्ति को बार-बार मनोनीत किया जा सकता है। अध्यक्ष राजनीतिक दलों के परामर्श से सभापति तालिका के सदस्यों का चयन करता है।

महासचिव (Secretary General)

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के बाद सदन का तीसरा महत्त्वपूर्ण अधिकारी महासचिव होता है। सदन के संचालन (Conduct) में इसका बड़ा अहम योगदान

होता है । सक्षेप में उसे सदन का प्रमुख सलाहकार कहा जा सकता है जो संसदीय कृत्यों और क्रियाकलापों में और प्रक्रिया एवं प्रथा संबंधी सभी मामलों में अध्यक्ष और सदस्यों को परामर्श देता है । सदस्य तो प्रत्येक आम चुनाव के बाद बदलते हैं किन्तु यह सदन का स्थाई अधिकारी होता है जो परिवर्तनशील विभिन्न सदनों और अध्यक्षों के बीच निरन्तर कड़ी का काम करता है । वह संसदीय प्रथाओं और परम्पराओं (Parliamentary customs & traditions) का रक्षक होता है । उससे यह आशा की जाती है कि वह प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों, प्रथाओं और परम्पराओं तथा संविधानिक उपबन्धों का सर्वज्ञाता हो । यदि उसे संसदीय मामलों का सर्वज्ञाता कहा भी जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । वास्तव में वह पहले के अनेक सदनों, पीठासीन अधिकारियों और स्वयं अपने पूर्वाधिकारियों के संचित ज्ञान (accumulated knowledge), विवेक एवं अनुभव का पुंज होता है । उसका जीवन संसदमय होता है ।

महासचिव के बहु-आयामी कृत्य हैं जिनमें विधायी, प्रशासनिक एवं कार्यपालिका संबंधी कृत्यों का निर्वहन और सदस्यों को सेवाएं और सुविधाएं उपलब्ध करना शामिल है । एक ओर जहाँ वह वाच्स एण्ड वार्ड संगठन (Watch ot ward organisation) और संसद् सम्पदा (Parliament-Estate) के परिसर में सुरक्षा के लिए सर्वोच्च प्रभारी अधिकारी है तो दूसरी ओर वह संसद् भवन, संसदीय सौध और संसद् की अन्य सम्पत्तियों के रखरखाव और मरम्मत के लिए उत्तरदायी है । संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार (Parliamentary museaum & Archives) का सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते वह संसद् की विरासत का रक्षक है और सब संसदीय अभिलेखों का परिरक्षक/संसद् ग्रन्थालय शोध, संदर्भ, प्रलेखन और सूचना सेवाएं भी उसी के अधीन कार्य करती हैं ।

विधायी सेवाओं और सदन के सचिवालय का प्रमुख अधिकारी होने के नाते, उसके प्रशासन और उसमें अनुशासन बनाए रखने के लिए वह उत्तरदायी है । महासचिव यह सम्भव बनाता है कि सदन और उसकी समितियों का सचिवीय कार्य-विधि अनुसार, दक्षतापूर्वक एवं सुव्यवस्थित ढंग से हो । इसके लिए वह उन्हें सचिवीय सहायता और अपेक्षित कर्मचारी उपलब्ध कराता है और स्वयं मंत्रणा देने के लिए उपलब्ध रहता है । ऐसे में सदस्यों और समितियों के लिए उसकी भूमिका मित्र, विचारक और मार्ग-दर्शक की होती है । सचिवालय का प्रमुख अधिकारी होने के नाते सरकारी पक्ष के और विपक्ष के सदस्य समान रूप से परामर्श के लिए उसके पास आते हैं और वह बिना किसी भेद-भाव के वांछित जानकारी उपलब्ध कराता है । वह भी उसी प्रकार निष्पक्षता से अपने दायित्व निभाता है जिस प्रकार कि अध्यक्ष । इस प्रकार दोनों पक्षों के बीच एक संतुलन कायम रखता है और निष्पक्ष राय उपलब्ध करा कर सदस्यों का विश्वास अर्जित करता है । इस शीघ्र

बदलती दुनिया में उससे अपेक्षा की जाती है कि वह पूरी तरह से जागरूक और शीघ्र निर्णय लेने वाला व्यक्ति हो। साथ ही में उसके लिए संसदीय कार्यों के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्रों की पर्याप्त और नवीनतम जानकारी रखना और उसे उचित रूप में आत्मसात करना भी अपेक्षित है। अतः स्पष्ट है कि महासचिव के पद पर आसीन होने वाले व्यक्ति के लिए प्रतिभावान और संसदीय कार्यों में निपुण होना अनिवार्य है। उसके लिए एक ही समय में संविधानवेत्ता, लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों का ज्ञाता, सदन की प्रथाओं और परिपाटियों का जानकार होना होता है। उसे विभिन्न श्रेणियों के अनेक योग्य और विद्वान अधिकारियों की सहायता आवश्यक होती है। कार्य का आयोजन इस रीति से व्यवस्थित किया जाता है कि प्रत्येक इकाई संसदीय जीवन के किसी विषय विशेष या पहलू विशेष सम्बन्धी कार्य कर और उसमें प्रतिभा वाले कर्मचारी रखे जायें जो तकनीकी तौर पर योग्य हों और जो अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन तत्परता और कुशलता के साथ करें। यह देखना महासचिव का कर्त्तव्य है कि समय-समय पर रिक्त होने वाले पदों को भरने के लिए पर्याप्त कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया जाए और संसदीय कार्य की कुशलता का एक उच्च स्तर सदा बना रहे। अतः सदन के सचिवालय के संगठन का रूप एवं स्वरूप तय करना महासचिव का पद धारण करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व और दृष्टिकोण पर काफी निर्भर करता है।

महासचिव की नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा की जाती है। उसे लोक सभा सचिवालय के उन वरिष्ठ अधिकारियों में से चुना जाता है जिन्होंने सचिवालय में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए संसद् की सेवा में सराहनीय कार्य किया हो। वह महासचिव के पद पर 60 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक कार्यरत रहता है। सदन में उसकी आलोचना नहीं की जा सकती। वह केवल अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होता है। उसके लिए सेवा की सुरक्षा तथा स्वतंत्रता प्रदान करने की दृष्टि से और इस दृष्टि से पर्याप्त रक्षात्मक उपायों की व्यवस्था की गई है कि वह अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन उत्साह, निर्भीकता, निष्पक्षता तथा न्यायोचित ढंग से और सर्वोच्च जनहित में करे। लोक सभा सचिवालय पूर्णतः पृथक् और अध्यक्ष के सर्वोच्च नियंत्रणाधीन है ताकि संसद् को स्वतंत्र परामर्श मिल सके और इसके निर्देशों को किसी बाहरी हस्तक्षेप या आंतरिक दबाव के बिना उचित कार्य रूप दिया जा सके।

नियमों में उल्लिखित संसदीय कर्त्तव्यों के अतिरिक्त महासचिव बहुत से अन्य काम प्रथा और परिपाटी के आधार पर करता है। वह राष्ट्रपति की ओर से सदस्यों को सदन के अधिवेशन में उपस्थित होने का आमंत्रण देता है। वह अध्यक्ष की अनुपस्थिति में विधेयकों को प्रमाणित करता है। सदन को सम्बोधित या उसके लिए भेजी गयी याचिकाएँ, दस्तावेज, तथा पत्र प्राप्त करता है। दीर्घाओं (Galleries) में, दर्शकों के (प्रवेश के लिए) प्रवेश-पत्र जारी करता है। अध्यक्ष की

और न सदस्यों, मंत्रियों तथा अन्यों के साथ पत्र-व्यवहार करता है। सदन और उसके सचिवालय के वित्त एवं लेखाओं पर नियंत्रण रखता है। सदन की प्रत्येक बैठक की कार्यवाही का सारांश, संक्षिप्त विवरण तथा शब्दशः वृत्तान्त तैयार करवाता है और उन्हें छपवाता है। कार्य-सूचियों, बुलेटिन और मशोधनों की सूचनाएं परिचालित करता है। सदन के विचाराधीन विभिन्न विषयों के संबंध में सदस्यों द्वारा वांछित जानकारी उपलब्ध करवाता है। सदस्यों और अन्य लोगों के लिए उपयोगी बहुत सी पत्रिकाओं और अन्य संसदीय प्रकाशनों (Parliamentary periodicals and publications) का सम्पादन करता है और उन्हें प्रकाशित करवाता है। संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण ब्यूरो (Bureau of Parliamentary Studies and Training) का प्रमुख होने के नाते, वह नए संसद् सदस्यों और राज्य विधान मण्डलों के नए सदस्यों, भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, और अन्य अखिल भारतीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारियों के लिए भारत सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए, विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और देश एवं विदेशों से आए संसदीय अधिकारियों के लिए संसदीय संस्थाओं और प्रक्रियाओं में अध्ययन पाठ्यक्रम, विचार गोष्ठियां, प्रशिक्षक एवं प्रबोधन कार्यक्रम (Training and refresher cources) इत्यादि आयोजित करता है।

भारतीय संसदीय ग्रुप (Indian Parliamentary Group) के सचिव के नाते, वह राष्ट्र मण्डल संसदीय संघ और अन्तर संसदीय संघ की भारत शाखा की गतिविधियों का भी आयोजन करता है। वह संसदीय प्रतिनिधि मण्डलों (Parliamentary delegations) के साथ विदेशों में जाता है। जब राष्ट्रमण्डल अध्यक्षों (Commanwealth Speakers) का देश में सम्मेलन (Conference) होता है तो लोक सभा का महासचिव उस सम्मेलन का पदेन महासचिव होता है। वह भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन (Presiding officer conference) के लिए भारत के विभिन्न विधान मण्डलों और संसदीय समितियों के सभापतियों के सम्मेलनों के लिए सचिवीय कर्तव्यों के विवरण तैयार करने और सम्मेलनों के आयोजन के लिए उत्तरदायी होता है। संसदीय कार्यों से भिन्न क्रिया-कलापों यथा विदेशी प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा सदस्यों के समक्ष भाषण, स्वागत समारोह, संसदीय सद्भावना मिशन (Parliamentary goodwill mission) विदेशों में भेजने या विदेशों से भारत आने वाले ऐसे मिशनों का स्वागत करना इत्यादि के लिए भी उत्तरदायी होता है।

महासचिव के उपरोल्लिखित विस्तृत कर्तव्यों एवं दायित्वों के अतिरिक्त बहुत से अन्य कृत्य भी हैं जिनको वह अध्यक्ष की ओर से और उसके नाम से करता है। वह अध्यक्ष की शक्तियों के प्रयोग तथा कृत्यों के सम्पादन के विषय में अध्यक्ष का सलाहकार है और अध्यक्ष के माध्यम से वह सभा को भी सलाह देता है। उदाहरणार्थ, प्रश्नों, प्रस्तावों आदि की विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की अनुमति देने

या अनुमति न देने के मामले में अध्यक्ष की जिन शक्तियों का प्रयोग महासचिव करता है, वे प्रत्यायोजित शक्तियाँ नहीं है। वास्तव में अध्यक्ष की ये शक्तियाँ प्रत्यायोजित कही नहीं जा सकती। ये शक्तियाँ केवल अध्यक्ष में निहित हैं और वह इनका प्रयोग कर सकता है। अतः महासचिव द्वारा दिए गए आदेश अध्यक्ष के नाम से दिए गए आदेश है और अध्यक्ष उन आदेशों के लिए पूर्ण रूपेण जिम्मेदारी स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार हम देखते है कि उन दोनों में परस्पर एक अटूट विश्वास का सम्बन्ध है जो अलिखित है और अवर्णनीय है।

राज्य सभा का सभापति

भारत का उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति (ex-officio chairmen) होता है वह राज्य सभा के अधिवेशनों की अध्यक्षता करता है। जिस अवधि के दौरान उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है या जब वह राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है, उस अवधि के दौरान वह राज्य सभा में सभापति पद के कर्त्तव्यों का निर्वहन नहीं करता। उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional representation) पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single transferable vote) द्वारा किया जाता है और ऐसे निर्वाचन में मतदान गुप्त होता है। उपराष्ट्रपति संसद् के किसी सदन का या किसी राज्य के विधान मण्डल के किसी सदन का सदस्य नहीं होता। वह अपना पद ग्रहण करने की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक या अपना पद त्याग करने तक या राज्य सभा के ऐसे संकल्प द्वारा अपने पद से हटाए जाने तक जिसे राज्य सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत ने पास किया हो और जिससे लोक सभा सहमत हो गई हो, पद धारण करता है।[25]

राज्य सभा के पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) के रूप में और राज्य सभा सचिवालय के प्रमुख के रूप में उसके कृत्य और कर्त्तव्य लगभग वही है जो लोक सभा के अध्यक्ष के है।[26]

उप सभापति

राज्य सभा का उप सभापति (Deputy chairmen), सभा के सदस्यों द्वारा अपने सदस्यों में से चुना जाता है। वह राज्य सभा का सदस्य बने रहने तक या अपना पद त्याग करने तक या राज्य सभा में ऐसे संकल्प द्वारा अपने पद से हटाये जाने तक जिसे राज्य सभा के सदस्यों के बहुमत ने पास किया हो, पद धारण करता है।

राज्य सभा के पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) के रूप में उप-सभापति सभी प्रकार से उन्हीं कर्त्तव्यों, कृत्यों और शक्तियों का प्रयोग करता है जैसे कि लोक सभा का उपाध्यक्ष करता है।[27]

सभापति तालिका और महासचिव

सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में अधिवेशन के दौरान सदन की बैठक की अध्यक्षता करने के लिए राज्य सभा का सभापति सभा के सदस्यों में से सदस्यों की एक तालिका (Panel) बनाता है। तालिका में से एक सदस्य सभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में राज्य सभा की बैठक की अध्यक्षता करता है। तालिका के सदस्यों को वाईस चेयरमैन कहा जाता है। राज्य सभा का वाईस चेयरमैन और महासचिव राज्य सभा के सम्बन्ध में लगभग उन्हीं कृत्यों और कर्तव्यों का पालन करते हैं जिनका पालन लोक सभा के संबंध में सभापति तालिका के सदस्य और महासचिव करते हैं।

संदर्भ

1. अनु. 64, 89, और 91 नियम 9
2. अनु. 94, 96, 100 (1) और 110 (3) (ख)
3. श्री एन. संजीव रेड्डी ही ऐसे अध्यक्ष हुए हैं (1967-69 के दौरान) जिन्होंने अपने दल से पद त्याग किया था।
4. इस विषय पर चर्चा के लिए देखिए सुभाष कश्यप, अध्यक्ष की भूमिका, लोकतंत्र समीक्षा, जुलाई, सितम्बर, 1969 (खंड 3) सांविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली
5. नियम 389
6. नियम 378
7. नियम 350
8. नियम 353, 356 और 380
9. नियम 222 और 225
10. नियम 23, 246 और 247, अनु. 86 (2)
11. नियम 258 और 283
12. नियम 287, 330 और परिशिष्ट 2
13. अनु. 110, नियम 96 (2)
14. अनु. 108 और 118 (4) देखिए संसद के सदन (संयुक्त बैठकें तथा पत्राचार) नियम
15. नियम 386
16. अनु. 101 (3)

17 नियम 229–232
18 अनु 98 और निर्देश 124 और 124 क
19 1947 तक अध्यक्ष को प्रेजीडेंट कहा जाता था।
20 पांचवीं विधान सभा की कार्यावधि 1935 से 4–2–1945 तक थी।
21 छठी केन्द्रीय विधान सभा 14 अगस्त, 1947 के पश्चात् अस्तित्व में नहीं रही और भारतीय संविधान सभा को, जो 9–12–1946 से कार्यरत थी, देश के विधान मण्डल के रूप में कार्य करने का अधिकार दिया गया।
22 अस्थायी संसद 17–4–1952 को अस्तित्व में नहीं रही। राष्ट्रपति ने श्री मावलंकर को ऐसे समय तक अध्यक्ष के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए नियुक्त किया जब तक कि प्रथम लोक सभा का प्रथम अध्यक्ष विधिवत् चुन लिया नहीं जाता।
23 अनु 93–95, नियम 10
24 सभा की कार्यावधि युद्ध आदि के कारण चूंकि समय-समय पर 1945 तक बढ़ाई जाती रही अतः श्री दत्त लगभग दस वर्षों तक पद पर बने रहे।
25 नियम 9 और 10
26 अनु 64,66,67 और 69
27 अनु 89–91

□□

7

प्रश्न प्रक्रिया

प्रश्नों के प्रकार, ग्राह्यता के नियम, आधे घंटे की चर्चा और "शून्य" काल

संसद् की एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रशासन पर निगरानी रखना है। इस दायित्व को निबाहने के लिए संसदीय प्रश्न एक सशक्त माध्यम है। संसदीय लोकतन्त्र की प्रणाली वाले प्रत्येक देश में इस माध्यम का प्रयोग किया जाता है। प्रश्नोत्तर काल के माध्यम से देश का प्रत्येक नागरिक संसद् के साथ जुड़ता है। अपने प्रतिनिधि के माध्यम से संसद के दरवाजे पर आकर अपनी गुहार करता है, अपनी शिकायतें रखता है। इस प्रकार सरकार अपनी प्रत्येक भूल-चूक के लिए संसद् के प्रति और संसद् के द्वारा लोगों के प्रति उत्तरदायी होती है। सदस्यों को सम्बन्धित मन्त्रियों के विशेष विभागाधिकार में आने वाले सार्वजनिक महत्व के मामलों के बारे में सूचना प्राप्त करने हेतु प्रश्न पूछने का अधिकार है। अतः प्रशासन से जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक गैर-सरकारी सदस्य का अन्तर्निहित एवं निर्बाध संसदीय अधिकार है। अपने इस उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिए सदस्य सरकार के प्रत्येक क्रिया कलाप (Activity) पर पैनी दृष्टि रखता है और किसी भी ऐसे अवसर से नहीं चूकता जो जनहित को प्रभावित करने वाला हो। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सदस्य द्वारा प्रश्न पूछने का मूल उद्देश्य जनहित के किसी मामले के बारे में जानकारी प्राप्त करना और तत्सम्बन्धी तथ्य जानना है। इससे प्रश्नों का व्याप्ति क्षेत्र बढ़ जाता है। इनकी परिधि में सरकार द्वारा घोषित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों का कार्यान्वयन (Implementation of National & Inter-National Policies) धन-विधेयक (Money Bill), कटौती प्रस्ताव (Cut-motions), यहाँ तक कि प्रशासन के लगभग सभी पहलुओं की छानबीन की जाती है।

प्रश्नों के उत्तर केवल सदन में दिये जाते हैं। दोनों सदनों में प्रत्येक बैठक के पहले घण्टे के दौरान प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके उत्तर प्राप्त किये जाते हैं।

इसे "प्रश्न काल" (Question hour) कहा जाता है।[1] इस काल के दौरान संसद सदस्य सर्वसाधारण महत्त्व के विषयों के बारे में प्रश्न पूछते हैं और उन पर चर्चा करते हैं। कहीं किसी स्थान पर किसी सरकारी अधिकारी ने जनता के साथ दुर्व्यवहार किया, सरकारी आदेशों या नीतियों का पालन नहीं किया, भ्रष्टाचार किया या जन जीवन को किसी प्रकार की हानि पहुंचाई तो वह प्रश्न के रूप में मन्त्री के सामने आ जाता है और मन्त्री का उत्तर देना पड़ता है। उस सम्बन्ध में जो पूरक प्रश्न पूछे जाते हैं, उनके लिए तैयार होना पड़ता है। इस प्रकार अधिकारी भी सचेत हो जाते हैं। अत प्रश्नों द्वारा सम्पूर्ण प्रशासन में क्रियात्मक संचार होता है। विभागों की त्रुटियां मन्त्रियों की जानकारी में आती हैं और अधिकारी उनका निराकरण करके अपने कार्यकरण में सुधार करते हैं।

संसद् में प्रश्नकाल के माध्यम से सोधे कही हुई बात का प्रभाव पड़ता है। वह समाचार पत्रों में छपती है और उसका व्यापक प्रसार होता है। अत प्रश्न काल संसद् की कार्यवाहियों का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें क्या जनता-जनार्दन, क्या पत्रकार और क्या स्वयं सदस्य, सभी गहरी दिलचस्पी रखते हैं। कहने का तात्पर्य है कि प्रश्नकाल एक ऐसा अवसर है जिसमें संसद् सदस्य को अपनी कुशलता, अपनी जागरूकता और अपनी प्रतिभा एवं विषय की पकड़ को प्रदर्शित करने का और हाज़िर-जवाबी का मौका मिलता है। विचारणीय विषय की गम्भीरता से कभी-कभी सदन में तनाव और कटु तर्क-वितर्क उत्पन्न हो जाता है और कई सदस्य अपनी विनोद-प्रियता से ऐसे तनावपूर्ण वातावरण में हँसी पैदा कर देते हैं जिससे वातावरण प्रफुल्ल हो जाता है और इससे प्रश्नकाल में जान पड़ जाती है। प्रश्न काल का महत्त्व इससे भी पता चलता है कि सदन में न केवल सदस्य बड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं बल्कि दर्शक एवं प्रेस दीर्घाएं भी खचाखच भरी होती हैं।

प्रश्नों के प्रकार

प्रश्न तीन प्रकार के होते हैं। (एक) तारांकित (Starred) प्रश्न, (दो) अतारांकित प्रश्न (Un-starred), और (तीन) अल्प-सूचना प्रश्न (Short-Notice Question)। सामान्यत प्रश्न मन्त्रियों अर्थात् सरकारी सदस्यों से पूछे जाते हैं। कभी-कभी इनको गैर-सरकारी सदस्यों से पूछा जा सकता है बशर्ते कि इनका विषय किसी ऐसे विधेयक, संकल्प या अन्य किसी विषय से सम्बन्धित हो, जिसके लिए वे सदस्य जिम्मेदार हों।

तारांकित प्रश्न (Starred Questions)

सदन में सदस्य जिस प्रश्न का मौखिक उत्तर (Oral Answers) चाहता है वह तारांकित प्रश्न होता है। ऐसे प्रश्न के उत्तर के पश्चात् सदस्यों द्वारा तत्सम्बन्धी अनुपूरक प्रश्न (Supplementary-questions) भी पूछे जा सकते हैं। तारांकित प्रश्न का लक्षण है कि सदस्य उस पर तारांक लगाकर उसको विभेदांकित करता

है। इस प्रकार विभेद न किये जाने से वह लिखित उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में रख दिया जाता है।[2]

अतारांकित प्रश्न (Un-Starred Questions)

सदस्य जिन प्रश्नों का लिखित उत्तर चाहते हैं, वे अतारांकित प्रश्न कहलाते हैं। उनको तारे का चिन्ह लगाकर विशिष्टांकित नहीं किया जाता। सदन में इसका मौखिक उत्तर नहीं दिया जाता और न ही इस पर कोई अनुपूरक प्रश्न पूछे जाते हैं।[3]

अल्प सूचना प्रश्न (Short-Notice Question)

बिना पूर्व सूचना के सदन में प्रश्न पूछे जाने पर मन्त्रिपरिषद् के सदस्य संतोषजनक उत्तर देने की स्थिति में नहीं होते और इस प्रकार प्रश्न पूछने का उद्देश्य ही निष्फल हो जाता है। विभिन्न स्रोतों से सगत जानकारी एकत्रित करने और सदन में मन्त्री द्वारा दिये जाने के लिए सुस्पष्ट उत्तर तैयार करने के लिए सम्बद्ध विभाग को कुछ समय की आवश्यकता होती है। इसी प्रक्रिया को सुविधा-जनक बनाने के लिए दोनों सदनों में कार्य-संचालन तथा प्रक्रिया नियमों में उपबन्ध किया गया है कि कोई सदस्य प्रश्न की सूचना सम्बद्ध सदन के महासचिव को दे सकता है। जिस तिथि को प्रश्न का उत्तर मांगा जाए उस तिथि से ऐसी सूचना कम से कम दस दिन पूर्व और अधिक से अधिक इक्कीस दिन पूर्व दी जानी चाहिये।[4]

अल्प सूचना प्रश्न किसी अविलम्बनीय लोक महत्त्व के विषय (Matter of Urgent Public Interest) से सम्बन्धित होता है और इसको सामान्य प्रश्न पूछने के लिए निर्धारित दस दिन की अवधि से कम की सूचना देकर पूछा जा सकता है।[5] सदस्य को अल्प सूचना पर प्रश्न पूछने के कारण संक्षेप में बताने पड़ते हैं।

अध्यक्ष द्वारा प्रश्न की अविलम्बनीयता (Urgency) स्वीकार कर लिये जाने पर सम्बद्ध मन्त्री से पूछा जाता है कि क्या वह अल्प सूचना पर उस प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में है या नहीं और यदि हाँ तो किस तिथि को?

यदि मन्त्री अल्प सूचना प्रश्न का उत्तर देने के लिए सहमत नहीं होता और अध्यक्ष सभापति की यह राय हो कि प्रश्न इतने लोक-महत्त्व (Public Importance) का है कि सदन में उसका मौखिक उत्तर (Oral Answer) दिया जाना चाहिए तो वह निर्देश दे सकता है कि प्रश्न उस दिन की प्रश्न सूची में प्रथम प्रश्न के रूप में रख दिया जाए जिस दिन वह प्रश्न कम से कम पूरे दस दिन की शर्त पूरी करने पर रखा जा सकता हो। किसी एक दिन की प्रश्न-सूची में ऐसा केवल एक ही प्रश्न रखा जाता है।

प्रश्न कैसे गृहीत किये जाते हैं

प्रश्न जानकारी प्राप्त करने की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसमें जनता, जनार्दन-समाचार-पत्र और सदस्य गहरी दिलचस्पी लेते हैं और इनके माध्यम से उप-

लब्ध जानकारी का व्यापक प्रसार होता है अतः यह स्वाभाविक ही है कि इनकी ग्राह्यता से पूर्व उनकी पूरी छानबीन की जाये। ऐसा भी हो सकता है कि किसी गलत जानकारी के आधार पर प्रश्न पूछ लिए जायें जिनसे गलत निष्कर्ष निकाले गये हों, परिणामस्वरूप सरकार को या किसी व्यक्ति को, उसकी सरकारी या निजी हैसियत से, अनावश्यक परेशानी का सामना करना पड़ सकता है। इस स्थिति से बचने के लिए दोनों सदनों के नियमों में कुछ शर्तें निर्धारित की गई हैं जिनके अनुसार प्रश्न गृहीत किये जाते हैं।[6] ऐसे आरोपात्मक प्रश्न, जिनके कथन की शुद्धता की जांच न की गई हो और जो किसी वर्ग या संस्था के बारे में न होकर किसी व्यक्ति के बारे में हो तो सामान्यतया गृहीत नहीं किये जाते हैं क्योंकि एक बार विशेष रूप से कोई आरोप लगा दिया जाय तो वह प्रमाणित हुआ या कि नहीं, उसका ऐसा प्रभाव होता है, जिसे दूर नहीं किया जा सकता। ऐसा विशेष रूप से तब होता है जब कि जिन व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप लगाये जाते हैं, उनको सदन के समक्ष आकर अपनी स्थिति पर प्रकाश डालने का कोई अवसर नहीं मिलता। ऐसे प्रश्नों को गृहीत करने से पूर्व तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करने के लिए सम्बद्ध मंत्रालयों/विभागों को भेजा जा सकता है और प्रश्न में लगाये गये आरोप के समर्थन में सदस्य से तथ्यात्मक सामग्री भी मांगी जा सकती है।

जिन मामलों में जिम्मेदारी भारत सरकार की नहीं है अथवा जो राज्य के क्षेत्र में आते हों गृहीत नहीं किये जाते। ऐसे प्रश्न जिनका विषय किसी न्यायालय के समक्ष अथवा विधि के अधीन बनाये गये किसी अन्य न्यायाधिकरण या निकाय के समक्ष विचाराधीन हो या किसी संसदीय समिति के विचाराधीन हो, गृहीत नहीं किये जाते हैं। जिन देशों के साथ भारत के मैत्री संबंध हैं, उनके बारे में अशिष्टतापूर्ण उल्लेख वाले प्रश्न गृहीत नहीं किये जाते। परन्तु यदि कोई प्रश्न उच्च पद वाले किसी व्यक्ति के बारे में हो या उसके द्वारा सिद्धान्त या नीति का कोई महत्वपूर्ण मामला जनहित में उठाया गया हो तो उसे गृहीत किया जा सकता है। राज्यों से संबंधित ऐसे मामलों पर प्रश्न स्वीकार नहीं किये जाते जिनके लिए भारत सरकार जिम्मेदार न हो। ऐसे प्रश्न, जिनमें तर्क, अनुमान अथवा मानहानि कारक कथन हो या किसी व्यक्ति के शासकीय या सार्वजनिक हैसियत को छोड़कर अन्यथा चरित्र अथवा आचरण का उल्लेख हो, स्वीकार नहीं किये जाते और ऐसे प्रश्न भी गृहीत नहीं किये जाते जिनमें जानकारी मांगने की बजाए जानकारी दी गयी हो।

वास्तव में प्रश्नों को स्वीकार करना अथवा अस्वीकार करना नियमाधीन अध्यक्ष के क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) पर निर्भर करता है। अध्यक्ष चाहे तो कोई कारण बताए बिना किसी प्रश्न को स्वीकार कर सकता है या अस्वीकार (reject) कर सकता है और उसकी शक्ति के इस प्रयोग पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

नियमानुसार प्रश्नों का वर्गीकरण तारांकित या अतारांकित रूप से किया जाता है। ऐसे प्रश्नों को अतारांकित श्रेणी में रखा जाता है जिनमें जानकारी आंकड़ों में मांगी

गयी हो या जो स्थानीय रुचि के मामलों से सम्बन्धित हो या जो दिन-प्रतिदिन के प्रशासन से सम्बन्धित हो। इनसे भिन्न, तारांकित प्रश्नों की श्रेणी में वे प्रश्न आते हैं जिनका विषय लोक महत्त्व का हो और जिन पर अनुपूरक प्रश्न पूछे जाने की सम्भावना हो। किसी प्रश्न को मौखिक उत्तर के लिए रखे या लिखित उत्तर के लिए, यह बात अध्यक्ष के विवेकाधिकार पर निर्भर करती है।[7]

प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों और उनमें मुद्रित संसदीय प्रथाओं के अनुसार पाई जाने वाली प्रश्नों की सूचनाओं को, नियत दिन की प्रश्न सूची में, यथास्थिति, मौखिक या लिखित उत्तर के लिए रखा जाता है।[8] कोई भी सदस्य किसी दिन विशेष के लिए जितने प्रश्नों की सूचनाएं (Notices) देना चाहे दे सकता है, परन्तु किसी एक दिन के लिए उसके तारांकित तथा अतारांकित प्रश्नों को मिलाकर प्रश्न सूचियों (Question lists) में उसके नाम से रखे जाने वाले प्रश्नों की कुल संख्या पांच से अधिक नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त एक दिन में एक ही सदस्य के राज्य सभा में अधिक से अधिक तीन तारांकित प्रश्न और लोक सभा में अधिक से अधिक एक तारांकित प्रश्न गृहीत किया जा सकता है। किसी एक दिन की तारांकित प्रश्न सूची में अधिक से अधिक कुल 20 प्रश्न होते हैं।[9] लोक सभा में किसी एक दिन की अतारांकित प्रश्न सूची में अधिक से अधिक 230 प्रश्न होते हैं। राज्य सभा में ऐसी कोई सीमा नहीं है परन्तु सामान्यतया किसी एक दिन की अतारांकित प्रश्न सूची में 200 से कम प्रश्न होते हैं।

लोक सभा के सत्र की बैठकों की तिथियां निर्धारित किये जाने के तुरन्त बाद, भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर देने हेतु उपलब्ध दिनों का आवंटन किया जाता है। इस प्रयोजन के लिए विभिन्न मंत्रालयों और विभागों को पांच वर्गों अर्थात् ए,बी,सी,डी और ई में बांटा गया है और एक सप्ताह के दौरान क्रमशः सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को प्रश्नों के उत्तर के लिए मंत्रालयों के इन वर्गों के लिए दिन नियत किये गये हैं। मंत्रालयों/विभागों का वर्गों में विभाजन इस ढंग से किया जाता है कि एक दिन ही मंत्रालय/विभाग का लोक सभा और राज्य सभा में एक ही दिन निश्चित न हो ताकि मंत्रियों को मौखिक उत्तर देने में कठिनाई का सामना न करना पड़े। प्रश्न पूछने के लिए निर्धारित तिथि से कम से कम पांच दिन पहले अन्तिम रूप से गृहीत प्रश्नों की सूची मंत्रालयों को भेज दी जाती है ताकि उनके उत्तर तैयार करने के लिए मंत्रालयों को पर्याप्त समय मिल सके।[10]

प्रश्न किस प्रकार पूछे जाते हैं

मौखिक उत्तर के लिए गृहीत प्रश्न अध्यक्ष या सभापति द्वारा, यथास्थिति, उसी क्रम से पुकारे जाते हैं जिस से कि वे प्रश्न सूची में रखे गये हों। अध्यक्ष/सभापति बारी-बारी से प्रत्येक उस सदस्य को पुकारता है जिसके नाम से कोई प्रश्न

मौखिक उत्तर के लिए प्रश्नों की सूची में हो। जिस सदस्य को इस प्रकार पुकारा गया हो वह अपने स्थान पर उठता है और प्रश्न सूची में दी गई संख्या पढ़कर न कि प्रश्न का पाठ पढ़कर, प्रश्न पूछता है।[11] तत्पश्चात् मंत्री प्रश्न का उत्तर देता है।

प्रश्न काल के दौरान किसी प्रश्न या किसी प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध में चर्चा की अनुमति नहीं होती। परन्तु सदस्य मौखिक प्रश्न के दिये गये उत्तर संबंधी किसी तथ्य के अग्रेतर स्पष्टीकरण के प्रयोजन के लिए अनुपूरक प्रश्न (Supplementary Question) पूछ सकता है।[12] जिस सदस्य के नाम से तारांकित प्रश्न दर्ज होता है वह दो अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है। तत्पश्चात्, पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) अन्य सदस्यों को अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए कह सकता है और सामान्यतया वह एक अनुपूरक प्रश्न पूछने के लिए सत्ता पक्ष के सदस्य को और दूसरा प्रश्न पूछने के लिए विपक्ष के सदस्य को पुकारता है। इस पर प्रश्न के महत्त्व को देखते हुए समुचित संख्या में अनुपूरक प्रश्नों को पूछने की अनुमति देकर और सदन के सब पक्षों के सदस्यों को अनुपूरक प्रश्न पूछने का अवसर देकर पीठासीन अधिकारी इस अनूठे संसदीय उपाय की कुशलता सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त, प्रश्न काल व सीमित समय में, उसका यह प्रयास रहता है कि यथासंभव अधिक से अधिक प्रश्न पूछे जा सकें। प्रश्न काल में अधिक से अधिक मौखिक प्रश्नों के उत्तर दिलाने के लिए अध्यक्ष का यह प्रयास रहता है कि किसी तारांकित प्रश्न पर सामान्यतया आठ मिनट से अधिक समय न लिया जाए। जबकि यदि 60 मिनटों में 20 प्रश्न लिए जाने हों तो एक प्रश्न पर औसतन तीन मिनट से अधिक समय नहीं लगना चाहिए। यदि अध्यक्ष/सभापति यह महसूस करता है कि मामले पर पर्याप्त रूप से बात हो चुकी है तो वह उस सदस्य का नाम पुकारता है जिसके नाम से सूची में अगला प्रश्न दर्ज हो। यह सिलसिला 12 बजे दोपहर तक चलता रहता है।

गैर-सरकारी सदस्यों (Private members) से पूछे जाने वाले प्रश्न

प्रश्न का विषय, यदि किसी ऐसे विधेयक, संकल्प अथवा सभा के कार्य से अन्य विषय से संबंधित हो, जिसके लिये कोई गैर-सरकारी सदस्य उत्तरदायी रहा हो तो प्रश्न किसी अन्य गैर-सरकारी सदस्य से भी पूछा जा सकता है।[13] ऐसे प्रश्न लोक सभा मे शायद ही कभी पूछे जाते हैं। गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्नों पर अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछे जा सकते। कोई अल्प-सूचना प्रश्न भी किसी गैर-सरकारी सदस्य से नहीं पूछा जा सकता।

आधे घण्टे की चर्चा (Half-an-hour-Question)

सदस्य, मंत्रियों से प्रश्न पूछ कर लोक महत्व के किसी विषय पर सरकार से जानकारी प्राप्त करने का अधिकार रखते हैं। वे किसी ऐसे विषय पर लोक सभा मे आधे घण्टे की चर्चा उठाने की पूर्व सूचना दे सकते हैं, जिस पर कि हाल ही मे किसी प्रश्न का मौखिक या लिखित उत्तर दिया गया हो और जिसमे किसी तथ्य के स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो। लोक सभा मे आधे घण्टे की चर्चा सामान्यतः सप्ताह मे तीन दिन अर्थात् सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को होती है और किसी बैठक के अन्तिम आधे घण्टे मे की जा सकती है। राज्य सभा मे ऐसी चर्चा सभापति द्वारा इस प्रयोजन के लिए नियत किसी दिन सामान्यतया 5 बजे म प से 5 30 तक की जा सकती है।[14]

जो सदस्य आधे घण्टे की चर्चा उठाना चाहता हो उसे उस दिन से, जिस दिन कि वह उस विषय को उठाना चाहता है, तीन दिन पहले, लिखित रूप मे सूचना देनी होती है। इसी प्रकार की सूचना के साथ सदस्य को उन विषयों का भी संक्षेप मे उल्लेख करना चाहिए जिनके बारे मे वह और अधिक स्पष्टीकरण प्राप्त करना चाहता है। किसी दिन की बैठक के लिए आधे घण्टे की चर्चा की केवल एक सूचना रखी जाती है। इसके अतिरिक्त, लोक सभा मे एक सप्ताह मे किसी एक सदस्य के नाम मे केवल एक चर्चा रखी जाती है और कोई सदस्य एक ही अधिवेशन (Session) मे दो से अधिक चर्चाएं नहीं उठा सकता। प्रत्येक मामले मे अध्यक्ष/सभापति यह फैसला करता है कि क्या चर्चा के लिए रखा जाने वाला विषय लोक महत्व का है या नहीं, और क्या किसी तथ्यात्मक पहलू के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

चर्चा प्रारम्भ करने की प्रक्रिया (Procedure) यह है कि जिस सदस्य ने चर्चा की पूर्व सूचना दी हो उसके द्वारा अपनी बात कहे जाने के पश्चात् अधिक से अधिक चार अन्य सदस्य, जिन्होने इस आशय की पूर्व सूचना दी हो, किसी तथ्यात्मक बात के अग्रेतर स्पष्टीकरण के प्रयोजन से एक-एक प्रश्न पूछ सकते हैं। तत्पश्चात्, अन्त मे, संबंधित मंत्री चर्चा का उत्तर देता है।

प्रश्न-काल का मूल्यांकन

प्रश्नों का उद्देश्य जानकारी प्राप्त करना होता है और इनके व्याप्ति क्षेत्र में भारत के किसी भी भाग में व्याप्त किसी भी विषय पर चर्चा शामिल की जा सकती है। बहुत से प्रश्नों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि प्रश्नकर्ता सदस्य को संबंधित मंत्री महोदय से प्रश्नाधीन विषय के बारे में अधिक जानकारी है जिससे प्रतीत होता है कि प्रश्न के माध्यम से जानकारी प्राप्त किये जाने की अपेक्षा जानकारी उपलब्ध कराई जा रही है। इस प्रकार के प्रश्न राजनीति से प्रेरित होते हैं जिनका उद्देश्य प्रशासन को परेशानी में डालना अथवा उस पर दबाव डालकर किसी काम को करने के बारे में वचनबद्ध करना अथवा सरकार की कमियों पर से पर्दा उठाना हो सकता है।

प्रश्न-काल एक ओर जहां सदस्यों को नागरिकों की बहुत सी शिकायतों को सरकार के सम्मुख शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर इन प्रश्नों के द्वारा सरकार की गतिविधियों और कार्यक्रमों, इसकी नीतियों और विभिन्न मामलों पर उसके दृष्टिकोण और प्रशासन के कार्यकरण के ढंग से लोग अवगत होते हैं। प्रश्नों से दो प्रकार की भूमिका अदा होती है। इन से प्रशासन को पता चलता है कि उनके कार्यकरण में कहां त्रुटियां हैं। उन पर इनसे रोक लगती है और साथ ही से मंत्रियों को जोकि राजनीतिक नेता होने के कारण कार्यपालिका से संबंधित दायित्वों के साथ अन्य व्यस्तताएं भी निबाहते हैं, प्रश्नों के माध्यम से यह जानने में सहायता मिलती है कि उनके नियंत्रणाधीन विभागों में क्या हो रहा है, कहां कमियां हैं, उनके द्वारा कार्यान्वित नीतियों का जनता पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रकार प्रश्न काल जनता की शिकायतों को उठाने और सरकारी की त्रुटियों को उजागर करने का एक सशक्त माध्यम है।

प्रथम लोक सभा से सातवीं लोक सभा के प्रश्नों संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि संसदीय प्रक्रिया की अन्य विधाओं की तुलना में प्रश्नोत्तर काल सदस्यों में अधिक प्रिय हुआ है और उत्तरोत्तर इसके प्रयोग में वृद्धि हुई है। नीचे सारणी में प्रत्येक लोक सभा में गृहीत किए गए प्रश्नों, जिनके कि उत्तर दिए गए, दर्शाए गए हैं जिनसे इनके प्रयोग में उत्तरोत्तर हुई वृद्धि का पता चलता है।

सारणी (Table)

अवधि	सब श्रेणियों के गृहीत प्रश्नों की संख्या
प्रथम लोक सभा (1952-57)	43, 725
दूसरी लोक सभा (1957-62)	24, 631
तीसरी लोक सभा (1962-66)	56, 355

चौथी लोक सभा (1967-70)	91, 538
पांचवीं लोक सभा (1970-76)	98, 606
छठी लोक सभा (1977-79)	50 144 (दो वर्षों के आंकड़े)
सातवीं लोक सभा (1980-84)	1, 02, 927
आठवीं लोक सभा (1985-89)	98, 390.

प्रथम लोक सभा में गृहीत प्रश्नों की कुल संख्या 43,725 थी जो आठवीं लोक सभा में बढ़कर 98, 390 हो गई। यह भी देखा गया है कि अधिवेशनों के दौरान भारी मात्रा में प्रश्नों की सूचनायें प्राप्त होती हैं उनमें से केवल 50 से 70 प्रतिशत प्रश्न ही गृहीत किये जाते हैं परन्तु सूचियों में शामिल किए जाने वाले तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की निर्धारित सीमा के कारण बजट अधिवेशन में केवल 33 प्रतिशत और मानसून तथा शरदकालीन अधिवेशनों में 30 से 45 प्रतिशत प्रश्न वास्तव में सूचियों में सम्मिलित हो पाते हैं। प्रति बैठक प्राप्त होने वाली प्रश्नों की सूचनाओं की औसत संख्या लगभग 600 बैठती है।

जीप कांड (1951), मूंदड़ा कांड (1957), आयात लाइसेंस कांड (1974) और हाल ही का इस्पात के कोटा की जांच का मामला और वनस्पति घी में गाय की चर्बी मिलाने का मामला कुछ एक उदाहरण हैं जो प्रश्नों के माध्यम से उठाए गये और जिनके प्रकाश में आने पर बाध्य होकर सरकार को जांच करनी पड़ी। इससे प्रश्न काल की उपयोगिता सिद्ध होती है और पता चलता है कि संसदीय प्रक्रिया में यह कितना सशक्त माध्यम है।

शून्य काल (जीरो आवर) (Zero hour)

"शून्य काल" अथवा "जीरो आवर" की उत्पत्ति 1960 और 1970 की दशाब्दी की देन है। उक्त दशाब्दी के प्रारम्भिक काल में किसी समय समाचारों में बिना पूर्व सूचना के अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय को उठाने की प्रथा का नामकरण 'शून्य काल" किया गया। वैसे नियमों में "शून्य काल" का कोई उल्लेख नहीं मिलता। संसद के दोनों सदनों में प्रश्न काल के तत्काल बाद का समय "शून्य काल" अथवा "जीरो आवर" के नाम से जाना जाता है। क्योंकि प्रश्न काल की समाप्ति 12 बजे होती है और 12 बजे दोपहर का समय न तो मध्याह्न पूर्व का समय होता है और न ही मध्याह्न पश्चात् का अतः "शून्य काल" हुआ। प्रायः शून्य काल पूरे एक घंटे तक, अर्थात् 12 बजे से 1 बजे मध्याह्न पश्चात् सदनों के मध्याह्न भोजन के लिए स्थगन होने तक चलता था। इस कारण इसे "आवर' भी कहा गया परन्तु आजकल यह सामान्यतया अधिक से अधिक 5 से 15 मिनट तक चलता है। "शून्य काल' में चूंकि बिना पूर्व सूचना के अविलम्बनीय महत्व का कोई भी मामला उठाया जा सकता है। अतः सरकार को इसकी कोई जानकारी नहीं होती कि अब किस तरह का आक्रमण होगा। प्रश्न काल के तत्काल बाद सदस्यगण ऐसे मामले उठाने के लिए खड़े हो जाते हैं जो उनकी राय

में प्रविलम्बनीय महत्त्व के हैं और जिनके बारे मे कार्यवाही करने मे देरी नही की जा सकती। इससे एक ओर सदस्यो की जागरूकता प्रदर्शित होती है और दूसरी ओर सरकार परिस्थिति से निपटने की तत्परता दिखाती है। चूंकि इस प्रकार के मामले उठाने के बारे मे नियमो मे कोई उपबन्ध नहीं है। अत. "शून्य काल" नियमो के प्रतिबन्ध तोड कर बना प्रतीत होता है। सदस्यो ने राष्ट्रीय महत्त्व के मामले अथवा लोगो की गम्भीर शिकायतो सबधी मामले सदन मे उठाने के लिए नियमो को बाधक माना है और उनकी कोई उपादेयता नही समझी है। दूसरी ओर हम "शून्य काल" को ससदीय कार्यवाही में उत्पन्न तनाव को शैथिल्य करने का साधन भी कह सकते हैं। जहा अनेक उत्तेजित सदस्य अपनी भड़ास निकालने के लिए एक साथ बोलते हैं और इस प्रकार शैथिल्य हो जाने के पश्चात् शान्त हो जाते हैं।

किन्तु नियमों की दृष्टि से "शून्य काल" एक अनियमितता (irregularity) है। इसके सदन का बहुमूल्य समय नष्ट होता है। सदन के विधायी, वित्तीय और अन्य नियमित कार्य पिछड़ जाते हैं। अत न तो अध्यक्ष और न ही सदन नियमित कार्य मे ऐसी बाधा को प्रोत्साहन देते है।

संदर्भ

1. नियम 32
2. नियम 36
3. नियम 39
4. नियम 33-34
5. नियम 54
6. नियम 41
7. नियम 44
8. नियम 45 मौखिक उत्तर (तारांकित प्रश्न) के लिए प्रश्नों की सूची हरे कागज पर मुद्रित होती है और लिखित उत्तर (अतारांकित प्रश्न) के लिए प्रश्नो की सूची सफेद कागज पर।
9. नियम 37 (1)
10. नियम 35
11. नियम 48
12. नियम 46 और 50
13. नियम 40
14. नियम 55 (1)

8

विधायी प्रक्रिया

साधारण विधि और सांविधिक संशोधन

विधि निर्माण संसद् का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। सर्वोच्च संस्था द्वारा पारित और राजाध्यक्ष द्वारा स्वीकृत विधेयक (Bill) कानून अथवा अधिनियम (Act) बनता है। इसके अन्तर्गत इस बात की व्याख्या की गई होती है कि कौन सा काम किया जा सकता है, कौन सा नहीं किया जा सकता है और किस प्रकार किया जा सकता है। विधि शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, यथा 'ऐसे अधिनियम में दिया गया आदेशात्मक निर्देश जिस पर कि विधेयक (Bill) के रूप में विधिवत् वाद-विवाद हुआ हो, जिसे विधिवत् गठित विधानमण्डल ने विधिवत् तरीके से पास किया हो, जिसकी मन्जूरी राज्य के अध्यक्ष ने दी हो जो प्रत्येक नागरिक पर बाध्यकारी हो और जिसे लागू करना न्यायालयों के लिए आवश्यक हो। चूंकि संसद् लोगों द्वारा सीधे निर्वाचित संस्था है अतः वह ऐसे विधान (Legislation) बनाती है जिनमें लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताएं प्रतिबिम्बित (Reflect) होती हैं तथा जिनसे उनकी आशाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति होती है।

व्यावहारिक तौर पर यह कार्यपालिका (Executive) अथवा मंत्री-परिषद् (Council of Ministers) का दायित्व होता है कि वह विधि निर्माण के किसी विषय के संबंध में प्रस्ताव (Motion) लाये। संसद् में उस प्रस्ताव पर चर्चा एवं वाद-विवाद होता है तथा उसे पारित किया जाता है। पहल कार्यपालिका द्वारा की जाती है परन्तु उसको परख, उसको तराशना और स्वरूप देना संसद् का कार्य होता है। इस प्रकार विधि का निर्माण करना अब भी संसद् का मुख्य कार्य है। संसद् द्वारा यह कार्य अनेक प्रक्रियाओं के माध्यम से किया जाता है।

विधान संबंधी सभी प्रस्ताव विधेयकों के रूप में संसद् में पेश किए जाते हैं। विधेयक से अभिप्राय है किसी विषय विशेष की रूपरेखा जिसके सम्बन्ध में सरकार कानून बनाना चाहती है। विधेयक को संसद् के किसी भी सदन में किसी मंत्री द्वारा

अथवा किसी गैर सरकारी सदस्य द्वारा पुर:स्थापित (Introduced) किया जा सकता है । विधेयकों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत (Classified) किया जा सकता है —

(1) सरकारी विधेयक (Government Bill)

(2) गैर सरकारी सदस्यों के विधेयक (Private members bill)

वस्तुत स्थिति यह है कि अधिकांश विधेयक सरकार द्वारा ही पुर:स्थापित किए जाते है । किन्तु गैर सरकारी सदस्यों द्वारा पेश किए विधेयक यद्यपि विधि का बहुत कम रूप लेते है किन्तु इनमे सरकार को एक दिशा-निर्देश मिलता है कि विद्यमान विधि मे कहा-कहा संशोधन बरकरार हैं अथवा वे कौन से विशेष विषय हैं जिनके सम्बन्ध मे विधान बनाना अपेक्षित है ।

विधेयकों को विषय-वस्तु के आधार पर निम्नलिखित श्रेणियों मे रखा जा सकता है —

(एक) **मूल विधेयक** *(Original Bill) ऐसे विधेयक जिनमे नये प्रस्ताव, विचार या नीतियो संबंधी उपबन्ध होते है ।*

(दो) **संशोधी विधेयक** (Amendment-Bill) जिनका उद्देश्य विद्यमान अधिनियमो मे रूप भेद करना या संशोधन करना या उनका पुनरीक्षण करना होता है ।

(तीन) **समेकन विधेयक** (Consolidation Bill) (ऐसे विधेयक जिनका उद्देश्य किसी विषय विशेष पर वर्तमान कानूनो को समेकित करना होता है) ।

(चार) **व्यपगत होने वाले कानूनो को जारी रखने वाले विधेयक** (ऐसे विधेयक जिनका आशय उन अधिनियमो (Acts) को जारी रखना होता है, जिनकी अवधि समाप्त हो रही है)

(पांच) **अध्यादेशों के स्थान पर आने वाले विधेयक** *(ऐसे विधेयक जो राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेशों का स्थान लेते है)* और

(छ.) **संविधान (संशोधन) विधेयक** । (Constitution Amendment Bill) स्थूल रूप से विधेयकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है.—

(क) साधारण विधेयक । (Ordinary Bill)

(ख) वित्तीय मामलो सम्बन्धी उपबन्धो पर आधारित धन विधेयक (Money Bill) और

(ग) संविधान संशोधन विधेयक ।

साधारण विधेयक:—

ऊपर दिए स्थूल वर्गीकरण से स्पष्ट हो जाता है कि धन विधेयक और संविधान संशोधन विधेयक से इतर अन्य सभी विषयो के बारे मे विधान सम्बन्धी प्रस्ताव साधारण विधेयक होते है ।

साधारण विधेयकों के बारे में विधायी प्रक्रिया -

(एक) विधेयक के मसौदे तैयार करना — (Drafting of Bills)

जैसे ही किसी विशेष विषय से सम्बन्धित विधान बनाने का प्रस्ताव पैदा होता है, सम्बन्धित मंत्रालय द्वारा उससे सम्बद्ध राजनीतिक प्रशासनिक, वित्तीय एवं अन्य परिणामों की जांच की जाती है। यदि विचारणीय विषय किसी अन्य मंत्रालय अथवा राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार में भी आता हो तो उनका भी परामर्श लिया जाता है। जहां तक उस प्रस्ताव के वैधिक एवं संवैधानिक पहलुओं का सम्बन्ध है, भारत सरकार के विधि मंत्रालय और महान्यायवादी से इस बारे में परामर्श किया जाता है। यदि विधान का विषय विभिन्न हितों को प्रभावित करने वाला हो तो आवश्यक समझे जाने पर व्यापारियों, श्रमिकों, कृषकों और उद्योगपतियों से भी इस सम्बन्ध में सलाह ली जाती है। इस प्रकार विस्तारपूर्वक जांच कर लेने के पश्चात् सम्बद्ध मंत्रालय विधान सम्बन्धी प्रस्ताव अनुमोदन के लिए मंत्रिमण्डल को प्रस्तुत करता है। मंत्रिमण्डल के अनुमोदन के पश्चात् सरकारी प्रारूपकार (ड्राफ्ट्समैन) द्वारा प्रस्ताव को विधेयक का रूप दिया जाता है। जिसकी प्रशासनिक मंत्रालय में बारीकी से जांच की जाती है और उसे अन्तिम रूप दिया जाता है।

उपरोक्त प्रक्रिया में से गुजरने के पश्चात् विधेयक सदन में पुरःस्थापित किए जाने के लिए तैयार हो जाता है। विधेयक सम्बन्धित मन्त्री द्वारा दोनों सदनों में से किसी एक सदन में पुरःस्थापित किया जा सकता है। मन्त्री को विधेयक के पुरःस्थापन के लिए सदन की अनुमति मांगने के प्रस्ताव की लिखित सूचना सात दिन पहले देनी होती है।[2] ऐसी सूचना के साथ विधेयक की विधिवत रूप से शुद्ध की गई दो प्रतियां उस सदन के महासचिव को भेजी जानी हैं जिसमें विधेयक पेश किया जाना हो। सचिवालय द्वारा विधेयक की जांच की जाती है और उसके सभी दृष्टि से पूर्ण पाए जाने पर, ऐसी तिथि की कार्यसूची में सम्मिलित कर लिया जाता है जो अध्यक्ष या सभापति द्वारा यथास्थिति, इस प्रयोजन के लिए निश्चित की गई हो। परन्तु किसी विधेयक को पुरःस्थापित करने के सम्बन्ध में कार्य-सूची में तब तक प्रविष्टि नहीं की जाती जब तक कि पुरःस्थापन की प्रस्तावित तिथि से कम से कम दो दिन पहले विधेयक की प्रतियां सदस्यों को उपलब्ध नहीं करा दी जाती।[3]

(दो) वाचन (Reading) विभिन्न प्रक्रम —

विधान सम्बन्धी सभी प्रस्ताव विधेयकों के रूप में संसद में पेश किए जाते हैं और अधिनियम बनने से पूर्व उन्हें विभिन्न प्रक्रमों से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक विधेयक के तीन वाचन होते हैं —

(क) प्रथम वाचन (First-Reading) :

सर्वप्रथम विधेयक को पेश करने के लिए सदन की अनुमति प्राप्त करने का प्रस्ताव पेश किया जाता है। विधेयक के पुरःस्थापन के लिए नियत तिथि को *प्रश्नकाल के पश्चात् अध्यक्ष प्रभारी मंत्री को बुलाता है और वह विधेयक को* पुरःस्थापित करने की अनुमति का प्रस्ताव करता है। वह खड़ा होकर कहता है "महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं कि'''' · '''' ''''''(विधेयक का पूरा नाम) विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति दी जाये" यदि मंत्री सभा में उपस्थित न हो तो उप-मंत्री या कोई और मंत्री उसकी ओर से यह प्रस्ताव पेश कर सकता है। अध्यक्ष इस प्रस्ताव को सभा के मतदान के लिए रखता है और सभा उसे मौखिक मत द्वारा अनुमति प्रदान करती है। तब मंत्री द्वारा विधेयक पुरःस्थापित किए जाने से विधेयक के प्रथम वाचन की औपचारिकता सम्पन्न होती है।

इस अवस्था में विधेयक पर चर्चा नहीं होती। प्राय विधेयक को पुरःस्थापित करने का विरोध नहीं किया जाता। यदि किसी विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव का विरोध किया जाये तो पीठासीन अधिकारी, यदि वे उचित समझें, प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्य और प्रस्ताव को पेश करने वाले सदस्य का संक्षिप्त व्याख्यात्मक कथन सुनने के बाद बिना किसी वाद-विवाद *के प्रश्न को सभा के समक्ष रख सकता है। परन्तु जब प्रस्ताव का इस आधार पर* विरोध किया जाये कि इस विधेयक के माध्यम से ऐसा विधान बनाया जा रहा है जो सभा की विधायनी क्षमता से परे है तो पीठासीन अधिकारी पूर्ण चर्चा की अनुमति दे सकता है जिसमें विशेष आवश्यकता पड़ने पर महान्यायवादी (Attorny General) भी भाग ले सकता है।[4] उसके पश्चात् सदन में प्रश्न पर मतदान होता है। कोई मंत्री एक दिन में चाहे कितने भी विधेयक पुरःस्थापित कर सकता है, इस सम्बन्ध में कोई सीमा निर्धारित नहीं है।

विधेयक को सदन में पुरःस्थापित करने के पश्चात् उसे भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है।[5] अध्यक्ष/सभापति की अनुमति से विधेयक को पुरःस्थापित करने से पूर्व भी भारत के राजपत्र (Gazette of India) में प्रकाशित किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में विधेयक को पुरःस्थापित करने की अनुमति लेना आवश्यक नहीं होता है।[6] उसे पुरःस्थापित करने की अनुमति मांगने की बजाए पुरःस्थापित कर दिया जाता है।

(ख) द्वितीय वाचन (Second Reading)

दूसरे वाचन में दो प्रक्रम (Stages) होते हैं। दो प्रक्रमों में विधेयक पर विचार किया जाना ही यह सिद्ध करता है कि दूसरा वाचन बहुत ही महत्वपूर्ण अवस्था है। इन प्रक्रमों में विधेयक की बारीकी से सम्पूर्ण जांच होती है।

प्रथम प्रक्रम (First-Stage)

पहले प्रक्रम मे विधेयक पर सामान्य चर्चा होती है जब विधेयक के सिद्धान्तो पर चर्चा की जाती है । किन्तु विधेयक के ब्योरे पर उतनी ही चर्चा होती है जितनी की उसके सिद्धान्तो की व्याख्या के लिए आवश्यक हो ।[7] इस प्रक्रम मे सभा विधेयक को सभा की प्रवर समिति या दोनों सभाओ की संयुक्त समिति को सौंप सकती है अथवा उस पर राय जानने के लिए उसे परिचालित कर सकती है या उस पर सीधे ही विचार कर सकती है ।[8]

समिति को सौंपना

प्रवर समिति मे उसी सभा के सदस्यो के नाम सम्मिलित किए जाते हैं जिसमे कि विधेयक पुरःस्थापित किया गया हो । सामान्यतः सभा के दलो तथा समूहों का अनुपाततः प्रतिनिधित्व रहता है । संयुक्त समिति मे दोनो सभाओ के सदस्य शामिल होते हैं । इसमे लोक सभा और राज्य सभा के सदस्यो का अनुपात सामान्यतः 2 : 1 होता है । संयुक्त समिति का सभापति समिति के सदस्यो मे से उस सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा नियुक्त किया जाता है जिसमे कि विधेयक पुरःस्थापित किया गया हो ।[9] किसी प्रवर या संयुक्त (Joint-Committee) का अस्तित्व समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के साथ ही समाप्त हो जाता है ।

समितियां सभा के समान विधेयक पर खंड वार (Clause-by-Clause) विचार करती है । समिति के सदस्य विभिन्न खण्डो (Clauses) पर संशोधन प्रस्तुत कर सकते हैं ।[10] समिति विशेषज्ञो और उन विशेष हितो के प्रतिनिधियो के विचार भी सुन सकती है जिन पर विद्यमान विधान का प्रभाव पड़ता हो ।[11] समितियो मे विधेयक पर विचार करने की प्रक्रिया वही है जिसका सभा मे विधेयक पर विचार करने के दौरान अनुसरण किया जाता है ।[12] समिति द्वारा विधेयक पर इस प्रकार विचार किए जाने तथा खंडो आदि को स्वीकृत कर लिए जाने के पश्चात् लोक सभा सचिवालय द्वारा तैयार किया गया समिति का प्रारूप प्रतिवेदन सभा द्वारा अनुमोदित किए जाने पर सभा को प्रस्तुत किया जाता है ।[13] तत्पश्चात् समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप मे विधेयक पर सभा मे विचार प्रारम्भ होता है ।

राय जानने के लिए परिचालन (Circulation) . किसी विधेयक को परिचालित करने का प्रस्ताव (Motion) सभा द्वारा स्वीकार किये जाने के पश्चात् सम्बन्धित सभा का सचिवालय विधेयक राज्यो और संघ राज्य क्षेत्रो की सरकारो को भेजता है और उनसे अपने-अपने राजपत्रो मे उसे प्रकाशित करने को कहता है और विधेयक के उपबन्धों के सम्बन्ध मे राज्यो के विधान मण्डलो (Legislature) के सदस्यों और जिन सार्वजनिक संस्थानों के चुने हुए अधिकारियो या अन्य व्यक्तियो का परामर्श लेना राज्य सरकारें आवश्यक समझें, उनकी रायो की दो-दो प्रतियां यथाशीघ्र भेजने के लिए कहा जाता है । कुछ मामलो मे राज्य सरकारो से

उच्च न्यायालयों के साथ परामर्श करने को भी कहा जा सकता है। जब राय जानने के लिये विधेयक के परिचालन की कोई तिथि प्रस्ताव में निर्दिष्ट न की गई हो तो राज्य सरकारों से कथित प्रस्ताव के स्वीकृत होने के तीन महीने के अन्दर रायों को भेजने के लिये कहा जाता है।[14] विधेयक पर राय प्राप्त हो जाने पर उन्हें यथाशीघ्र सभा-पटल पर रख दिया जाता है और तत्पश्चात् विधेयक को प्रवर/संयुक्त समिति (Select/Joint Committee) को सौंपने का प्रस्ताव पेश किया जाता है।[15] साधारणतया इसकी अनुमति नहीं है कि इस अवस्था में विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव पेश किया जाए। विधेयक फिर समिति अवस्था से गुजरता है और फिर विधेयक को प्रतिवेदित रूप में सदन में पेश किया जाता है।

विधेयक पर यथास्थिति, संयुक्त समिति या प्रवर समिति (Select-Committee) का अन्तिम प्रतिवेदन सदन में पेश कर दिए जाने के बाद सम्बन्धित मंत्री प्रस्ताव कर सकता है कि (क) प्रतिवेदित रूप (As reported) में विधेयक पर विचार किया जाए, या (ख) प्रतिवेदित रूप में विधेयक को फिर से या तो उसी प्रवर/संयुक्त समिति या किसी नई प्रवर/संयुक्त समिति के पास भेजा जाए, या कि (ग) संयुक्त समिति/प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक यथास्थिति उस पर राय या अग्रेतर राय जानने के प्रयोजन के लिए परिचालित या पुन: परिचालित किया जाये।[16]

यदि सम्बन्धित मंत्री यह प्रस्ताव करता है कि यथास्थिति, संयुक्त समिति या प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक पर विचार किया जाये तो उस पर वाद-विवाद (Debate) की अनुमति दी जाती है। ऐसे में वाद-विवाद समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक तक ही सीमित रहता है और विधेयक के सिद्धान्त पर फिर से चर्चा नहीं की जा सकती क्योंकि जब किसी विधेयक को किसी प्रवर/संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो सभा उस विधेयक के सिद्धान्तों से बंध जाती है।

द्वितीय प्रक्रम (Second Stage) : जब यह प्रस्ताव पारित कर दिया जाता है कि विधेयक, या प्रवर/संयुक्त समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विधेयक, पर विचार किया जाये, तब विधेयक पर खण्डवार विचार प्रारम्भ किया जाता है। अध्यक्ष प्रत्येक खण्ड को अलग-अलग लेता है और उनके सम्बन्ध में संशोधन रखने की अनुमति देता है। तत्पश्चात् ग्राह्यता की शर्तों के अध्यधीन उसमें संशोधन पेश किए जा सकते हैं।[17] विधेयक पर खण्डवार विचार की प्रक्रिया बड़ी ही श्रमसाध्य प्रक्रिया है क्योंकि प्रत्येक खण्ड पर साधारणतया अलग से चर्चा की जाती है। सिवाए ऐसे संशोधनों के जो प्रस्तावक द्वारा वापस ले लिए गए हों प्रत्येक संशोधन पर अलग से चर्चा होती है और उसे सदन द्वारा अलग से स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है। जो संशोधन स्वीकृत हो जाते हैं वे विधेयक का अंग बन जाते हैं।

तृतीय वाचन (Third Reading) तीसरे वाचन से अभिप्राय है इस प्रस्ताव पर चर्चा कि विधेयक (या संशोधित विधेयक) को पास किया जाए। जब किसी विधेयक के सभी खण्डों और अनुसूचियों, यदि कोई हों, पर सदन में विचार हो जाता है और वह स्वीकार कर लिए जाते हैं तो विधेयक का प्रभारी मंत्री यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को पास किया जाये।[18] इस अवस्था में चर्चा विधेयक के समर्थन में या उसे अस्वीकार करने के लिये दिये गये तर्कों तक ही सीमित रहती है। सदस्यों के तर्क सामान्य होने चाहिए और उन्हें विधेयक के ब्यौरे में नहीं जाना चाहिए। ब्यौरे की चर्चा वे केवल उसी सीमा तक कर सकते हैं जिस सीमा तक ऐसी चर्चा उनके तर्क के लिए आवश्यक हो।[19] इस अवस्था में केवल शाब्दिक, औपचारिक और आनुषंगिक संशोधन (Ancillary amendment) ही पेश किये जा सकते हैं।[20] क्योंकि विधेयक के सामान्य सिद्धान्तों पर सहमति हो चुकी होती है और उनकी विस्तारपूर्वक जांच भी हो चुकी होती है। अतः तृतीय वाचन के दौरान लम्बा वाद-विवाद शायद ही कभी होता हो।

कोई साधारण विधेयक पास करने के लिए उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का साधारण बहुमत अपेक्षित होता है। इसलिए संसदीय शासन प्रणाली में जहां बहुमत वाला दल सरकार बनाता है, कोई भी सरकारी विधेयक आसानी से पास हो जाता है।

(तीन) दूसरे सदन में विधेयक जब कोई विधेयक, जिस सदन में उसे पुरःस्थापित किया गया हो, उस सदन द्वारा पारित कर दिया जाता है तो उसे दूसरे सदन को उसकी सहमति के लिए इस आशय के संदेश के साथ भेजा जाता है।[21] दूसरे सदन में विधेयक फिर इन तीनों अवस्थाओं में से गुजरता है। वह इनमें से कोई कार्यवाही कर सकता है।[22]

(क) वह विधेयक को पूर्णतः अस्वीकार कर सकता है। परिणामस्वरूप दोनों के बीच गतिरोध (dead lock) उत्पन्न हो सकता है।

(ख) वह विधेयक को उसी रूप में या संशोधनों के साथ पारित कर सकता है। यदि वह पहले सदन द्वारा भेजे गये रूप में उसे पारित कर देता है तो उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके पास भेजा जाता है। यदि दूसरा सदन विधेयक को संशोधनों के साथ पारित करता है तो विधेयक पहले सदन के पास वापस भेज दिया जाता है। वहां उक्त संशोधित विधेयक को सभा-पटल पर रखा जाता है। दो दिन की सूचना देने के बाद प्रभारी मंत्री यह प्रस्ताव कर सकता है कि संशोधनों पर विचार किया जाए। यदि पहला सदन दूसरे सदन द्वारा प्रस्तावित संशोधन या संशोधनों से सहमत हो जाता है तो वह विधेयक, संशोधित रूप में दोनों सदनों द्वारा पास किया गया माना जाता है। परन्तु यदि पहला सदन दूसरे सदन द्वारा प्रस्तावित संशोधन से सहमत नहीं होता तो वह विधेयक एक बार

फिर दूसरे सदन की सहमति के लिए उसके पास भेजा जाता है। यदि दूसरा सदन अपने संशोधनों पर बराबर जोर देता रहता है तो यह समझा जाता है कि संशोधन या संशोधनों के बारे में दोनों सदनों में अन्तिम रूप से सहमति हो गई है।

(ग) यह भी हो सकता है कि वह सदन विधेयक पर कोई कार्यवाही न करे अर्थात् उसे सभा पटल पर पड़ा रहने दे। ऐसी स्थिति में यदि विधेयक प्राप्त होने के बाद छह महीने की अवधि बीत जाती है और वह सदन उस विधेयक को पास नहीं करता तो यह मान लिया जाता है कि गतिरोध उत्पन्न हो गया है।

(चार) दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint sitting)—किसी विधेयक पर दोनों सदनों के बीच असहमति होने से गतिरोध उत्पन्न हो जाता है, जो कि एक असाधारण स्थिति है। इसका समाधान दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में होता है। संविधान के उपबन्धों के अधीन, उस दशा के सिवाय जिसमें लोक सभा का विघटन होने के कारण विधेयक व्यपगत हो गया हो, राष्ट्रपति विधेयक पर, विचार-विमर्श करने और मत देने के प्रयोजन के लिए दोनों सदनों का "संयुक्त बैठक" के लिए आमन्त्रित कर सकता है। ऐसी संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष द्वारा की जाती है और महासचिव, लोक सभा संयुक्त बैठक के सचिव के रूप में कार्य करता है[21]। संयुक्त बैठक पर लोक सभा के प्रक्रिया नियम लागू होते हैं[21]। संयुक्त बैठक में उन संशोधनों के सिवाय किसी और संशोधन का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता जो विधेयक को पास करने में देर होने के कारण आवश्यक हो गये हों। ऐसी बैठकों में निर्णय दोनों सदनों के उपस्थित और मतदान करने वाले समस्त सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा किए जाते हैं। स्पष्ट है कि लोक सभा की सदस्य संख्या अधिक होने के कारण उसका निश्चय ही प्रभुत्व रहता है। अब तक संयुक्त बैठक में केवल दो विधेयक, अर्थात् दहेज निषेध विधेयक (Dowry prohibition Act, 1971) और बैंककारी सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1974 (Banking Service Commission (Repeal) Act, 1974) पारित किए गये हैं।

(पांच) विधेयकों पर राष्ट्रपति की अनुमति—जब कोई विधेयक संसद् के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग या संयुक्त बैठक में पारित कर दिया जाता है तो वह राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्रपति विधेयक पर या तो अनुमति दे सकता है या अपनी अनुमति रोक सकता है। यदि राष्ट्रपति अनुमति रोक लेता है तो विधेयक समाप्त हो जाता है और यदि वह अनुमति प्रदान कर देता है तो अनुमति प्रदान करने की तिथि से विधेयक अधिनियम बन जाता है। इसके अतिरिक्त वह विधेयक को इस संदेश के साथ वापस भेज सकता है कि उस पर दोनों सदनों द्वारा फिर विचार किया जाय। जब विधेयक राष्ट्रपति द्वारा इस

प्रकार लौटा दिया जाता है तब सदन विधेयक पर तदनुसार पुनर्विचार करते हैं और यदि विधेयक सदनों द्वारा संशोधन सहित या उसके बिना फिर से पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए फिर से प्रस्तुत किया जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अनुमति नहीं रोक सकता।[25]

धन विधेयक (Money Bill)

संविधान के अनुच्छेद 110 (1) के अन्तर्गत कोई भी विधेयक धन विधेयक समझा जाता है यदि उसमें निम्नलिखित विषयों में से सब अथवा किसी एक से संबंध रखने वाले उपबंध हों, अर्थात्—

(क) किसी कर का निर्धारण (Imposition), उत्सादन (Abolition), परिहार (Remission), बदलना या विनियमन (Alteration or Regulation)

(ख) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने का, अथवा कोई प्रत्याभूति देने का विनियमन अथवा भारत सरकार द्वारा लिए गए अथवा लिये जाने वाले किन्हीं वित्तीय दायित्व से सबद्ध विधि का संशोधन।

(ग) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund or Contingency Fund) अथवा आकस्मिकता-निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना.

(घ) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग,

(ङ) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्यय घोषित करना या ऐसे किसी व्यय की राशि को बढ़ाना;

(च) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) के या भारत के लोक-लेखे के मध्य धन प्राप्त करना अथवा संघ राज्य के लेखाओं का लेखा परीक्षण; अथवा

(छ) अनुच्छेद 110 (1) के उप खण्ड (क) से (च) में उल्लिखित विषयों में से किसी का आनुषंगिक कोई विषय।

परन्तु कोई विधेयक केवल इसलिए धन विधेयक नहीं समझा जाता कि वह जुर्मानों अथवा अन्य अर्थ-दण्डों (Pecuniary penalties) को लगाने का अथवा लाइसेंस के लिए फीस का या की गई सेवा के लिए फीस की मांग का या उनको देने का उपबन्ध करता है, अथवा इस कारण से कि वह किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार बदलने या विनियमन का उपबंध करता है। यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं तो उस पर लोक सभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होता है।[26]

धन विधेयको के संबंध में विशय प्रक्रिया

कोई धन विधेयक (Money Bill) राज्य सभा मे पुरःस्थापित नही किया जा सकता।[27] वह राष्ट्रपति की सिफारिश पर केवल लोक सभा मे ही पुरःस्थापित किया जा सकता है[28]। लोक सभा द्वारा इसे पास किए जाने के पश्चात् इसको अध्यक्ष के इस प्रमाण-पत्र के साथ कि विधेयक धन विधेयक है, राज्य सभा की सिफारिशो के लिए उसको भेजा जाता है। राज्य सभा को धन विधेयक की प्राप्ति की तारीख से चौदह दिन की अवधि के अदर इसे अपनी सिफारिशो के साथ लौटाना होता है। राज्य सभा इसको किसी सिफारिश के साथ अथवा बिना सिफारिश के साथ लौटा सकती है। यदि कोई धन विधेयक राज्य सभा द्वारा सिफारिशो के साथ लौटाया जाता है तो उसे लोक सभा पटल पर रखा जाता है। यदि लोक सभा राज्य सभा द्वारा सिफारिश किये गये सशोधनो को स्वीकार कर लेती है तो धन विधेयक राज्य सभा द्वारा सिफारिश किए गए सशोधनो और लोक सभा द्वारा स्वीकृत रूप मे, ससद के दोनो सदनो द्वारा पारित समझा जाता है। यदि लोक सभा, राज्य सभा द्वारा सिफारिश किये गये सशोधनो मे से किसी को स्वीकार नही करती, तो धन विधेयक राज्य सभा द्वारा सिफारिश किये गये किन्ही सशोधनो के बिना लोक सभा द्वारा पारित रूप मे दोनो सभाओ द्वारा पारित समझा जाता है। यदि राज्य सभा चौदह दिन की निर्धारित अवधि के भीतर धन विधेयक नही लौटाती तो विधेयक उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् ससद् के दोनो सदनो द्वारा लोक सभा द्वारा पारित रूप मे पास किया गया समझा जाता है। चू कि राज्य सभा को धन विधेयक के सबध मे कोई शक्ति प्राप्त नही है अत दोनो सदनो के बीच कोई असहमति का प्रश्न ही नही उठता। इसलिए किसी धन विधेयक को सदन की दोनो सभाओ की सयुक्त समिति को भेजने का कोई उपबध नही है। इससे सिद्ध होता है कि धन विधेयक के बारे मे राज्य सभा की अनुमति प्राप्त करना मात्र एक औपचारिकता के और कुछ नही है।

वित्त विधेयक (Finance Bill)

सविधान मे धन विधेयक (Money Bill) और वित्त विधेयक (Financial Bill) मे भेद किया गया है। सामान्यतया राजस्व या व्यय से सबधित विधेयक, वित्त विधेयक होता है। इसमे किसी धन विधेयक के लिए सविधान में उल्लिखित किसी मामले का उपबध करने के अतिरिक्त अन्य मामलो का भी उपबध किया जाता है। सुविधा के लिए वित्तीय विधेयक निम्नलिखित दो श्रेणियों मे बाटा जा सकता है -

श्रेणी क प्रथम श्रेणी मे ऐसे विधेयक आते हैं जिनमे अन्य उपबधो के साथ-साथ सविधान के अनुच्छेद 110 मे सबधित उपबध भी होते है। तथापि, धन सबधी अन्य प्रतिबध इन श्रेणी के विधेयको पर लागू नही होते। उदाहरणार्थ,

कोई विधेयक जिसमें करारोपण का मद होता है परन्तु वह केवल करारोपण के संबंध में नहीं होता।

श्रेणी ख इस श्रेणी के अन्तर्गत ऐसे विधेयक आते हैं जिनमें अन्य उपबन्धों के साथ-साथ ऐसे उपबन्ध भी होते हैं जिनके अधिनियमित हो जाने पर भारत की संचित निधि में से व्यय अंतर्निहित होता है।

धन विधेयक और वित्त विधेयक में अन्तर

इनमें की स्वरूप के कारण दोनों विधेयकों अर्थात् धन विधेयक और वित्तीय विधेयक में अन्तर है। धन विधेयक में संविधान के अनुच्छेद 110 (1) (क) से (छ) तक उल्लिखित विषयों का ही समावेश होता है। जबकि वित्तीय विधेयक में उक्त अनुच्छेद में से सब अथवा किसी एक से सम्बन्ध रखने वाला ही मामला नहीं होता, अर्थात् इसमें अन्य विषयों से सम्बन्धित उपबन्ध भी होते हैं।

धन विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश पर केवल लोक सभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है जबकि संविधान के अनुच्छेद 117 (1) के अन्तर्गत वित्तीय विधेयक दोनों सभाओं की संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है। संयुक्त बैठक का उपबन्ध धन विधेयक के मामले में लागू नहीं होता। इस श्रेणी के विधेयकों को भी धन विधेयकों की तरह राष्ट्रपति की सिफारिश पर केवल लोक सभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है। इस श्रेणी के विधेयक में दो तत्व ऐसे होते हैं जो किसी धन विधेयक में भी पाए जाते हैं अर्थात् (क) वह राज्य सभा में पेश नहीं किया जा सकता और (ख) वह राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही पेश किया जा सकता है परन्तु वित्त विधेयक, धन विधेयक न होने के कारण, राज्य सभा को इसे रद्द करने या इसमें संशोधन करने की वैसे ही पूरी शक्ति है जैसे इसे किसी भी साधारण विधेयक के मामले में प्राप्त है। इसके अतिरिक्त किसी कर के घटाने या उसके उत्पादन के लिए उपबन्ध करने वाले किसी संशोधन के प्रस्ताव को छोड़ कर अन्य कोई संशोधन राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

दूसरी श्रेणी के वित्त विधेयक ऐसे विधेयक हैं जिनमें अन्य उपबंधों के साथ-साथ ऐसे उपबन्ध भी होते हैं जिनके अधिनियमित हो जाने पर भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) में से व्यय का मामला सम्मिलित होता है। यह एक साधारण विधेयक माना जाता है और इसी कारण ऐसे विधेयक को दोनों सदनों में से किसी एक सदन में पुर:स्थापित किया जा सकता है। राज्य सभा को उसे रद्द करने की या उसमें संशोधन करने की पूरी शक्ति प्राप्त होती है। तथापि इस विधेयक पर किसी भी सदन द्वारा विचार किए जाने के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है। किन्तु उसे पुर:स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति की

सिफारिश आवश्यक नहीं होती । जैसे कि किसी धन विधेयक या प्रथम श्रेणी के वित्त विधेयक के मामले में है ।

संविधान (संशोधन) विधेयक [Constitution (Amendment) Bill] :

भारत के संविधान के अनुच्छेद 368 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संसद् अपनी संविधायी शक्ति (Legislative power) का प्रयोग करते हुए संविधान के किसी उपबन्ध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन कर सकती है । संशोधन के प्रयोजन के लिए संविधान में कोई अलग संविधायी संस्था की व्यवस्था नहीं है । संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक को संसद् के किसी भी सदन में पुरःस्थापित किया जा सकता है । इसको किसी मंत्री द्वारा अथवा किसी गैर सरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है । सामान्यतया सरकार द्वारा लाये जाने वाले संविधान (संशोधन) विधेयक, लोक सभा में पुरःस्थापित किए जाते हैं । गैर-सरकारी सदस्य द्वारा लाये गये संविधान (संशोधन) विधेयक के मामले में विधेयक का सर्वप्रथम गैर-सरकारी विधेयकों और संकल्पों सम्बन्धी समिति (Committee on Private members bill & resolutions) द्वारा परीक्षण किया जाना होता है तथा उसको पुरःस्थापित करने की सिफारिश करनी होती है ।[30]

संविधान में निम्नलिखित तीन प्रकार के संविधान संशोधनों का उपबन्ध है :

(क) ऐसे संशोधन, जिन्हें संसद् साधारण बहुमत द्वारा पारित कर सकती है ।

(ख) ऐसे संशोधन, जिन्हें संसद् विहित "विशेष बहुमत" द्वारा पारित कर सकती है ।

(ग) अनुच्छेद 368 (2) के परन्तुक (Proviso) में वर्णित मामलों में सम्बन्धित संशोधन, जिनका ऐसे "विशेष बहुमत" के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्य विधानमण्डलों द्वारा अनुसमर्थन होना आवश्यक है ।

साधारण बहुमत द्वारा संशोधन

निम्नलिखित में से किसी विषय से सम्बन्धित विधेयक को साधारण विधेयक माना जाता है, अर्थात् उसे सभा में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत द्वारा पारित किया जाता है :

(क) नये राज्यों का संघ में प्रवेश अथवा स्थापना, नये राज्यों का गठन तथा वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों या सीमाओं में अथवा उनके नामों में परिवर्तन (अनुच्छेद 2,3, 4)

(ख) राज्यों की विधान परिषदों का सृजन अथवा उत्सादन (Creation and Abolition) (अनुच्छेद 169)

(ग) अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों का प्रशासन और नियन्त्रण (पंचम अनुसूची का पैरा 7), और

(घ) असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों में जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन (छठी अनुसूची का पैरा 21)

जहाँ तक इस श्रेणी के संशोधनों का सम्बन्ध है, सामान्य विधान निर्माण प्रक्रिया ही लागू होती है, तथापि नये राज्यों के निर्माण और विद्यमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन करने की व्यवस्था करने वाले विधेयकों के सम्बन्ध में कुछ शर्तें हैं, अर्थात् इस प्रकार का कोई भी विधेयक संसद के किसी भी सदन में बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के पुरःस्थापित नहीं किया जा सकता और जब विधेयक में कोई ऐसा प्रस्ताव हो जिसका प्रभाव किसी राज्य के क्षेत्र, सीमाओं या नाम पर पड़ता हो, तो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य के विधानमंडल के पास उसको भेजना आवश्यक है जिससे कि वह निर्दिष्ट समय के भीतर अपनी राय दे सके। राय जानने के लिए अवधि को राष्ट्रपति बढ़ा भी सकता है। तत्पश्चात् ही ऐसा विधेयक पुरःस्थापित किया जा सकता है। परन्तु राष्ट्रपति इस प्रकार प्राप्त हुए विचारों को मानने के लिए बाध्य नहीं होता।[31]

राज्यों में विधान परिषदों (Legislative Councils) को समाप्त करने या उनके निर्माण के सम्बन्ध में कानून बनाकर उपबंध करने की संसद की शक्ति का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब उस राज्य विशेष की विधान सभा इस सम्बन्ध में सभा में उपस्थित और मतदान करने वाले कम से कम दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से इस संबंध में एक संकल्प (Resolution) पास कर दे।[32] संसद ऐसे संकल्प को स्वीकार कर सकती है या अस्वीकार कर सकती है या यदि चाहे तो उस पर कोई कार्यवाही न करे।

विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान के किसी अन्य भाग में संशोधन करने वाला विधेयक संसद के दोनों सदनों में से किसी भी सदन द्वारा एक विशेष बहुमत अर्थात् उस सभा की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से तथा सभा के उपस्थित और मतदान (Present & Voting) करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से पारित करना पड़ता है। वास्तव में इस उपबन्ध में जिस विशेष बहुमत का विधान किया गया है, उसकी आवश्यकता विधेयक के तीसरे वाचन के समय मतदान में ही हो सकती है, परन्तु सावधानी के लिए, विधेयक के सभी प्रभावी प्रक्रमों के सम्बन्ध में विशेष बहुमत की आवश्यकता का उपबन्ध नियमों में किया गया है।[33]

संविधान में विशेष बहुमत द्वारा संशोधन और राज्यों द्वारा अनुसमर्थन

संविधान के निम्नलिखित उपबन्धों में संशोधन करने वाला विधेयक विशेष बहुमत द्वारा पास किया जाता है। इसको संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष

बहुमत से पास किया जाना होता है और राष्ट्रपति की अनुमति हेतु उसे प्रस्तुत किये जाने के पहले उस संशोधन का राज्यों में से कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा संकल्प (Resolutions) पारित करके उसका अनुसमर्थन करना होता है।[31]

(क) राष्ट्रपति का निर्वाचन (अनुच्छेद 54 और 55);

(ख) संघ और राज्यों की कार्यपालिका शक्ति (executive power) का विस्तार (अनुच्छेद 73 और 162),

(ग) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय (संविधान का अनुच्छेद 241, भाग 5 का अध्याय 4 और भाग 6 का अध्याय 5)

(घ) संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण (संविधान के भाग 11 का अध्याय 1 और सातवीं अनुसूची)

(ङ) संसद् में राज्यों का प्रतिनिधित्व; या

(च) संविधान में विहित संशोधन की प्रक्रिया (अनुच्छेद 368)

संविधान में किसी ऐसी समय-सीमा की अपेक्षा नहीं की गई है जिसके भीतर राज्यों को उनको निर्दिष्ट किये गये संशोधनों से अनुसमर्थन या निरनुमोदन की सूचना भेजनी अनिवार्य है।

गैर सरकारी सदस्यों के विधेयक (Private Members Bill)

संसद् में गैर सरकारी सदस्यों की भूमिका भी उतनी महत्त्वपूर्ण होती है जितनी की सरकारी सदस्यों की। जहां वे एक ओर सरकार के लोकतांत्रिक तथा देश के हितों में किए गए कार्यों की सराहना करते हैं वहीं वे सरकार के उन प्रयासों का विरोध करते हैं जिनको वे देश के लिए अहितकर समझते हैं। ऐसा वे संसद् के नियमों एवं प्रक्रियाओं में उनके लिए उपलब्ध विभिन्न साधनों का प्रयोग करके करते हैं। इन विभिन्न साधनों का प्रयोग करते हुए गैर सरकारी सदस्य लोक महत्त्व के विभिन्न मामलों पर अपने विचार व्यक्त करते हैं और सरकार को जनहित के कार्यक्रम एवं नीतियां तैयार करने की आवश्यकता के बारे में जनता की अभिलाषाओं और समय की मांग से अवगत कराते हैं। गैर सरकारी सदस्यों द्वारा विधान की शुरुआत भी इसी दिशा में एक कदम होता है और संसद् के नियमों एवं प्रक्रियाओं में इस बारे में विशेष उपबन्ध किया गया है।

यद्यपि गैर सरकारी सदस्यों द्वारा लाए जाने वाले विधेयक प्रायः अन्त में पारित नहीं हो पाते हैं किन्तु इन पर हुई चर्चा से लोक महत्त्व की समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है तथा उसके सम्बन्ध में हुए विस्तृत वाद-विवाद से उस विषय के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधाराओं से सरकार अवगत हो जाती है। गैर सरकारी सदस्य द्वारा लाए गए विधेयक की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में सरकार को अपने

विचार सदन के समक्ष रखने पड़ते हैं और उसको ध्यान में रखते हुए अपनी नीतियों को नए मोड़ देने पड़ते हैं। कभी-कभी यह भी होता है कि विधेयक की विषय-वस्तु के महत्व को देखते हुए सरकार स्वयं तत्सम्बन्धी व्यापक विधेयक संसद में पेश करती है।

प्रत्येक संसद् सदस्य को, जो मंत्री नहीं, गैर सरकारी सदस्य कहा जाता है। लोक सभा में, प्रत्येक शुक्रवार को बैठक के अन्तिम ढाई घंटे गैर-सरकारी सदस्यों के कार्य को निपटाने, अर्थात् गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों (Private members bills & resolutions) के लिए नियत किए जाते हैं। इनसे सम्बन्धित कार्य एक दूसरे के बाद आने वाले शुक्रवारों को यथाक्रम निपटाया जाता है, जो विधेयकों से प्रारम्भ किया जाता है, अर्थात् सत्र प्रारम्भ होने के पश्चात् पहले शुक्रवार को विधेयक (Bill) लिये जाते हैं और दूसरे शुक्रवार को संकल्प (Resolution) और यही क्रम चलता रहता है।

जहाँ तक गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पेश किए गए विधेयकों का सम्बन्ध है, उनके बारे में सामान्य प्रक्रिया वही है जो सरकारी विधेयकों के बारे में है। गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पुरःस्थापित किए जाने वाले विधेयकों को भी उन सभी अवस्थाओं (Stages) में से गुजरना पड़ता है जिनमें से कि सरकारी विधेयक गुजरते हैं। परन्तु विधेयक पेश करने की सूचना की अवधि, किसी सदस्य द्वारा एक अधिवेशन (Session) में पेश किए जा सकने वाले विधेयकों की संख्या पर प्रतिबन्ध, संविधान में संशोधन करने वाले विधेयकों, चर्चा के लिए सापेक्ष पूर्ववर्तिता इत्यादि के सम्बन्ध में गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट प्रावधान होते हैं।

यदि कोई सदस्य कोई विधेयक पुरःस्थापित करना चाहता हो उसे उसकी पूर्व सूचना देनी होती है। किसी विधेयक को पुरःस्थापित करने के लिए सूचना की अवधि एक महीना है, किन्तु अध्यक्ष की अनुमति से उसे इससे कम अवधि के भीतर भी पुरःस्थापित किया जा सकता है। सूचना के साथ विधेयक की एक प्रति तथा उद्देश्यों और कारणों का एक व्याख्यात्मक कथन (explanatory notes) भी देना होता है। जहाँ विधेयक के अधिनियमित हो जाने पर भारत की संचित निधि में से धन व्यय होने की सम्भावना हो, वहाँ सदस्य को विधेयक के साथ खर्च की अनुमानित राशि को दर्शाने वाला एक वित्तीय ज्ञापन (Financial Memorandum) भी लगाना होता है। यदि विधेयक में प्रत्यायोजित विधान (Delegated legislation) के बारे में कोई प्रस्ताव है तो प्रत्यायोजित विधान सम्बन्धी ज्ञापन भी विधेयक के साथ लगाना होता है।[35]

गैर-सरकारी सदस्यों के लिए नियत किसी दिन को पुरःस्थापित किए जाने के लिए प्रस्तावित सभी विधेयकों के पुरःस्थापन के प्रस्ताव उसी दिन की कार्य-सूची

में शामिल किए जाते हैं।[36]

संविधान में संशोधन का प्रस्ताव करने वाले विधेयकों पर गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों सम्बन्धी सामान्य नियम तो लागू होते ही हैं, इसके अतिरिक्त गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों और प्रस्तावों सम्बन्धी समिति[37] द्वारा भी उनकी जांच की जाती है और उस समिति द्वारा सिफारिश किए गए विधेयक ही पुर:स्थापन के लिए कार्य-सूची (List of Business) में रखे जाते हैं।

परिपाटी के अनुसार गैर-सरकारी सदस्य के किसी विधेयक के पुर:स्थापन के प्रस्ताव का विरोध नहीं किया जाता। यदि किसी विधेयक को पुर:स्थापित करने की अनुमति के प्रस्ताव (Motion) का विरोध किया जाए तो पीठासीन अधिकारी (Presiding officer) यदि वह ठीक समझे तो, प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्य और प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को संक्षिप्त वक्तव्य (Statement) देने की अनुमति दे सकता है और तत्पश्चात् प्रस्ताव सदन में निर्णय के लिये मतदान के लिये रख सकता है। परन्तु यदि विधेयक पुर:स्थापित करने के प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया जाता है कि वह विधेयक ऐसे विधान का सूत्रपात करता है जो सभा की विधायिनी क्षमता (Legislative Competence) से परे है तो पीठासीन अधिकारी उस पर पूर्ण चर्चा की अनुमति दे सकता है और तत्पश्चात् प्रस्ताव सदन के फैसले के लिए मतदान के लिये रख सकता है। एक गैर-सरकारी सदस्य को एक सत्र (Session) में चार से अधिक विधेयक (Bills) पुर:स्थापित (Introduce) नहीं करने दिये जाते।

विधेयकों के पुर:स्थापित किये जाने के पश्चात् और सभा में उन्हें विचारार्थ लिये जाने से पूर्व गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों का उनके स्वरूप, उनकी अविलम्बनीयता और महत्ता के आधार पर दो वर्गों, अर्थात् वर्ग "क" और वर्ग "ख" में वर्गीकरण करती है। सभा में विचार किए जाने के प्रयोजन से वर्ग "क" में वर्गीकृत विधेयकों को वर्ग "ख" में वर्गीकृत विधेयकों की तुलना में पूर्ववर्तिता दी जाती है। उन पर विचार किए जाने के लिए समय भी समिति ही आवंटित करती है। वर्ग विशेष में रखे गये विधेयकों की सापेक्ष पूर्ववर्तिता बैलट द्वारा निर्धारित की जाती है। विधेयकों को बैलट द्वारा निर्धारित प्राथमिकता क्रम के अनुसार कार्य-सूची में शामिल किया जाता है।

अधीनस्थ विधान (Subordinate legislation)

कल्याणकारी राज्य की आधुनिक संकल्पना (Modern Concept) में सरकार का कार्य-कलाप मानवीय कार्यकलाप के प्रत्येक क्षेत्र तक पहुंच गया है और इस निरन्तर बढ़ते हुए कार्यकलाप को नियमित करने के लिए भिन्न-भिन्न कानून बनाने की आवश्यकता पड़ती है। विधान मंडल के पास इतना समय नहीं होता कि वह सभी आवश्यक विधियों पर विचार कर सके, उन पर चर्चा कर सके और उनका अनुमोदन कर सके। कानून बनाने की प्रक्रिया भी बहुत जटिल और तकनीकी

बन गयी है और कानून की सभी तफसील। बारीकियां बिल्कुल ठीक होना आवश्यक है। इस परिस्थिति में संसद यही कर सकती है और करती रही है कि जो भी कानून उसके सामने आये वह उसके सम्बन्ध में मुख्य सिद्धान्त निर्धारित कर दे और यह काम कार्यपालिका (Executive) पर छोड़ दे कि वह उन सिद्धान्तों के अनुसार उस कानून का औपचारिक (Formal) तथा प्रक्रिया सम्बन्धी ब्यौरा तैयार कर सके। इसका परिणाम यह है कि विधान मंडल सामान्य रूप में विधियां बनाता है और यह बात सरकार पर छोड़ देता है कि वह उल्लिखित सीमाओं में रहकर विस्तृत नियम एवं विनियम (Rules & regulations) बनाये और विधान के उद्देश्यों को पूरा करे और ऐसी नई परिस्थितियों का समाधान करे जो विधियां बनाते समय विधान मंडल के समक्ष नहीं थीं। विधान मंडल द्वारा प्रत्यायोजित प्राधिकार (Delegated Authority) के अधिकार क्षेत्र में रह कर किसी अधीनस्थ एजेन्सी (Subordinate Agency) द्वारा बनाए जाने वाले ऐसे नियमों एवं विनियमों को "अधीनस्थ विधान" कहा जाता है। कभी कभी इसे "प्रत्यायोजित विधान" (Delegated legislation) भी कहा जाता है।

भारत में प्रत्यायोजन (Delegation) की यह शक्ति संघ रूप में संविधायी शक्ति (Legislative Power) का तत्व है। विधान मंडल की यह क्षमता नहीं है कि वह कार्यपालिका (Executive) या किसी अन्य निकाय (Body) का किसी अत्यावश्यक मामले में अपने कानून बनाने के अधिकार दे दे। ऐसा तभी हो सकता है जबकि विधान मंडल (Legislature) समग्र सामान्य रूप में नीति का निर्धारण कर देता है और प्रत्यायुक्त (Delegate) का केवल यह शक्ति देता है कि विधान मंडल की नीति को कार्य के रूप में परिणत करने के लिये नियम तथा विनियम बनाये। यह विधान मंडल की इच्छा पर निर्भर है कि वह जितना उचित समझे उतना कार्य किसी अधीनस्थ प्राधिकार (Subordinate Authority) को दे दे, जो उस नीति की सीमाओं में रहते हुए उस कानून के ब्यौरे की बात तय करे।

अधीनस्थ विधान की कभी-कभी इस आधार पर पुरजोर आलोचना की जाती है कि प्रत्यायोजन की इस प्रक्रिया से संसद् की विधायी शक्तियां कार्यपालिका अनाधिकृत रूप से ग्रहण कर लेती है और इसके परिणामस्वरूप नौकरशाही (Bureaucracy) की "नयी सामन्तशाही" कायम हो जाती है जो न तो संसद् के प्रति उत्तरदायी होती है और न प्रत्यक्ष रूप से लोगों के प्रति। ऐसा पूर्ण प्राधिकार देने से स्पष्टतया नौकरशाही मनमाने ढंग से कार्य कर सकती है। ऐसा होते हुए भी, आज के वातावरण से अधीनस्थ विधान (Subordinate Legislation) से पूर्णतया बचना असम्भव है। इसलिये सबसे आवश्यक बात यह है कि अधीनस्थ विधान की शक्ति के प्रयोग पर निरन्तर संसदीय निगरानी एवं नियन्त्रण (Parliamentary surveillance & control) रहे।

प्रत्यायोजित शक्ति (Delegated Power) के दुरुपयोग को रोकने के लिए कुछ पूर्वोपायों का उपबन्ध किया गया है। यथा "जिस विधेयक में विधायिनी शक्ति के प्रत्यायोजन (Delegation of legislative powers) के प्रस्ताव सम्मिलित हों, उसके साथ प्रत्येक तक ज्ञापन (Memorandum) होगा जिसमें ऐसे प्रस्तावों की व्याख्या होगी और उनकी व्याप्ति (Scope) की ओर ध्यान दिलाया जाएगा तथा यह भी बताया जाएगा कि वे सामान्य रूप की हैं या अपवाद रूप की।"[38] इसके अतिरिक्त जब मूल अधिनियम (Orginal Act) अर्थात् शक्तियों का प्रत्यायोजन करने वाला विधेयक (Bill) सभा के विचाराधीन हो तो उस समय इन आदेशों के क्षेत्र, स्वरूप तथा प्रयोजन पर वाद-विवाद हो सकता है, उनकी ठीक-ठीक परिभाषा की जा सकती है और उन्हें सीमित किया जा सकता है, या जब आदेश प्रस्तावित किए जाते हैं या बनाये जाते हैं तो लोक सभा यह निर्दिष्ट कर सकती है कि इनका प्रारूप (Draft) या इनका अन्तिम रूप संसद् के सामने रखा जाएगा, जिससे कि वह उनका अनुमोदन कर सके या उन्हें रद्द कर सके, या आदेश बन जाने के बाद लोक सभा उनका प्रति संहरण (Revoke) कर सकती है या बाद में कानून बनाकर उनमें फेर-बदल कर सकती है। इस प्रकार संसद इन अवस्थाओं में अपने अधिकार का प्रयोग करके छानबीन करती है और नियन्त्रण रखती है। इसके अतिरिक्त कार्यपालिका या प्रशासन के अभिकरणों द्वारा सविहित प्राधिकार के अन्तर्गत बनाये गये सभी नियमों और विनियमों की न्यायालय उनके शक्ति बाह्य होने के तर्क के आधार पर जाँच कर सकते हैं। सबसे अधिक बात तो यह है कि संसद् के प्रत्येक सदन की "अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति" कार्यपालिका द्वारा बनाये गये प्रत्येक नियम-विनियम की जाँच करती है और यह देखती है कि क्या संसद् द्वारा प्रत्यायोजित शक्तियों का, ऐसी शक्तियां प्रत्यायोजित करने वाली विधि के दायरे में रहकर, उचित प्रयोग किया गया है और उसके बाद अपने सदन को उस बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। वास्तव में, अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति (Committee on subordinate legislation) ही इस बात पर अंकुश लगाती है कि कार्यपालिका मनमानी शक्तियां ग्रहण न कर ले। इस समिति ने सदा यह सुनिश्चित किया है कि प्रत्यायोजित शक्तियों (Delegated powers) के अधीन बनाये जाने वाले सभी नियम और विनियम न केवल तुरन्त संसद् के समक्ष प्रस्तुत किये जायें बल्कि उन्हें रद्द करने या उनमें रूप भेद करने का अधिकार संसद् के पास रहे।

संदर्भ

1. सुभाष कश्यप, पार्लियामेन्ट आफ इन्डिया—मिथ्स एण्ड रियल्टी, नई दिल्ली, 1988
2. निदेश 19 क
3. निदेश 19 ख
4. नियम 72
5. नियम 73
6. नियम 64
7. नियम 75
8. नियम 74
9. नियम 258
10. नियम 7 7
11. नियम 302
12. नियम 200 (2)
13. निदेश 68
14. निदेश 20 (क) और (3) तथा 21
15. निदेश 24 और 26
16. नियम 77
17. नियम 79 और 80
18. नियम 93 (1)
19. नियम 94
20. नियम 93 (3)
21. नियम 96 (1)
22. अनु 108 ( )
23. अनु 118 (4) और संसद के सदन (संयुक्त बैठक तथा संचार) नियम, नियम 2
24. वही नियम 7
25. अनु. 111 और नियम 128
26. अनु 110
27. अनु 109
28. अनु 117 (1)
29. अनु 117
30. नियम 294

31 अनु. 3
32. अनु 169
33 नियम 157, 158 और 159
34 अनु. 68 (2)
35 नियम 65, 69 और 70
36 नियम 27 (1)
37 राज्य सभा में गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति नहीं होती
38 नियम 70

□

9

वित्तीय मामलों में प्रक्रिया बजट और वित्तीय विधान

लोकतान्त्रिक ढंग से निर्वाचित सरकार का यह दायित्व हो जाता है कि वह लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए विकास योजनाएं कार्यान्वित करे तथा उनको आवास उपलब्ध कराए, उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था करे, स्वास्थ्य सेवाएं जुटाए एवं रोटी-रोजी के साधन उपलब्ध कराए। इसके अतिरिक्त देश के अन्दर विधि व्यवस्था बनाए रखने तथा राष्ट्र की बाहरी आक्रमण से रक्षा करने का दायित्व भी सरकार के कार्यक्षेत्र में आता है। कहना न होगा कि इन सब कार्यों के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन (Financial Resources) जुटाने, प्राथमिकताएं निर्धारित करने और कार्यक्रम बनाने का काम भी सरकार का होता है। अतः इन कृत्यों के निर्वहन के लिए सरकार को धन की आवश्यकता होती है जो कि देश के संसाधनों में से करों, ऋणों आदि के रूप में जुटाया जाता है। देश के संसाधन (Resources) चूंकि सीमित होते हैं अतः विभिन्न सरकारी कार्यों के लिए दुर्लभ संसाधनों का आवंटन करने हेतु उचित बजट व्यवस्था करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि करों और ऋणों के रूप में धन लोगों से जुटाया जाता है। अतः सरकार के वित्तीय प्रस्तावों के लिए लोगों की मंजूरी लेना आवश्यक है जो संसद में उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त की जाती है। इसी उद्देश्य के लिए भारत सरकार संसद के दोनों सदनों में प्रत्येक वर्ष बजट पेश करती है।

बजट क्या है

प्रत्येक वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में भारत सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण (Annual Financial statement) या अनुमानित आय और व्यय का विवरण (Estimated receipts and expenditure Statement) आम तौर पर बजट कहलाता है। भारत सरकार का वित्तीय वर्ष इस समय प्रत्येक वर्ष की प्रथम अप्रैल से प्रारम्भ होता है। संक्षेप में, बजट में इस बात का ब्योरा दिया

गया होता है कि समाधन (Resources) किस प्रकार जुटाये जायेंगे और आगामी वर्ष किन-किन मदों पर कितना धन खर्च किया जाना है।

संविधान में उपबंधित है कि कोई कर, विधि के प्राधिकार से अधिरोपित या संगृहीत किया जाएगा, अन्यथा नहीं और राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार की उस वर्ष के लिए प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण (Statement of estimated receipts and expenditure) रख पाएगा[1]। इस प्रकार वित्तीय मामलों में लोक सभा की सर्वोच्चता सुनिश्चित होती है। चूंकि व्यय के प्रत्येक प्रस्ताव को संसद् द्वारा केवल एक वर्ष के लिए मंजूर किया जाता है सरकार एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए संसद को नजर अन्दाज नहीं कर सकती है। संविधान में भारत की "संचित निधि" (Consolidated Fund) के लिए उपबन्ध किया गया है जिसमें ऋणों, अग्रिम राशियों इत्यादि द्वारा प्राप्त सारा राजस्व (Revenue) जमा किया जाता है।[2] बजट में व्यय इस प्रकार पृथक्-पृथक दिखाए जाते हैं —(क) संविधान में भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) पर प्रभारित व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशियां, और (ख) भारत की संचित निधि में से किए जाने के लिए प्रस्थापित अन्य व्यय की पूर्ति के लिए अपेक्षित राशियां। प्रथम श्रेणी के व्यय के बारे में दोनों सदनों में चर्चा हो सकती है परन्तु उसे दोनों में से किसी भी सदन के मतदान के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता। अत: वह बजट का मतदान के लिए न रखा जा सकने वाला भाग है। निम्नलिखित व्यय भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्यय में सम्मिलित होता है। राष्ट्रपति की परिलब्धियां और भत्ते तथा उसके पद से संबंधित अन्य व्यय राज्य सभा के सभापति और उप सभापति के तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और अन्य भत्ते, भारत के नियन्त्रक-महालेखा-परीक्षक को, या उसके संबंध में, संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन तथा कोई अन्य व्यय जो संविधान द्वारा या संसद् द्वारा, विधि द्वारा इस प्रकार प्रभारित घोषित किया जाता है। दूसरी श्रेणी का व्यय लोक सभा के समक्ष अनुदानों की मांगों (Vote of Grants) के रूप में रखा जाता है। लोक सभा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी ऐसी मांग को स्वीकार करे या स्वीकार करने से इंकार कर दे अथवा इस मांग में कमी कर दे। किसी अनुदान की ऐसी मांग राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही की जा सकती है, अन्यथा नहीं[3]। इन मांगों का उद्देश्य चूंकि सरकार के कार्यक्रमों और नीतियों को लागू करना होता है इसलिए यदि कोई मांग पूरे तौर पर अस्वीकृत कर दी जाती है तो इसका अर्थ सरकार की पराजय होता है।

भारत की संचित निधि में से कोई धन संसद् द्वारा किए जाने वाले विनियोग अधिनियम(Appropriation Act)के अधीन ही निकाला जा सकता है, अन्यथा नहीं।[4]

बजट संबंधी कार्य करते समय संसद् में जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, उसकी तीन अवस्थाएं हैं ।

(क) बजट पेश किया जाना . लोक सभा में बजट दो भागों में, अर्थात् रेल वित्त से संबंधित रेल बजट और रेलों को छोड़कर भारत सरकार की समूची वित्तीय स्थिति को दर्शाने वाला "सामान्य बजट" (General Budget) पेश किया जाता है। रेलवे के लिए अलग बजट पेश करने का मूल उद्देश्य यह था कि रेलवे राजस्व से निश्चित रूप से सामान्य राजस्व को अंशदान किये जाने की व्यवस्था करके प्राक्कलनों में स्थिरता लायी जाये और रेलवे वित्त के प्रशासन में लचीलापन लाया जाये ।

रेल बजट रेलवे मंत्री द्वारा लोक सभा में प्रत्येक वर्ष फरवरी मास के तीसरे सप्ताह में किसी दिन प्रस्तुत किया जाता है और सामान्य बजट प्रतिवर्ष फरवरी के अन्तिम कार्य-दिवस को 5 बजे सायं पेश किया जाता है । सामान्य बजट वित्त मंत्री द्वारा लोक सभा में पेश किया जाता है । मंत्री के बजट भाषण के दो भाग होते हैं, भाग 'क' में देश का सामान्य आर्थिक सर्वेक्षण (Economic Survey) और भाग 'ख' में आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए कराधान संबंधी प्रस्ताव (Taxation Proposals) होते हैं । भाषण की समाप्ति के पश्चात् वित्त मंत्री बजट की एक प्रति स्वयं प्रमाणित कर राज्य सभा के पटल पर रखता है । उसके तुरन्त बाद वित्त मंत्री लोक सभा में, अगले वर्ष के सम्बन्ध में सरकार के वित्तीय प्रस्तावों को कार्य रूप देने के लिए वित्त विधेयक पेश करता है जिसमें सरकार के कराधान प्रस्ताव होते हैं[5] । उसके बाद सभा की बैठक स्थगित हो जाती है और जिस दिन बजट पेश किया जाता है उस दिन बजट पर चर्चा नहीं की जाती[6] ।

(ख) बजट पर चर्चा . बजट पर दो प्रक्रमों (Stages) में चर्चा होती है, अर्थात् (i) पहले उस पर सामान्य चर्चा (General Discussion) होती है और उसके पश्चात् अनुदानों की मांगों (Demands of Grants) पर विस्तृत चर्चा तथा मतदान होता है । बजट पर चर्चा बजट पेश किए जाने के कुछ दिन पश्चात् प्रारम्भ होती है[7] ।

सामान्य चर्चा वाद-विवाद (Debate) से प्रारम्भ होती है जो दोनों सदनों में तीन-चार दिन तक चलता है । सामान्य चर्चा के दौरान सभा को इस बात की पूरी छूट होती है कि वह चाहे तो समूचे बजट पर चर्चा करे, परन्तु कोई प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता । प्रशासन की सामान्य समीक्षा की जा सकती है । कराधान और व्यय के ब्यौरे को चर्चा का विषय नहीं बनाया जाता है । चर्चा केवल वित्त मंत्री के भाषण में उल्लिखित कराधान नीति तक ही सीमित होती है । इस प्रकार सामान्य वाद-विवाद में प्रत्येक सदन को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है जिससे सरकार को यह आभास हो जाता है कि प्रस्ताव विशेष के प्रतिवाद की अवस्थाओं में क्या प्रतिक्रिया होगी । राज्य सभा को दी गई शक्ति के अनुसार

वहाँ केवल सामान्य चर्चा होती है। केवल लोक सभा को ही मांगों पर मतदान का अधिकार प्राप्त है।

(ii) सामान्यतः, प्रत्येक मंत्रालय को दिये जाने वाले अनुदान (Grants) के संबंध में एक अलग मांग की जाती है। इन मांगों का संबंध बजट के व्यय वाले भाग से होता है। इनके जरिये कार्यपालिका लोक सभा से निवेदन करती है कि मांगी गई राशि को खर्च करने का उन्हें अधिकार दिया जाये। अनुदानों की मांग (Demands For Grants) सामान्यतया सम्बद्ध मंत्री द्वारा सभा में प्रस्तुत नहीं की जाती। ये मांगें पेश की गई मानी जाती हैं तथा सभा का समय बचाने के लिए अध्यक्षपीठ (Chair) द्वारा प्रस्तावित की जाती हैं। इस प्रक्रम में चर्चा का क्षेत्र ऐसे मामले तक, जो मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रणाधीन होता है और उस मांग के प्रत्येक शीर्षक (head) तक, जो सभा में मतदान के लिए रखी जाती है, सीमित रहता है।

मांगों पर चर्चा के दौरान सम्बद्ध मंत्रालय की नीतियों और कार्यकरण की विस्तारपूर्वक जांच की जाती है। प्रत्येक मंत्रालय की मांगों पर चर्चा के लिए अलग-अलग समय नियत किया जाता है। सदस्यों को इस बात की छूट होती है कि वे किसी मंत्रालय विशेष द्वारा अपनाई जाने वाली नीति का निरनुमोदन कर सकें अथवा उस मंत्रालय के प्रशासन में मितव्ययिता (economy) लाने हेतु उपाय सुझा सकें अथवा उस मंत्रालय का ध्यान विशिष्ट स्थानीय शिकायतों की ओर आकृष्ट कर सकें। *इस प्रक्रम में अनुदानों की मांगों के मूल प्रस्ताव के सहायक प्रस्ताव पेश करके* सदस्य ऐसा कर सकते हैं। इन सहायक प्रस्तावों को संसदीय भाषा में "कटौती प्रस्ताव" (Cut-Motion) कहा जाता है।[8] परन्तु *किसी मांग में कमी करने के उद्देश्य से पेश किये गये किसी प्रस्ताव में संशोधनों की अनुमति नहीं होती है।*

कटौती प्रस्ताव - अनुदानों की मांगों की राशियों में कमी करने वाले प्रस्ताव "कटौती प्रस्ताव" कहलाते हैं। कटौती प्रस्तावों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है (एक) नीतिनिरनुमोदन कटौती (Disapproval of policy cut), (दो) मितव्ययिता कटौती (Economy cut) और (तीन) सांकेतिक कटौती। सबसे प्रभावी कटौती प्रस्ताव "नीति निरनुमोदन कटौती" प्रस्ताव होता है जिसमें कहा जाता है कि मांग की राशि को घटाकर एक रुपया किया जाये"। इसका तात्पर्य होता है कि प्रस्तावक मांग में अन्तर्ग्रस्त नीति का निरनुमोदन करता है। इसके अतिरिक्त "मितव्ययिता कटौती" प्रस्ताव होता है जिसका उद्देश्य व्यय में मितव्ययिता लाने की दृष्टि से मांग की राशि में रुपये (एक राशि विशेष) की कमी की जाये। कम करने के लिए सुझाई गई राशि मांग में एक मुश्त राशि (lump-sum) की कमी करने के बारे में हो सकती है या मांग में से किसी मद को हटाने अथवा उसमें कमी करने के बारे में हो सकती है। अन्तिम कटौती प्रस्ताव "सांकेतिक कटौती" (Token cut) प्रस्ताव होता है जिसमें कहा जाता है "कि मांग की राशि

से 100 रुपये कम किए जायें ।" ऐसे कटौती प्रस्ताव पर चर्चा उसमें विनिर्दिष्ट शिकायत तक ही सीमित रहती है, जो भारत सरकार के उत्तर-दायित्व के क्षेत्र में होती है। कटौती प्रस्ताव के रूप में, इस प्रस्ताव का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है ।

सामान्यतया, मूल प्रस्ताव और उसमें सबंधित कटौती प्रस्ताव पर सदन में एक साथ चर्चा की जाती है और उसे मतदान के लिए रखा जाता है। अतः कटौती प्रस्ताव के माध्यम से अनुदानों की मांगों (Demands of Grants) पर चर्चा प्रारम्भ की जाती है। चर्चा के पश्चात्, सर्वप्रथम कटौती प्रस्तावों (Cut motions) को निपटाया जाता है और उसके बाद अनुदानों की मांगे सदन में मतदान के लिए रखी जाती है। कटौती प्रस्ताव विपक्ष के सदस्यों द्वारा पेश किए जाते हैं। उनके स्वीकार हो जाने से तात्पर्य होता है सरकार की निन्दा। किन्तु सदन में बहुमत की सरकार होने से उनके स्वीकृत होने की आशा ही नहीं होती। अतः कटौती प्रस्ताव अनुदानों संबंधी मांगों पर चर्चा प्रारम्भ करने के प्रतीक मात्र होते हैं।

किसी मांग विशेष की और बजट सहित अनुदानों की मांगों पर चर्चा हेतु और उनको स्वीकार करने के लिए समय का आवंटन कार्य-मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee) द्वारा किया जाता है। जैसे ही किसी मांग का समय-सीमा समाप्त होती है, उस पर चर्चा के "समापन" (Closure of discussion) की प्रक्रिया लागू की जाती है और मांग का मतदान के लिए रखा जाता है।[9] नियत दिनों में अन्तिम दिन निश्चित समय पर अध्यक्ष अनुदानों की मांगों से सबंधित सभी शेष मामलों को निपटाने के लिए आवश्यक प्रत्येक प्रश्न सभा के समक्ष रखता है। इस अनुदानों की मांगों पर "चर्चा की समाप्ति" (गिलोटिन) कहते हैं। इसके साथ ही अनुदानों की मांगों पर चर्चा समाप्त हो जाती है।[10]

(ग) विनियोग विधेयक (Appropriation Bill) संविधान के अनुच्छेद 114 के उपबंधों के अनुसार भारत की संचित निधि (Consolidated fund of India) से कोई भी धनराशि तब तक नहीं निकाली जा सकती जब तक कि उसके सम्बन्ध में कानून द्वारा विनियोग (Appropriation) न किया गया हो। सभा द्वारा अनुदानों की मांग (Demand of grants) पारित किये जाने के बाद, अनुदानों को और भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्यय (Charged) व्यय को पूरा करने के लिए सभी धनराशियों का भारत की संचित निधि में से विनियोग करने की व्यवस्था करने के लिये एक विधेयक (Bill) पुरःस्थापित किया जाता है, उस पर विचार किया जाता है और उसे पारित किया जाता है। उसमें वे राशियां भी शामिल होती हैं जो भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्यय हैं। इस विधेयक का आशय

सचित निधि में से व्यय के विनियोग के लिये सरकार को कानूनी अधिकार देना है।

विनियोग विधेयक पर चर्चा उसमें शामिल अनुदानों में निहित लोक महत्त्व के विषयों पर प्रशासनिक नीति तथा ऐसे मामलों तक, जो अनुदानों की मांगों पर चर्चा करते समय पहले उठाये गये हों, सीमित रहती है। इस पर कोई संशोधन पेश नहीं किए जा सकते।[11] अन्य मामलों में विनियोग विधेयक सम्बन्धी प्रक्रिया वही होती है, जो कि अन्य विधेयकों के संबंध में होती है। विधेयक को लोक सभा द्वारा पारित किये जाने के पश्चात् अध्यक्ष उसे धन विधेयक (Money Bill) होने के रूप में *प्रमाणीकृत करता है और उसको राज्य सभा के पास भेज देता है। राज्य सभा* को धन विधेयक में संशोधन करने या उसे अस्वीकृत करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। उसको विधेयक पर अपनी स्वीकृति देनी ही होती है। तत्पश्चात्, विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिये उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(घ) वित्त विधेयक (Finance Bill) "वित्त विधेयक' का अर्थ उस विधेयक से है, जो सामान्यतया, प्रतिवर्ष, अगले वित्तीय वर्ष के लिये भारत सरकार के वित्तीय प्रस्तावों (Financial proposals) को स्वीकृति देने के लिये पुरःस्थापित किया जाता है तथा उसमें ऐसा विधेयक भी शामिल होता है, जो किसी अवधि के लिये अनुपूरक (Supplementary) वित्तीय प्रस्तावों की स्वीकृति देता है।[12] यह विधेयक साधारणतया प्रत्येक वर्ष बजट पेश किये जाने के तुरन्त पश्चात् लोक सभा में पेश किया जाता है।

वित्त विधेयक के पुरःस्थापन का विरोध नहीं किया जा सकता और उसे तुरन्त मतदान के लिये रखा जाता है।[13] विधेयक पर चर्चा सामान्य प्रशासन संबंधी मामलों, भारत सरकार की जिम्मेदारी के अन्तर्गत आने वाले प्रश्नों के संबंध में स्थानीय शिकायतों या सरकार की वित्तीय अथवा धन संबंधी नीति के सम्बन्ध में ही उठायी जा सकती है।[14] वित्त विधेयक पर चर्चा के दौरान सरकार की नीति की सामान्य आलोचना की तो अनुमति है किन्तु किसी विशेष प्राक्कलन के ब्यौरे पर चर्चा करना नियमानुकूल नहीं है। संक्षेप में सारे प्रशासन की समीक्षा की जा सकती है। परन्तु *उन प्रश्नों को फिर से नहीं उठाया जा सकता जिन पर पहले किसी वाद-*विवाद में चर्चा हो चुकी है। वित्त विधेयक संसद् द्वारा, उसके पुरःस्थापित किये जाने के 75 दिनों के भीतर पास करना पड़ता है और उसी अवधि *के भीतर राष्ट्रपति की अनुमति उस पर पर मिलना आवश्यक है।*[15]

लेखानुदान (Vote on Account) :

चूंकि बजट सम्बन्धी समूचा कार्य, जो बजट के पेश किये जाने से प्रारम्भ होता है और अनुदानों की मांगों पर चर्चा और मतदान तथा विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक के पारित होने पर समाप्त होता है, सामान्यतः चालू वित्तीय वर्ष में पूरा नहीं हो पाता, इसलिये संविधान में ऐसा उपबन्ध किया गया है, जिसके

अन्तर्गत लेखानुदान (Vote on Account) द्वारा अग्रिम अनुदान देने की शक्ति लोक सभा को दी गई है। जिससे सरकार अनुदानों की मांगों (Demands for grants) पर मतदान होने तथा विनियोग विधेयक (Appropriation Bill) और वित्त विधेयक (Finace Bill) के पारित होने तक अपना कार्य चला सके।[14]

सामान्यतः लेखानुदान की स्वीकृति दो महीनों के लिये ली जाती है और इसकी राशि अनुदानों की विभिन्न मांगों के अधीन समस्त वर्ष के लिये प्राक्कलित (Estimated expenditure) व्यय के छठे भाग के बराबर होती है। यदि किसी निर्वाचन वर्ष में यह पूर्वानुमान हो कि सभा को मुख्य अनुदानों और विनियोग विधेयक को पारित करने में अधिक समय लग सकता है तो लेखानुदान की स्वीकृति अधिक समय अर्थात् तीन से चार मास तक के लिये ली जा सकती है। प्रथानुसार लेखानुदान को एक औपचारिकता माना जाता है और इसे लोक सभा किसी चर्चा के बिना ही स्वीकार करती है। बजट पर सामान्य चर्चा समाप्त होने के पश्चात् और अनुदानों की मांगों पर चर्चा प्रारम्भ करने से पूर्व लोक सभा द्वारा लेखानुदान स्वीकृत किया जाता है। रेल बजट के सम्बन्ध में जिसे 31 मार्च से पहले स्वीकार किया जाता है, किसी निर्वाचन वर्ष को छोड़कर जब ऐसा करना आवश्यक हो, कोई लेखानुदान स्वीकृत नहीं किया जाता है।

अनुपूरक तथा अतिरिक्त अनुदानों की मांगें[15]

संसद् द्वारा स्वीकृत राशि से अधिक व्यय उसकी मंजूरी के बिना खर्च नहीं किया जा सकता। यदि किसी सेवा विशेष पर चालू वित्तीय वर्ष में व्यय किये जाने के लिये प्राधिकृत कोई राशि उस वर्ष के प्रयोजनों के लिए अपर्याप्त पाई जाती है या जब उस वर्ष के बजट में अपेक्षित किसी नई सेवा के लिये चालू वित्तीय वर्ष में अनुपूरक या अतिरिक्त व्यय (Supplementary or additional expenditure) करने की आवश्यकता पैदा होती है, तो राष्ट्रपति संसद् के दोनों सदनों के समक्ष उस व्यय की प्राक्कलित राशि दिखाने वाला एक और विवरण प्रस्तुत करवाता है।

यदि किसी वित्तीय वर्ष में किसी सेवा पर उस सेवा और उस वर्ष के लिये अनुदत्त राशि (Granted amount) से अधिक व्यय हो जाता है तो राष्ट्रपति लोक सभा में ऐसे अतिरिक्त व्यय के लिये मांग प्रस्तुत करवाता है। ऐसे अतिरिक्त व्यय के सभी मामलों की ओर नियंत्रक और महा लेखा परीक्षक (Comptroler and Auditor General) द्वारा विनियोग लेखाओं सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन के माध्यम से संसद् का ध्यान दिलाया जाता है। तत्पश्चात् अतिरिक्त व्यय के इन मामलों की छानबीन लोक लेखा समिति द्वारा की जाती है, जो सभा को प्रस्तुत किये जाने वाले अपने प्रतिवेदन में इनको विनियमित करने के बारे में अपनी सिफारिशें पेश करती है। अनुपूरक अनुदानों (Supplementary grants) की मांगें वित्तीय वर्ष का अन्त होने से पूर्व पेश और स्वीकार की जाती हैं, जब कि अनुदानों की अतिरिक्त मांगें वास्तव में धन व्यय किये जाने के पश्चात् तथा उस वित्तीय वर्ष, जिसके

संबंध में वे हैं, के समाप्त होने के पश्चात् प्रस्तुत की जाती है।

अनुपूरक अनुदानों की मांगों पर वाद-विवाद केवल उन मदों तक ही सीमित रहता है जिन्हें कि प्रस्तुत किया गया हो, और जहां तक चर्चाधीन मदों की व्याख्या करने या उन्हें स्पष्ट करने के लिये आवश्यक न हो, मूल अनुदानों पर या उनसे सम्बन्धित नीति पर कोई चर्चा नहीं हो सकती।[18] उन योजनाओं के सम्बन्ध में, जो मुख्य बजट में पहले ही मंजूर की जा चुकी हैं, नीति संबंधी या सिद्धान्त संबंधी किसी प्रश्न पर कोई चर्चा उठाने की अनुमति नहीं दी जाती। जिन मामलों के संबंध में कोई मंजूरी न ले ली गयी हो, उनसे सम्बन्ध में नीति सम्बन्धी प्रश्न उन्हीं मदों तक सीमित रखे जाते हैं, जिन पर सभा को मतदान करना हो। किसी अनुपूरक मतदान पर चर्चा के समय सामान्य शिकायतें नहीं बताई जा सकती हैं। कोई सदस्य केवल इतना कह सकता है कि अनुपूरक मांग आवश्यक है या कि नहीं।

अनुदानों की अतिरिक्त मांगों (Additional demands for grants) पर चर्चा के दौरान सदस्य केवल यह कह सकते हैं कि कैसे धन का अनावश्यक रूप से व्यय किया गया है या इसका व्यय नहीं किया जाना चाहिये था।

प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान (Votes of Credit and Exceptional Grants)[19]

जब किसी सेवा की महत्ता या राष्ट्रीय आपात के कारण सरकार को धन की अप्रत्याशित मांग को पूरा करने के लिये निधियों की आवश्यकता हो और जिसके संबंध में ऐसा ब्योरा देना सम्भव न हो जो कि वार्षिक वित्तीय विवरण (Financial Statement) में सामान्यतया दिया जाता है, तब ऐसी स्थिति में सदन बिना ब्यौरे दिये प्रत्ययानुदान के माध्यम से अप्रत्याशित मांग (unexpected demand) की पूर्ति के लिये अनुदान स्वीकृत कर सकता है।

अपवादानुदान (exceptional grant) एक ऐसा अनुदान है जो किसी वित्तीय वर्ष की चालू सेवा का भाग नहीं होता है। संसद् को किसी विशेष प्रयोजन के लिये इसे स्वीकार करने की शक्ति प्राप्त है। तथापि आज तक ऐसी कोई मांग संसद् में प्रस्तुत नहीं की गई है।

इसके अलावा, संघ राज्य क्षेत्रों और राष्ट्रपति के शासनाधीन राज्यों के बजट भी लोक सभा में पेश किये जाते हैं। ऐसे मामलों में केन्द्रीय सरकार की बजट संबंधी प्रक्रिया अध्यक्ष द्वारा किये गये परिवर्तनों के साथ अपनाई जाती है।

संदर्भ

1. अनु० 112, 113, 265 और नियम 204 संविधान में "बजट" शब्द का

प्रयोग नहीं किया गया है। यह "वार्षिक वित्तीय विवरण" का लोक प्रिय नाम है।

2. अनु० 266 इसके अतिरिक्त एक आकस्मिकता निधि भी होती है जो राष्ट्रपति द्वारा प्राधिकृत किये जाने तक अविलम्बनीय और अप्रत्याशित व्यय की पूर्ति के लिये राष्ट्रपति के पास रहती है। (अनु० 267)
3. अनु० 113
4. अनु० 114(1)
5. नियम 219
6. नियम 205
7. नियम 207
8. नियम 209
9. नियम 362
10. नियम 208
11. नियम 218
12. नियम 219(1)
13. नियम 72(द्वितीय परन्तुक)
14. नियम 219(5)
15. देखिये करों का अस्थाई संग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1964
16. अनु० 116(1)(क) और (ख)
17. अनु० 115
18. नियम 216
19. अनु० 116

□□

10

संकल्प, प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण सूचनायें और अल्पकालीन चर्चायें

सदन में लोक महत्त्व के मामले उठाने की प्रक्रियायें, अविश्वास और निन्दा प्रस्ताव सम्बन्धी प्रक्रियायें

"प्रश्न काल" (Question hour) *"शून्य काल"* (Zero hour) और "आधे घण्टे की चर्चा" (Half-an-hour Discussion) के अलावा अविलम्बनीय लोक महत्त्व के मामले उठाने के लिए संसद् सदस्य को अनेक अतिरिक्त प्रक्रियागत उपाय उपलब्ध हैं। प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए एक निश्चित अवधि दरकार होती है। "शून्य काल" जैसा पहले तो नियमों में कुछ होती नहीं और फिर इस के दौरान एक ही अवसर पर अनेक सदस्यों के बोलने से मामले का शोर में ओझल हो जाने की अधिक सम्भावना रहती है। किसी अप्रत्याशित रूप से उत्पन्न समस्या की ओर सरकार का तुरन्त ध्यान आकर्षित करने के लिए संसद सदस्य के पास निम्नलिखित अन्य उपाय उपलब्ध हैं यथा संकल्प (रिजोल्यूशन), प्रस्ताव (मोशन), ध्यानाकर्षण सूचनायें (कालिंग एटेन्शन नोटिसिज) स्थगन प्रस्ताव (एडजार्नमेंट मोशन), अल्पकालीन चर्चायें (शार्ट ड्यूरेशन डिस्कशन) और नियम 377 के अधीन उल्लेख। उक्त उपायों के प्रयोग के लिए लोक सभा के प्रक्रिया नियमों में व्यवस्था की गई है। राज्य सभा में भी ऐसी ही व्यवस्था है सिवाय इसके कि राज्य सभा में स्थगन प्रस्ताव नहीं रखे जा सकते क्योंकि उनमें सरकार के प्रति निन्दा का तत्त्व होता है। नियम 377 के स्थान पर राज्य सभा में विशेष उल्लेख की व्यवस्था है।

> "कि इस बात से चिन्तित होते हुए कि विभिन्न क्षेत्रो मे विकास कार्य क्रियान्वयन मे प्रशासन विलम्ब के कारण राष्ट्र आकाक्षाओ के अनुकूल आगे नही बढ रहा है, यह सभा सरकार से सिफारिश करती है कि वह सभी स्तरो पर विभिन्न विकास कार्यों की प्रगति पर बराबर निगरानी रखने, प्रगति मे बाधक तत्वो का पता लगाने और जहा कोई परियोजनाए रुकी हुई हो और उनमे विलम्ब हो रहा हो वहा तुरन्त उपचारात्मक उपायो का सुझाव देने के लिए एक राष्ट्रीय साविधिक निगरानी निकाय की स्थापना करे।"

इसी सदस्य की निम्नलिखित सूचना 13 अगस्त, 1982 को सकल्प (Resolution) के रूप मे गृहीत हुई थी और पेश की गई थी

> "सरकार के सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम को शीघ्र कार्यरूप देने की महत्वपूर्ण आवश्यकता की दृष्टि से यह सभा सिफारिश करती है कि सभी स्तरो पर विभिन्न विकास कार्यों की प्रगति पर बराबर निगरानी रखने, प्रगति मे बाधक तत्वो का पता लगाने और उन्हे शीघ्र कार्यरूप देने के लिए तुरन्त उपचारात्मक उपायो का सुझाव देने के लिए सरकार के अधीन एक निगरानी निकाय की स्थापना की जाये।"

सकल्प मूल प्रस्तावो की श्रेणी मे आते है अर्थात् प्रत्येक सकल्प एक विशिष्ट प्रकार का प्रस्ताव होता है। जबकि सब प्रस्ताव मूल प्रस्ताव नही होते। सब सकल्पो पर सदन मे मतदान होता है। दूसरी ओर सब प्रस्तावो को मतदान के लिए सदन मे रखा जाना अनिवार्य नही होता है। मूल प्रस्ताव होने के कारण किसी सकल्प पर स्थानापन्न प्रस्ताव पेश नही किया जाता जबकि मूल प्रस्तावो से भिन्न प्रस्तावो पर स्थानापन्न प्रस्ताव पेश किए जा सकते हैं।

विभिन्न प्रकार के सकल्प :

सकल्पो को इन श्रेणियो मे बाटा जा सकता है। गैर सरकारी सदस्यो के सकल्प, सरकारी सकल्प, और साविधिक सकल्प।

(क) गैर-सरकारी सदस्यो के सकल्प (Private Membess Resolution) मन्त्रिमण्डल के सदस्यो को छोड़कर शेष सदस्य गैर-सरकारी सदस्य कहलाते है। उनके द्वारा पेश किए जाने वाले सकल्पो को गैर-सरकारी सदस्यो के सकल्प कहा जाता है। इनसे अनिश्चित प्रस्तावो या ऐसे प्रस्तावो के बारे मे जिन पर जनमत अभी बनना हो, सदन के विचार जानने का सरकार को अवसर मिलता है।

लोक सभा मे हर दूसरे शुक्रवार की बैठक के अन्तिम ढाई घण्टे गैर-सरकारी सदस्यो के सकल्पो पर चर्चा के लिए नियत किये जाते है। गैर सरकारी सदस्यो को, जो सकल्प प्रस्तुत करना चाहते हो प्रथमतया बैलट की तारीख से कम से कम दो

दिन पहले महासचिव को इस आशय की केवल लिखित सूचना ही देनी होती है। जिन सदस्यों की ऐसी सूचनाएं प्राप्त होती हैं उनके नामों का बैलट किया जाता है। लोक सभा में तीन सदस्यों के नामों और राज्य सभा में पांच सदस्यों के नामों का बैलट द्वारा निर्धारण होता है ताकि उनमें प्रत्येक सदस्य संकल्प की सूचना दे सके।[5] यदि ये संकल्प स्वीकार कर लिये जायें, तो उन्हें गैर-सरकारी सदस्यों की कार्य-सूची में रख लिया जाता है। पीठासीन अधिकारी द्वारा पुकारे जाने पर सम्बन्धित सदस्य संकल्प प्रस्तुत करता है और अपना भाषण देता है।[6] तत्पश्चात् अन्य सदस्य और सम्बन्धित मन्त्री भी बोल सकते हैं। संकल्प प्रस्तुत किए जाने के बाद कोई सदस्य, संकल्पों से सम्बन्धित नियमों के अधीन रहते हुए संकल्प में संशोधन प्रस्तुत कर सकता है।[7] गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर चर्चा करने के लिए समय का आवंटन गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति करती है। सामान्यतया किसी गैर-सरकारी सदस्य के संकल्प पर चर्चा के लिए दो घण्टे का का समय आवंटित किया जाता है। चर्चा के समापन के पश्चात् संकल्प के प्रस्तावक को उत्तर देने का अधिकार होता है।

(ख) सरकारी संकल्प (Government Resolution) प्रभारी मन्त्री द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में उसकी ओर से किसी अन्य मन्त्री द्वारा पेश किया जाने वाला संकल्प सरकारी संकल्प कहा जाता है। यद्यपि सरकारी संकल्पों के लिए सूचना देने की कोई अवधि निर्धारित नहीं की गयी है वास्तव में मन्त्री उस तिथि से कई दिन पहले ऐसे संकल्प की पूर्व सूचना देते हैं जिस दिन उन्हें कार्य-सूची में रखा जाना हो। कोई संकल्प पेश करने की अपनी इच्छा की सूचना मन्त्री को भी महासचिव को देनी होती है। सरकारी संकल्पों पर भी ग्राह्यता सम्बन्धी वही नियम लागू होते हैं जो कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्पों पर। किसी सरकारी संकल्प पर चर्चा के लिए समय सदन द्वारा कार्य-मन्त्रणा समिति की सिफारिश पर नियत किया जाता है।[8] उसमें संशोधन करने तथा उनके निपटारे और संकल्प के निपटारे के सम्बन्ध में वही प्रक्रिया है जो कि गैर-सरकारी सदस्यों के संकल्प के सम्बन्ध में है।

सरकारी संकल्पों का उद्देश्य सामान्यतया ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों, अभिसमयों या करारों पर सदन का अनुमोदन लेना होता है जो सरकार द्वारा सम्पन्न किए गए हों या सरकार की कुछ नीतियों की घोषणा करना या उनका अनुमोदन, या कुछ समितियों की सिफारिशों का अनुमोदन करना होता है।

(ग) सांविधिक संकल्प (Constitutional Resolution) संविधान या संसद् के किसी अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत रखे गये संकल्पों को सांविधिक संकल्प कहा जाता है।[9] ऐसे संकल्प किसी मन्त्री द्वारा या किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पेश किए जा सकते हैं। लेकिन कुछ अधिनियमों में स्पष्ट रूप से कहा गया होता है

कि सरकार निर्दिष्ट समय के भीतर ऐसे संकल्प अवश्य लाये। किसी सांविधिक संकल्प को रखने की सूचना की कोई विशेष अवधि निर्धारित नहीं होती, जब तक कि इस प्रकार की अवधि का उपबन्ध संविधान के किसी विशेष अनुच्छेद या उस अधिनियम की किसी धारा में न किया गया हो, जिसके अन्तर्गत इसको रखा जा रहा हो।[10] गृहीत किए जाने के पश्चात् सांविधिक संकल्प चर्चा के लिए समय सरकार द्वारा सरकारी कार्य के लिए नियत समय में से दिया जाता है जो सदन द्वारा कार्य-मन्त्रणा समिति की सलाह पर निश्चित किया जाता है।

गैर-सरकारी सदस्य का संकल्प, सरकारी संकल्प या सांविधिक संकल्प, सदन द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् सभी की एक प्रति महासचिव द्वारा सबधित मन्त्री को प्रेषित की जाती है।

सदन द्वारा स्वीकृत संकल्पों या प्रस्तावों का प्रभाव यदि कोई प्रस्ताव अथवा संकल्प सदन द्वारा स्वीकृत हो जाता है और सदन इसके बारे में अपनी राय की घोषणा करता है तो उससे सदन का आदेश अभिप्रेत होता है। प्रभाव की दृष्टि से संसद् द्वारा स्वीकृत संकल्प इन श्रेणियों में आते हैं

(एक) ऐसे संकल्प, जो सभा द्वारा व्यक्त की गयी राय मात्र है। उनका उद्देश्य सभा की राय जानना होता है। अतः सरकार ऐसे संकल्पों में व्यक्त किए गए विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये बाध्य नहीं होती है। यह बात पूर्ण रूप से सरकार के विवेकाधिकार पर निर्भर करती है कि ऐसे संकल्प में जिस कार्यवाही का सुझाव दिया गया है, वह उसे करे या नहीं।

(दो) ऐसे संकल्प, जिनका सांविधिक प्रभाव है, यदि इस प्रकार के संकल्प स्वीकार हो जाए, तो सरकार उनके द्वारा बाध्य हो जाती है और ऐसे संकल्प में वही शक्ति होती है जो कि किसी कानून में। संविधान में उपबन्ध है कि इस प्रकार के संकल्प राष्ट्रपति पर अभियोग (Impeachment) चलाने, उपराष्ट्रपति, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और राज्य सभा के उप-सभापति को हटाने, राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश Ordinance) का निरनुमोदन करने, राष्ट्र के हित में राज्य-सूची में सम्मिलित किसी विषय पर विधान बनाने की शक्ति संसद् को देने, अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन करने, और आपात स्थिति की उद्घोषणा को स्वीकृत करने जैसे प्रयोजनों के लिए पेश किए जाते हैं।[11]

(तीन) ऐसे संकल्प जो कि सभा अपनी कार्यवाही पर नियन्त्रण के संदर्भ में पास करती है। इन संकल्पों के स्वीकृत हो जाने पर उनमें वही बल

होता है जो कि कानून में और किसी भी न्यायालय में उसकी वैधता पर आपत्ति नहीं की जा सकती है।

संकल्प, चूंकि, राय प्रकट करने या सिफारिश करने के रूप में हो सकता है, अथवा ऐसे रूप में हो सकता है जिससे द्वारा सभा सरकार के किसी कृत्य या नीति का अनुमोदन या निरनुमोदन करती है। यदि विपक्ष सरकार के किसी कार्य या नीति के निरनुमोदन कराने में सफल हो जाती है तो क्या उस संकल्प को सरकार की निन्दा माना जाना चाहिए और ऐसी स्थिति में क्या सरकार को पद त्याग कर देना चाहिए ? इस संबंध में कोई लिखित नियम नहीं है। केवल ऐसे मामले में जो महत्वपूर्ण मामला समझा जाता हो अथवा विपक्ष द्वारा सरकार के विरुद्ध प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर सरकार से पद त्याग करने की या सदन को भंग करने का परामर्श देने की आशा की जाती है।

प्रस्ताव (Motion)

सदन का एक मुख्य कर्त्तव्य यह होता है कि वह विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में अपनी इच्छा का पता लगाये। चूंकि लोक सभा की सदस्य संख्या काफी अधिक है, अतः सदन की इच्छा जानने को सुविधाजनक बनाने और सदन द्वारा प्रत्येक निर्णय के लिये किसी सदस्य को प्रस्ताव के रूप में कोई सुझाव सदन के समक्ष रखना होता है। यदि सदन सदस्य द्वारा रखे गये प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है तो वह समूचे सदन की राय या इच्छा बन जाती है। सच तो यह है कि सारी संसदीय कार्यवाही का आधार प्रस्ताव ही होता है। व्यापक अर्थों में "प्रस्ताव" का अर्थ कोई भी ऐसी प्रस्थापना हो सकता है जो सभा का निर्णय जानने के लिए सदन के सामने रखी जाये।[32]

प्रस्ताव पर वाद-विवाद के निम्नलिखित प्रक्रम होते हैं—

(क) प्रस्ताव का रखा जाना,

(ख) अध्यक्ष/सभापति द्वारा प्रश्न प्रस्तुत करना,

(ग) वाद-विवाद या चर्चा जहां अनुज्ञेय हो, और,

(घ) सदन की स्वीकृति या फैसला।

प्रस्ताव का प्रस्तावक उसे उस रूप में पेश करता है जिसमें कि वह चाहता है कि अन्ततोगत्वा सदन उसे पास कर दे। परन्तु यह सदन पर निर्भर करता है कि वह उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे या उसे पूर्णतया स्वीकार कर दे या यदि कोई विशेष संशोधन रखे गये हों तो संशोधन सहित उसे स्वीकार कर दे या इसका अभिप्राय यह है कि जो सदस्य यह चाहते हैं कि वह प्रस्ताव उससे भिन्न रूप में पास हो, जिसमें उसे रखा गया है, उन्हें मूल प्रस्ताव के पीठासीन अधिकारी द्वारा प्रस्तावित किए जाने के बाद उसमें संशोधन या स्थानापन्न प्रस्ताव रखने पड़ते हैं।

सरकारी एवं गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए प्रस्ताव पेश किए जाते हैं। जहां सरकारी सदस्य (मन्त्री) सरकार की किसी नीति या कार्यवाही के लिए सदन का अनुमोदन प्राप्त करने हेतु प्रस्ताव रखते हैं वहां गैर-सरकारी सदस्य मामले पर सरकार की राय या विचार जानने के लिए प्रस्ताव पेश करते हैं। सब प्रस्तावों को, निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) मूल प्रस्ताव (Substantive Motion),

(ख) स्थानापन्न प्रस्ताव (Substitute Motion), और

(ग) सहायक सबसिडियरी) प्रस्ताव।[13] (Subsidiary Motion)

मूल प्रस्ताव (सबस्टेंटिव मोशन) मूल प्रस्ताव अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र प्रस्ताव होता है, जो सदन के अनुमोदन के लिए उसके सामने रखा जाता है और उसका प्रारूप इस ढंग से तैयार किया जाता है कि वह सदन निर्णय की अभिव्यक्ति कर सके।[14] यह प्रस्ताव न तो किसी अन्य प्रस्ताव पर निर्भर करता है और न ही किसी अन्य प्रस्ताव से उत्पन्न होता है। अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति तथा उप सभापति के चुनाव सम्बन्धी प्रस्ताव, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद का प्रस्ताव अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर स्थगन प्रस्ताव, संकल्प, सामान्य लोकहित के विषय पर चर्चा उठाने के प्रस्ताव, मन्त्रीपरिषद में अविश्वास का प्रस्ताव, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा राज्य सभा के सभापति या उपसभापति को पदच्युत करने के संकल्प और ऐसे सदस्य का स्थान रिक्त करने का प्रस्ताव, जिसकी छुट्टी सदन ने मंजूर न की हो, मूल प्रस्तावों के उदाहरण हैं।[15] इसके अतिरिक्त ऊंचे पदों पर आसीन व्यक्तियों पर महाभियोग चलाने का उपबंध है जो उचित शब्दों में बनाए गए मूल प्रस्ताव द्वारा ही चलाया जा सकता है।[16] मूल प्रस्ताव के प्रस्तावक को वाद-विवाद का उत्तर देने का अधिकार होता है। सब संकल्प मूल प्रस्ताव होते हैं।

स्थानापन्न प्रस्ताव (सबस्टीट्यूट मोशन) - जो प्रस्ताव किसी नीति या स्थिति या वक्तव्य या किसी अन्य विषय पर विचार करने के मूल प्रस्ताव के स्थान पर रखने के लिए प्रस्तुत किये गये हों, स्थानापन्न प्रस्ताव कहलाते हैं।[17] किसी मूल प्रस्ताव पर चर्चा प्रारम्भ होने से पहले कोई सदस्य स्थानापन्न प्रस्ताव रख सकता है जो कि मूल प्रस्ताव के विषय पर हो परन्तु इस ढंग से लिखा जा सकता है कि उसमें सदन की कोई राय व्यक्त होती हो। स्थानापन्न प्रस्ताव पर मूल प्रस्ताव के साथ-साथ विचार किया जाता है। वाद-विवाद के पश्चात् केवल स्थानापन्न प्रस्ताव पर ही सभा का मत लिया जाता है।[18] स्वीकृत हो जाने पर वह मूल प्रस्ताव का स्थान ले लेता है जिसे तब मतदान के लिए नहीं रखा जाता, क्योंकि जब संशोधन स्वीकृत हो जाए तो मूल प्रश्न को संशोधित रूप में मतदान के लिए रखा जाता है।

सहायक प्रस्ताव (सबसीडियरी मोशन):

यह प्रस्ताव अन्य प्रस्तावों पर आश्रित या उनसे संबंधित होते हैं या सदन की किसी कार्यवाही से उत्पन्न होते हैं। अपने आप में उनका कोई मतलब नहीं होता है और वे मूल प्रस्ताव या सदन की कार्यवाही का उल्लेख किये बिना सदन के निर्णय को अभिव्यक्ति नहीं कर सकते। सहायक प्रस्तावों को तीन श्रेणियों में बांटा जाता है।

(क) आनुषंगिक प्रस्ताव (एन्सीलरी मोशन),

(ख) प्रतिस्थापक प्रस्ताव (सुपरसीडिंग मोशन), और,

(ग) संशोधन (एमेन्डमेन्टस)[19]

आनुषंगिक प्रस्ताव (Ancillary Motion) वे प्रस्ताव हैं, जिन्हें सदन की प्रथा के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कार्य को आगे चलाने का नियमित उपाय माना जाता है अर्थात् ये वे प्रस्ताव हैं जो किसी विधेयक के विभिन्न प्रक्रमों के संबंध में रखे जाते हैं जैसे कि "विधेयक पर विचार किया जाये" या "विधेयक को किसी प्रवर या संयुक्त समिति को सौंपा जाये" या "कि विधेयक को पास किया जाये।"

प्रतिस्थापक प्रस्ताव (Superceding Motion) वे प्रस्ताव हैं जो यद्यपि अपने आप में स्वतंत्र होते हैं, परन्तु वे किसी अन्य प्रस्ताव पर वाद-विवाद के दौरान रखे जाते हैं और इनका उद्देश्य उस प्रस्ताव का स्थान लेना होता है। ऐसे प्रस्तावों को किसी भी सदस्य द्वारा रखा जा सकता है। प्रस्ताव के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि "किसी विधेयक (Bill) को प्रवर या संयुक्त समिति (Select-Joint Committee) को पुनः सौंपा जाये" या "उस पर और राय जानने के लिए उसे फिर से परिचालित किया जाये" या "विधेयक पर वाद-विवाद स्थगित किया जाये।" इस प्रकार के प्रस्ताव विलम्बकारी प्रस्ताव होते हैं।

संशोधन किसी अन्य प्रस्ताव पर वाद-विवाद के दौरान रखा जाने वाला सहायक प्रस्ताव है जिसके माध्यम से मुख्य प्रस्ताव के रखे जाने और उस पर निर्णय होने के बीच वाद-विवाद और निर्णय का एक क्रम प्रारम्भ हो जाता है। उसका उद्देश्य या तो किसी प्रस्ताव का रूप भेद करना या मूल प्रश्न के विकल्प के रूप में कोई नया प्रस्ताव सदन के समक्ष पेश करना होता है। संशोधन विधेयक, संकल्प या प्रस्ताव किसी खण्ड के बारे में हो सकता है या संकल्प या प्रस्ताव के बारे में हो सकता है। यदि कोई संशोधन स्वीकार हो जाता है तो मूल प्रस्ताव को संशोधित रूप में सदन के समक्ष मतदान के लिए रखा जाता है।

किसी अन्य सूचना की तरह प्रस्ताव की सूचना लिखित रूप में महासचिव को दी जाती है।[20] प्रस्तावों की सूचना के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं है। यह सूचना किसी सरकारी सदस्य (मन्त्री) द्वारा या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा दी जा सकती है। पीठासीन अधिकारी किसी प्रस्ताव को गृहीत कर सकता है या रद्द

कर सकता है या उसके लिए आंशिक रूप में अनुमति दे सकता है।[21] इसके अतिरिक्त प्रस्ताव की विषय-वस्तु में, अन्य बातों के लिए साथ-साथ, किसी एक ही निश्चित प्रश्न को उठाया जाना चाहिए, उसमें व्यंग्यात्मक पद, लांछन या मानहानिकारक कथन नहीं होने चाहिए और उसके माध्यम से कोई विशेषाधिकार का प्रश्न या किसी ऐसे विषय से संबंधित प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए जो भारत के किसी भाग में क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय के न्याय निर्णय के अधीन हो।[22]

अनियत दिन वाले प्रस्ताव (No-day-yet Named Motions)

यदि अध्यक्ष किसी प्रस्ताव की सूचना स्वीकार कर लेता है और उस पर विचार के लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की जाती तो, उसे "अनियत दिन वाला प्रस्ताव कहा जाता है। ऐसे प्रस्तावों की सभी सूचनायें सप्ताह में एक बार कार्य मंत्रणा समिति के समक्ष रखी जाती है जो उनके विषय की अविलम्बनीयता और महत्त्व के आधार पर सदन में चर्चा के लिए प्रस्तावों का चयन करती है और इस हेतु समय भी नियत करती है।[23]

प्रस्ताव कैसे पेश किया जाता है :

जिस सदस्य के नाम में प्रस्ताव कार्य-सूची में रखा गया हो, प्रस्ताव के लिए नियत दिन अध्यक्ष द्वारा पुकारे जाने पर वह विधिवत अपना प्रस्ताव रखता है और अपना भाषण देता है। उसके बाद अध्यक्ष प्रस्ताव को सभा के सामने रखता है। तत्पश्चात्, सदस्य संशोधन या स्थानापन्न प्रस्ताव रखते है और इस विषय पर चर्चा होती है। जब सदस्य और सम्बद्ध मन्त्री वाद-विवाद में भाग ले चुकते है, तो उसका उत्तर देने के लिए प्रस्ताव का प्रस्तावक सदस्य उस पर बोल सकता है। संशोधन तथा स्थानापन्न प्रस्ताव, यदि कोई हो, सभा के मतदान के लिए रखा जाता है। परन्तु नियम 342 के अधीन यह प्रस्ताव कि किसी नीति या स्थिति या वक्तव्य या किसी अन्य मामले पर विचार किया जाये, सभा के मत के लिये नहीं रखा जाता। यदि प्रस्ताव सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो उसकी एक प्रति उचित कार्यवाही के लिए सम्बद्ध मन्त्री को भेज दी जाती है।

प्रस्तावों के सम्बन्ध में राज्य सभा में भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। नियत दिन या नियत दिनों के अंतिम दिन, जैसी भी स्थिति हो, सभापति मूल प्रश्न पर सदन के फैसले के लिए तुरन्त प्रत्येक आवश्यक प्रश्न को मतदान के लिए रखता है। प्रस्ताव पेश करने वाले सदस्य को उत्तर देने का अधिकार होता है। ऐसे प्रस्ताव पर संशोधन भी पेश किए जा सकते हैं।[24]

स्थगन प्रस्ताव : (Adjournment Motion,

सामान्यतया, अध्यक्ष की अनुमति के बिना किसी बैठक में कोई ऐसा कार्य नहीं किया जाता जो उस दिन की कार्य-सूची में सम्मिलित न हो।[25] तथापि

अविलम्बनीय लोक महत्त्व (urgent Public Importance) के किसी निश्चित मामले पर चर्चा करने के लिए अध्यक्ष की सहमति से सभा का सामान्य कार्य स्थगित करने का प्रस्ताव पेश किया जा सकता है।[26]

स्थगन प्रस्ताव पेश करने का मुख्य उद्देश्य हाल के किसी ऐसे अविलम्बनीय लोक महत्त्व के मामले की ओर, जिसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं और जिनके बारे में समुचित सूचना सहित प्रस्ताव या संकल्प देने में बहुत विलम्ब हो सकता है, सभा का ध्यान आकर्षित करना है। उठाया जाने वाला मामला इतना गम्भीर होना चाहिए, जिसका समूचे देश पर और उसकी सुरक्षा पर कुप्रभाव पड़ता हो तथा सभा के लिए अपने सामान्य कार्य को रोक कर उस पर तुरन्त विचार करना आवश्यक हो गया हो। चूंकि स्थगन प्रस्ताव एक ऐसी असाधारण प्रक्रिया है जिसके गृहीत होने पर "अविलम्बनीय लोक महत्त्व के किसी निश्चित मामले" पर चर्चा करने के लिए सभा का सामान्य कार्य रोक दिया जाता है। स्थगन प्रस्ताव के आवश्यक तत्त्व इस प्रकार हैं उठाया गया मामला—

(क) निश्चित (Specific) होना चाहिए,

(ख) उसका आधार तथ्यात्मक (Factual) होना चाहिए,

(ग) अविलम्बनीय (urgent) होना चाहिए, और

(घ) लोक महत्त्व (Public Importance) का होना चाहिए।

इस प्रकार देश में राजनीतिक स्थिति जैसा कोई सामान्य विषय, मध्य वर्ग की बेकारी, अराजकता, मिलों का बन्द हो जाना सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति इत्यादि, स्थगन प्रस्ताव के लिए उचित विषय नहीं है। हड़ताल की धमकी अथवा सेवा के अस्त-व्यस्त होने की सम्भावना अथवा ऐसी स्थिति के बारे में सूचना जो वास्तव में पैदा नहीं हुई है, ऐसे प्रस्ताव के लिए उचित विषय नहीं है। इसमें विशेषाधिकार का कोई प्रश्न, न्यायालय में विचाराधीन कोई मामला, किसी विशिष्ट मूल प्रस्ताव (Substantive motion) के माध्यम से ही उठाया जा सकने वाला मामला और ऐसे विषय पर भी चर्चा नहीं उठाई जानी चाहिए, जिस पर उसी सत्र में पहले चर्चा हो चुकी हो।[27] इसका सम्बन्ध ऐसे मामले से अवश्य होना चाहिए जिसके लिए भारत सरकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार हो। यद्यपि राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार में आने वाला मामला गृहीत नहीं किया जाता है, तथापि, किसी राज्य की साम्प्रदायिक घटनाओं अथवा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों पर होने वाले अत्याचार के मामले पर, जिसके साथ केन्द्रीय सरकार का भी सम्बन्ध होता है, उसके महत्त्व को देखते हुए गृहीत करने के लिए विचार किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप सातवीं लोक सभा के दौरान गृहीत कुछ विषय नीचे दिये गये हैं। इन पर चर्चा भी हुई थी

1 दिल्ली में नकली शराब पीने के कारण आठ व्यक्तियों की मृत्यु और अन्य अनेक व्यक्तियों का रोग ग्रस्त हो जाना और इससे उत्पन्न गम्भीर स्थिति।

2 कुतुबमीनार दुर्घटना जिसमें 45 लोग मारे गये।
3 सरकार की यह सुनिश्चित करने में असफलता कि स्वर्ण मंदिर आदि जैसे धार्मिक स्थानों का विधि और व्यवस्था बिगड़ने के लिए प्रयोग न किया जाये जैसा कि 25 अप्रैल, 1983 को स्वर्ण मंदिर के निकट भारतीय पुलिस सेवा के एक वरिष्ठ अधिकारी की हत्या किए जाने से स्पष्ट है।
4 पंजाब में उग्रवादियों की गतिविधियों से उत्पन्न गम्भीर स्थिति और इस मामले को हल करने में सरकार की विफलता।

जो सदस्य स्थगन प्रस्ताव (Adjournment Motion) पेश करना चाहता हो, उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह सूचना उस दिन, जिस दिन कि प्रस्ताव करने का विचार हो, 10.00 बजे म.पू. तक महासचिव को दे और उसकी प्रतियां अध्यक्ष, संबंधित मंत्री और संसदीय कार्य मंत्री को भेजे[28]। जब अध्यक्ष प्रथम दृष्टि में इस बात से सन्तुष्ट हो जाए कि चर्चा के लिए प्रस्तावित मामला नियमों के अनुकूल है, तो वह प्रस्ताव पेश करने की सम्मति दे सकता है और उपयुक्त समय पर अर्थात् प्रश्न काल के पश्चात् अध्यक्ष संबंधित सदस्य को कह सकता है कि वह स्थगन प्रस्ताव को पेश करने के लिए सभा की अनुमति मांगे। यदि अनुमति दिये जाने पर आपत्ति की जाती है, तो अध्यक्ष अनुमति दिये जाने के पक्षधर सदस्यों को अपने स्थानों पर खड़ा होने के लिए कहेगा और यदि तदनुसार कम से कम पच्चास सदस्य खड़े हो जाते हैं, तो वह घोषणा करेगा कि अनुमति दी जाती है।[29]

सभा द्वारा किसी स्थगन प्रस्ताव को पेश किए जाने के लिए सभा की अनुमति दिये जाने के बाद प्रस्ताव पर चर्चा सामान्यतया 16.00 बजे म. पू. पर आरम्भ होती है और ढाई घंटे तक अर्थात् 18.30 बजे म.पू. तक चलती है।[30] प्रस्तावक द्वारा यह प्रस्ताव "कि सभा अब स्थगित हो" पेश किये जाने के साथ ही चर्चा प्रारम्भ हो जाती है। प्रस्ताव पर प्रस्तावक के बोलने चुकने के बाद अन्य सदस्य बोलते हैं और उनके बाद मंत्री बोलता है और अन्त में प्रस्तावक को उत्तर देने का अधिकार होता है। तत्पश्चात् स्थगन प्रस्ताव सभा के सामने मतदान के लिए रखा जाता है। जिस समय स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा प्रारम्भ होती है, उस समय से लेकर उसका निर्णय होने तक अध्यक्ष को सभा को स्थगित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। उस समय के बीच सभा के स्थगन के संबंध में निर्णय करने की शक्ति सभा के हाथ में है।

यदि प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है तो स्थगन प्रस्ताव के कारण जिस कार्य के निपटान में व्यवधान आया था, उस पर चर्चा पुन: शुरू की जाती है। यद्यपि स्थगन प्रस्ताव पास हो जाने से सरकार अपदस्थ नहीं होती तथापि उसमें यह आभास हो जाता है कि जो सरकार स्थगन प्रस्ताव पर प्रतिकूल मत को रोकने में विफल रही है वह मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers) में "अविश्वास के

प्रस्ताव" (No-Confidence Motion) के परिणाम से बच नहीं सकेगी। लोक सभा की कार्यावधि के दौरान प्राप्त हुई स्थगन प्रस्तावों की 5762 सूचनाओं में से केवल 149 सूचनायें सदन के समक्ष लायी गयी और अन्त में उनमें से केवल 24 सूचनायें गृहीत हो सकी और उन पर चर्चा हो सकी और उनमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ। आठवीं लोकसभा में 1801 सूचनायें मिलीं, 80 सदन के सामने उठाये जाने के लिये अध्यक्ष की अनुमति पाई, 4 पर चर्चा हुई किन्तु कोई भी प्रस्ताव स्वीकारा नहीं गया।

ध्यान आकर्षण सूचनाएं (Calling Attention Notices)

ध्यान आकर्षण सूचनाओं संबंधी नियम। जनवरी, 1954 को प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में रखा गया था। उसमें पहले किसी गैर सरकारी सदस्य के लिए कोई ऐसी प्रक्रिया की कमी महसूस की जा रही थी जिसके माध्यम से वह अन्य सूचना पर कोई महत्वपूर्ण मामला उठा सके। ऐसे प्रयोजनों के लिए बहुधा स्थगन प्रस्ताव की प्रक्रिया का सहारा लिया जाता था। क्योंकि स्थगन प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव (Censure Motion) जैसा होता है और उसका क्षेत्र बहुत सीमित होता है इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि किसी ऐसी प्रक्रिया का विकास किया जाए जिसके माध्यम से सदस्यों को सभा का ध्यान महत्वपूर्ण मामलों की ओर दिलाने का अवसर मिल सके।

ध्यान दिलाने की सूचनाओं की धारणा भारतीय उद्गम की है। यह शायद संसदीय प्रक्रिया में भारत की नयी देन है। इसमें प्रश्न पूछने के साथ-साथ अनुपूरक प्रश्न (Supplementary Questions) और संक्षेप में टिप्पणी करना भी शामिल है। जिसमें सभी दृष्टिकोण ठीक-ठीक और संक्षेप में रखे जाते हैं और सरकार को अपना पक्ष बताने का समुचित अवसर प्राप्त होता है। कई बार इस प्रक्रिया के माध्यम से सदस्यों को किसी महत्वपूर्ण विषय के सबंध में सरकार की पराक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आलोचना करने का अवसर प्राप्त होता है। वे इसके माध्यम से किसी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में सरकार की असफलता या अपर्याप्त कार्यवाही पर भी प्रकाश डाल सकते हैं।

कोई सदस्य अध्यक्ष/सभापति की पूर्व अनुज्ञा से अविलम्बनीय लोक महत्व (Urgent Public Importance) के किसी विषय की ओर किसी मंत्री का ध्यान आकर्षित कर सकता है और उससे प्रार्थना कर सकता है कि वह उस विषय के संबंध में वक्तव्य (Statement) दे।[31] मंत्री एक संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या बाद में किसी समय अथवा किसी दिन वक्तव्य देने का समय मांग सकता है।

सामान्यतया ध्यान आकर्षण सूचनाएं (Call attention Notices) दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित समाचारों पर आधारित होती हैं। कभी-कभी वे किसी सदस्य की निजी जानकारी के आधार पर या उसके अपने निर्वाचकों से प्राप्त हुए

पत्र-व्यवहार के ग्राधार पर भी दी जा सकती है।

ध्यान ग्राकर्षण सूचनाएं सदस्यों द्वारा लिखित रूप में 10.00 बजे म.पू. तक देनी होती है। साधारणत किसी सदस्य को किसी एक बैठक के लिए दो से अधिक सूचनाएं नहीं देनी चाहियें। एक ही विषय पर एक से अधिक सदस्यों द्वारा सूचनाएं दी जा सकती है, परन्तु कार्यसूची (List of Business) में अधिक से अधिक पांच सदस्यों के नाम दिखाये जाते है। एक सप्ताह के दौरान प्राप्त सभी ध्यान ग्राकर्षण सूचनायें बनी रहती है और दिन प्रतिदिन अध्यक्ष के समक्ष रखी जाती है। अध्यक्ष इन सूचनाग्रो पर विचार करता है तथा किसी ऐसे मामले को जोकि को उसकी राय में अधिक महत्त्वपूर्ण और अविलम्बनीय है, अगले दिन सदन की बैठक में संबंधित मंत्री द्वारा वक्तव्य देने के लिए चयन करता है। साधारणतया, एक दिन में केवल एक ही मामला लिया जाता है। तथापि, कतिपय मामलों में अध्यक्ष द्वारा एक बैठक के लिए दो ऐसे मामले चुने जा सकते है। परन्तु यदि अध्यक्ष का विचार हो कि मामला इतना अविलम्बनीय है कि मंत्री द्वारा उसी दिन वक्तव्य दिया जाना चाहिए तो वह, अपने विवेकाधिकार (Discretion) से, ध्यान ग्राकर्षण को उसी दिन लिए जाने की अनुमति दे सकता है जिस दिन उसकी सूचना दी गई हो। ध्यान ग्राकर्षित किये जाने पर यदि मंत्री के पास सभी तथ्य हो तो वह वक्तव्य दे सकता है। जो जानकारी मांगी गई हो, यदि वह उस समय मंत्री के पास न हो, तो वह बाद के किसी समय या तिथि तक समय मांग सकता है जिस से कि वह जानकारी इकट्ठी करके वक्तव्य दे सके।

सामान्यतया सभा की एक बैठक में ध्यान ग्राकर्षण की सूचना के माध्यम से मन्त्रियों का ध्यान ग्राकर्षित करने के लिए अविलम्बनीय लोक महत्त्व के दो से अधिक विषय नहीं उठाये जा सकते। ऐसे वक्तव्य पर, जब वह दिया जाए कोई वाद-विवाद (Debate) नहीं होता, परन्तु प्रत्येक सदस्य, जिसके नाम में कार्य-सूची में मद दिखाई गई हो, अध्यक्ष की अनुमति से स्पष्टीकरण के लिए प्रश्न पूछ सकता है। अतः ध्यान ग्राकर्षण प्रस्ताव का मुख्य प्रयोजन यह है कि किसी अविलम्बनीय स्वरूप के मामले पर संबंधित मंत्री प्राधिकृत वक्तव्य दे। इस प्रक्रिया में सरकार की निन्दा अन्तर्ग्रस्त नहीं होती क्योंकि न तो इस प्रस्ताव पर नियत रूप से चर्चा होती है और न ही मतदान होता है।

कुछ विषयों के उदाहरण जिन पर मन्त्रियों को वक्तव्य देने का कहा गया इस प्रकार हैं—भारत के किसी भाग में उपद्रव; सीमावर्ती झगड़े; रेल दुर्घटनाएं; सरकारी उपक्रमों का बन्द होना, न्यायालयों द्वारा दिये गये ऐसे फैसले जिनमें मंत्रालयों या केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को प्रभावित करने वाली टिप्पणियां की गई हों; शत्रु के विमानों द्वारा वायु-सीमा क्षेत्र का

उल्लंघन, बसतों, बन्दरगाहों, विमान कम्पनियों, रेलवे तथा अन्य सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं में हड़तालें; विदेशों में रहने वाले भारतीयों की स्थिति, गम्भीर खाद्यान्न, सूखे या बाढ़ की स्थिति; इत्यादि। ध्यान आकर्षण सूचना की ग्राह्यता की दो मुख्य कसौटियां हैं, अविलम्बनीयता और लोक महत्व। इस सूचना की ग्राह्यता का निर्णय अध्यक्ष अपने विवेकाधिकार में करता है।

ध्यानाकर्षण की प्रक्रिया में संसद् सरकार पर अंकुश लगाने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इसमें वह सरकार को सदैव सजग रख सकी है। यह एक महत्वपूर्ण मामले को उठाने, उस पर चर्चा करने और निष्कर्ष पर पहुंचने का ऐसा संक्षिप्त एवं तात्कालिक उपाय है जिसमें सूचना देने वाले सदस्यों को, दल के सचेतक (व्हिप) के बिना और किसी औपचारिक या विशिष्ट प्रस्ताव पर मत विभाजन द्वारा दुरूह निर्णय पर पहुंचे बिना समान रूप से भाग लेने का अधिकार होता है।

अल्पकालीन चर्चाएं (Short Duration Discussions)

अल्पकालीन चर्चा एक ऐसा महत्वपूर्ण संसदीय साधन सदस्यों को उपलब्ध है जिसके द्वारा वे अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। 1953 से पूर्व संकल्प अथवा प्रस्ताव के अलावा अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी मामले पर सभा में चर्चा उठाने के लिए नियमों में कोई उपबन्ध नहीं था। जब कभी सदस्य किसी अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी मामले की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे, तो वे स्थगन प्रस्तावों का सहारा लेते थे। चूंकि स्थगन प्रस्ताव में निन्दा प्रस्ताव अभिप्रेत है इसलिए नयी व्यवस्था में जब सरकार संसद् के प्रति उत्तरदायी हो गई, तब ऐसी प्रक्रिया का सहारा लेना उचित नहीं समझा गया। इसलिए मार्च, 1953 में एक परम्परा अपनाई गयी जिसके द्वारा सदस्य किसी औपचारिक प्रस्ताव अथवा उस पर मतदान के बिना अल्पकालीन चर्चाएं (Short Duration Discussion) उठा सकते थे। यह प्रक्रिया अब दोनों सदनों के प्रक्रिया नियमों का अंग बन चुकी है।

अल्पकालीन चर्चा को उठाने के लिए सूचना महासचिव के नाम लिखित रूप में देनी होती है जिसमें उठाया जाने वाला विषय स्पष्ट रूप से बताना होता है। सूचना के साथ एक व्याख्यात्मक टिप्पणी (Explanatory Note) संलग्न होना चाहिए जिसमें चर्चा को उठाने के लिए कारण बताये गये हों और उन पर कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर भी होने चाहिए।[32]

अध्यक्ष/सभापति अल्पकालीन चर्चा की सूचना की ग्राह्यता का निर्णय करता है। यदि उसका समाधान हो जाये कि विषय अविलम्बनीय है और सभा में जल्दी ही उठाये जाने के लिए पर्याप्त महत्व का है और उस

पर चर्चा के लिए जल्दी कोई अवसर अन्यथा उपलब्ध नहीं है तो वह सूचना ग्रहण कर सकता है ।[33] किसी भी अल्पकालीन चर्चा की सूचना तभी गृहीत की जाएगी यदि उसमे ऐसा मामला उठाया गया हो जिसका मूलतः केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध हो, जो निराधार आरोपो पर आधारित न हो, जो काल्पनिक न हो और जो अविलम्बनीय हो । एक सूचना मे केवल एक मामला उठाया जा सकता है ।

अध्यक्ष अल्पकालीन चर्चाओं के लिये एक सप्ताह मे दो बैठकें नियत कर सकता है और ऐसी चर्चा के लिए बैठक की समाप्ति पर अथवा उसमे पूर्व अधिक से अधिक दो घंटे की अवधि की अनुमति दे सकता है ।[34] कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee) चर्चा के लिये समय नियत करती है । सामान्यतया, अल्पकालीन चर्चाएं, मंगलवार और गुरुवार के दिन की जाती हैं । राज्य सभा मे सभापति, सदन के नेता के परामर्श से, चर्चा के लिए तिथि निर्धारित कर सकता है और उसके लिए अधिक से अधिक ढाई घंटे का समय दे सकता है ।

चर्चा के लिए सूचना गृहीत किये जाने और तारीख निश्चित किये जाने के बाद उसे उस तारीख की कार्य-सूची मे प्रथम दो सदस्यो के नाम से सम्मिलित किया जाता है । उस दिन अध्यक्ष उस पहले सदस्य को, जिसके नाम से कार्य-सूची मे चर्चा दर्ज होती है, संक्षिप्त वक्तव्य देने को कहता है । किसी ऐसे सदस्य को भी जिसने अध्यक्ष को पहले सूचित किया हो, चर्चा मे भाग लेने की अनुमति दी जाती है । अन्त से मंत्री संक्षेप में उत्तर देता है । जो सदस्य चर्चा उठाता है उसे उत्तर देने का अधिकार नही होता । सभा के समक्ष कोई औपचारिक प्रस्ताव नही होता है और न ही मतदान होता है ।[35] चर्चा का प्रयोजन यह होता है कि जिन सदस्यों के पास विचाराधीन मामले के बारे मे कुछ तथ्य हों वे सदन को उन तथ्यो से अवगत करायें और मन्त्री सदन और राष्ट्र के लाभार्थ स्थिति स्पष्ट करे ।

नियम 377 के अधीन उल्लेख (Reference under Rule 377)

प्रश्न काल के तुरन्त बाद अनेक सदस्य एक साथ खड़े होकर अपना मामला उठाना चाहते हैं । जिन्हें वह अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते है और जिसके लिये प्रक्रियागत कार्यवाही करना उनके लिये विलम्बकारी होता है, इससे सदन मे कोलाहल और अव्यवस्था का वातावरण उत्पन्न हो जाता है । सदन का समय तो नष्ट होता ही है किन्तु सदस्य भी अपने मामले के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं । इस प्रकार मूल्यवान समय की हानि को देखते हुये दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारी महसूस करने लगे थे कि इस प्रथा को रोकने की आवश्यकता है । वे चाहते थे कि कोई ऐसी प्रक्रिया विकसित की जाये जिससे कि सदस्य उन मामलों को उठा सकें जो हाल ही के किसी प्रश्न, स्थगन प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव आदि का विषय न रहे हों । फलस्वरूप राज्य सभा मे "विषय उल्लेख" (Special mention) की प्रथा और लोक सभा में नियम 377 के अधीन मामलो

उठाने की प्रथा प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम 14 मई, 1900 को नियम 377 के उपबन्ध का प्रयोग किया गया जब पुलिस द्वारा एक संसद सदस्य के साथ किये गये दुर्व्यवहार संबंधी मामला उठाया गया। यह एक ऐसा मामला था जो किसी भी अन्य नियम के अधीन उठाया नहीं जा सकता था।

व्यवस्था के प्रश्नों से भिन्न मामलों का या ऐसे मामलों का जिन्हें प्रश्नों, अल्पसूचना प्रश्नों, ध्यान आकर्षण सूचनाओं, प्रस्तावों आदि से सम्बन्धित नियमों के अन्तर्गत नहीं उठाया जा सकता, नियम 377 के अन्तर्गत उठाया जा सकता है।

जो सदस्य नियम 377 के अन्तर्गत किसी मामले को उठाना चाहता हो उसे उसकी सूचना महासचिव को लिखित रूप में देनी होती है। उसका प्रस्तावित कथन साधारणतया 250 शब्दों से अधिक लम्बा नहीं होना चाहिए। कोई सूचना ग्राह्य बनाने के लिये उसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, केवल स्थानीय महत्त्व का मामला अथवा सत्र के दौरान इस नियम के अन्तर्गत सदस्य द्वारा पहले उठाये गये विषय के समान या न्यायालय के विचाराधीन मामला (Sub-judicial matters) नहीं उठाया जाना चाहिये और कोई ऐसा मामला नहीं उठाया जाना चाहिये जिसमें तर्क, अनुमान, व्यंग्योक्तियां, अभ्यारोप या मानहानिकारक कथन हों।

अध्यक्ष द्वारा यथा स्वीकृति पाठ की प्रति सम्बन्धित सदस्य को उस दिन दी जाती है, जब उसे मामला उठाने की अनुमति दी जाती है। सदस्य को अपने वक्तव्य के अनुमोदित पाठ से हटकर कुछ कहने की अनुमति नहीं होती। सामान्यतया, मन्त्री, 377 नियम के अधीन उठाये जाने वाले मामलों पर वक्तव्य नहीं देते हैं। तथापि, यदि कोई मन्त्री ऐसा करना चाहे तो वह अध्यक्ष की अनुमति से उस विषय पर वक्तव्य दे सकता है। सदस्य द्वारा नियम 377 के अधीन उठाये गये मामलों के बारे में सम्बन्धित मन्त्री सीधे सदस्य को पत्र लिखता है और उस मामले पर सरकार के दृष्टिकोण अथवा उस पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही की सूचना देता है। यह मद कार्य-सूची में सम्मिलित नहीं की जाती है।

छठी लोक सभा के चौथे अधिवेशन तक नियम 377 के अधीन मामले उठाने का प्रयोग सीमित रहा किन्तु तत्पश्चात् इसके प्रयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। यह देखने में आया है कि सदस्य लोक महत्त्व के विभिन्न मामले उठाने में इस नियम का अधिक से अधिक प्रयोग कर रहे हैं। यथा, चौथी लोक सभा की कार्यावधि में नियम 377 के अधीन केवल 36 मामले उठाने की अनुमति दी गई तथा पांचवी छठी, सातवीं और आठवीं लोक सभा की कार्यावधि में इन मामलों की संख्या बढ़कर क्रमशः 184, 829, 3134 और 3205 हो गई।

अविश्वास प्रस्ताव (Motion of No-Confidence)

मन्त्रि परिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति जिम्मेदार है। वह तब तक पदासीन रहती है जब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त हो।[20] सरकार

के लिये अपनी विधान सम्बन्धी और राजस्व सम्बन्धी प्रस्थापनाओं तथा सर्व के बारे में स्पष्ट रूप से संसद् का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक होता है और कई बार उसे संसद् के सामने अपनी नीति स्पष्ट करनी पड़ती है और उसे उचित प्रमाणित करना पड़ता है। यदि सभा स्पष्ट रूप से यह कह दे कि वह सरकार का समर्थन नहीं करना चाहती अर्थात् यदि सरकार सभा का विश्वास खो बैठे-तो सरकार को या तो पद त्याग करना पड़ता है और या सभा का विघटन करना पड़ता है। चाहे प्रधान मन्त्री सभा के विघटन की सिफारिशें करें या न करें। विरोधी पक्ष चाहे तो अविश्वास प्रस्ताव (No-Confidence motion) पर सभा में मतदान करा कर सभा की राय का पता चला सकता है।

लोक सभा के प्रति मन्त्रि-परिषद् की सामूहिक जिम्मेदारी (Collective responsibility of Council of Ministers) स्पष्ट रूप से संविधान में उपबंधित है। किसी एक मन्त्री में अविश्वास का प्रस्ताव नियमों के विरुद्ध है। क्योंकि यह उत्तरदायित्व सामूहिक होता है। नियमों के अन्तर्गत केवल सामूहिक रूप से मन्त्रि-परिषद् में विश्वास के अभाव का प्रस्ताव गृहीत किया जा सकता है और किसी मन्त्री में व्यक्तिगत रूप में विश्वास का अभाव व्यक्त करने वाला प्रस्ताव नियमानुकूल नहीं होता है।[37]

मन्त्रि परिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव (Censure motion) से बिल्कुल भिन्न है। जब कि निन्दा प्रस्ताव में वे आधार या आरोप बताये जाते हैं जिन पर वह आधारित हो, लेकिन अविश्वास प्रस्ताव में वे आधार बताने की आवश्यकता नहीं होती है। मन्त्रिपरिषद् के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पेश करने के लिये अनुमति मांगने वाले सदस्य को उस दिन की बैठक प्रारम्भ होने से पहले महासचिव को उस प्रस्ताव की लिखित सूचना देनी होती है, जो वह पेश करना चाहता हो। नियमों में ग्राह्यता की कोई शर्तें निर्धारित नहीं है। अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह निर्णय करे कि कोई प्रस्ताव नियमानुकूल है या नहीं।

यदि अध्यक्ष की यह राय हो कि कोई अविश्वास प्रस्ताव नियमानुकूल है तो वह सभा में प्रस्ताव पढ़ कर सुनाता है या सूचना देने वाला सदस्य उस प्रस्ताव को पेश करने के लिये सभा की अनुमति मांगता है। उसके बाद अध्यक्ष उन सदस्यों से, जो प्रस्ताव के पक्ष में हो, कहता है कि वे अपने अपने स्थानों पर खड़े हो जायें और यदि तदनुसार कम से कम पचास सदस्य खड़े हो जायें तो अध्यक्ष घोषणा करता है कि सभा प्रस्ताव के रखे जाने की अनुमति देती है। यदि पचास से कम सदस्य खड़े हों तो अध्यक्ष सदस्य को सूचित करता है कि उसे सभा की अनुमति नहीं है। अविश्वास प्रस्ताव सभा में रखे जाने की अनुमति मिलने के दस दिन के भीतर उस पर सभा में चर्चा होना आवश्यक है। अध्यक्ष सदन के नेता और विभिन्न विरोधी दलों तथा समूहों से परामर्श करके फैसला करता है कि प्रस्ताव पर चर्चा किस दिन हो।

चर्चा के लिये समय, सभा द्वारा कार्य मन्त्रणा समिति की सिफारिश पर नियत किया जाता है। जब सदस्य प्रस्ताव पर बोल लेते है तो प्रधानमन्त्री सरकार पर लगाये गये आरोपो का उत्तर देता है। प्रस्ताव रखने वाले सदस्य को वाद विवाद का उत्तर देने का अधिकार होता है। जब प्रस्ताव पर वाद-विवाद समाप्त हो जाये तो अध्यक्ष प्रस्ताव पर सभा का निर्णय जानने के लिये उसे तुरन्त सभा के सामने रख सकता है और सभा का *निर्णय मौखिक मत द्वारा, या विभाजन द्वारा, यदि* इसकी माग की जाये तो, जाना जाता है।[38]

सदन मे प्रस्ताव पेश करने की अनुमति मांगने वाला सदस्य अविश्वास प्रस्ताव की सूचना वापस भी ले सकता है किन्तु ऐसा वह सदन की अनुमति से ही कर सकता है। वे सदस्य जिन्होने अविश्वास प्रस्ताव की सूचना पर हस्ताक्षर कर रखे हो अपने हस्ताक्षरो सहित पत्र भेज कर भी सूचना वापस ले सकते हैं किन्तु यह कार्यवाही सदन मे अविश्वास प्रस्ताव के लिये जाने से पहले की जानी चाहिये। उस स्थिति मे सदन मे उस मद का उल्लेख ही नही किया जाता या उसे सदन के सामने पेश ही नही किया जाता।

संविधान के अधीन, चूंकि, सरकार सामूहिक रूप मे केवल प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है, अतः राज्य सभा को अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा करने की शक्ति प्राप्त नही है।

निन्दा प्रस्ताव (सेन्स्योर मोशन)

निन्दा प्रस्ताव मन्त्रिपरिषद् मे अविश्वास के प्रस्ताव से बिल्कुल भिन्न है। निन्दा प्रस्ताव मे वे आधार या आरोपो का उल्लेख किया जाता है जिन पर वह आधारित होता है जब कि अविश्वास प्रस्ताव मे वे आधार बताने की आवश्यकता नही होती है। निन्दा प्रस्ताव या सरकार की कुछ नीतियो या कार्यवाहियो के कारण उसकी निन्दा करने के स्पष्ट प्रयोजन से पेश किया जाता है। निन्दा प्रस्ताव मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध या किसी एक मन्त्री के विरुद्ध या मन्त्रियो के किसी समूह के विरुद्ध इस आधार पर रखा जा सकता है कि उन्होने अपनी नीति पर कार्य नही किया। या वे उसमे असफल रहे हैं या उनकी नीति के कारण ही ऐसा प्रस्ताव रखा जा सकता है। ऐसे प्रस्ताव स्पष्ट होने चाहिये जिसमे कि निन्दा के कारण, सक्षेप मे और ठीक-ठीक बताये गये हो। प्रस्ताव नियमानुकूल है या नही इस सम्बन्ध मे अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होता है। निन्दा प्रस्ताव रखने के लिये सदन की अनुमति आवश्यक नही होती। यह सरकार के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है कि वह उसके लिये समय निकाले और चर्चा के लिये तिथि निर्धारित करे। निन्दा प्रस्ताव रखने के बारे मे नियमो मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही है। ऐसे प्रस्ताव पर वही नियम लागू होते है जो कि सामान्य प्रस्तावो पर लागू होते है,[39] और उसे अनियत दिन वाले प्रस्तावो के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

संदर्भ

1. नियम 172
2. नियम 171
3. यह संकल्प 28. 8. 1981 को पेश किया गया था और 11. 9. 81 को सदन की अनुमति से वापस लिया गया था ।
4. यह संकल्प 31 3. 1983 को पेश किया गया था और 19. 8 83 को सदन द्वारा अस्वीकृत किया गया था ।
5. नियम 30 (4), 170, निर्देश 9
6. नियम 176
7. नियम 177 (1), निर्देश 113
8. नियम 288
9. 9 ख (1)
10. उदाहरण के लिये देखिये अनु. 61, 67, 90 और 94 । इनमें कम से कम 14 दिन की पूर्व सूचना का उपबन्ध किया गया है ।
11. अनु 61, 67, 90, 94, 123, 249 और 312
12. नियम 184 (लोक सभा) और नियम 167 (राज्य सभा)
13. निर्देश 41 (1)
14. निर्देश 41 (2) (एक)
15. नियम 7, 8, 17, 56, 184, 198, 200, 226 और 328 तथा अनु. 67, 90 (ग) और 94 (ग)
16. नियम 352 (पांच) और अनु. 61, 121, 124 (4) और (5) 148 (1) और 324 (5)
17. निर्देश 41 (2) (दो)
18. नियम 342
19. निर्देश 41 (2) (तीन)
20. नियम 185
21. नियम 187
22. नियम 186
23. नियम 189 और 190

24. नियम 190, 192
25. नियम 31 (2)
26 नियम 56
27 नियम 58
28 नियम 57
29. नियम 60
30 नियम 61 और 62
31 नियम 197
32 नियम 193
33 नियम 194 (1)
34. नियम 194 (2)
35 नियम 195
36. अनु 75 (2)
37 नियम 198 (1)
38. नियम 198
39. नियम 184-189

□□

11

संसदीय समितियां

प्रकार, गठन और क्रिया-विधि

आजकल संसद् को न केवल विभिन्न प्रकार का, बल्कि बहुत अधिक काम करना पड़ता है। उसे सरकार की नीतियां निर्धारित करनी होती हैं, विधि निर्माण का कार्य करना होता है और प्रशासन पर निगरानी रखनी होती है। उसके समक्ष आने वाले विधेयक तथा प्रशासन सम्बन्धी विभिन्न कार्यों की छानबीन करना और उनके सम्बन्ध मे ध्यानपूर्वक और शान्त वातावरण मे गहन अध्ययन करना आवश्यक होता है। उसके समक्ष आने वाले कार्यों की विशिष्टता को देखते हुए उनकी विशेषज्ञो द्वारा अथवा ब्यौरेवार विचार करने की आवश्यकता होती है। जहां सरकार के पास इन कार्यों को निबटाने के लिए आवश्यक प्रशासनतंत्र और संगठन उपलब्ध होते है वहा विधान मण्डल मे इसका नितान्त अभाव होता है। यद्यपि विभिन्न ससदीय प्रक्रियाओ, यथा प्रश्नो और वाद-विवाद के माध्यम से वह कुछ हद तक प्रशासन पर निगरानी रख सकता है किन्तु विशिष्ट और तकनीकी स्वरूप के विषयो को निपटाने के लिए सम्पूर्ण सदन के बजाये उसमे से चुने हुए कुछ सदस्यो को लेकर बनाई एजेंसी के माध्यम से पूरी तरह से उन पर विचार करके उन्हें निपटाना श्रेयस्कर होता है। ऐसे मे ससद अपना बहुत सा कार्य समितियो के माध्यम से करती है। ये समितियां ससद् सदस्यो मे से ही गठित की जाती हैं। दूसरे शब्दो मे संसदीय समितियां संसद् का ही लघु रूप हैं।

लोक सभा के लिए, जो कि 545 सदस्यो का गठन है उन सभी विधायी तथा अन्य मामलों पर, जो उसके समक्ष आते है, गहराई के साथ विचार करना सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त समिति व्यवस्था के कारण सभा का समय बच जाता है, जो महत्त्वपूर्ण मामलो पर चर्चा मे लगाया जा सकता है और ससद् मामले की बारीकियों मे कम कर नीति और विस्तृत सिद्धान्तो के विषयो से परे नही जाती। साथ-साथ समिति द्वारा प्राय: ऐसे मामलों के संबध मे कार्य किया

जाता है जिन पर अधिक गहराई से सावधानी और शीघ्रता से, प्रचार के जगत् से दूर रहकर, शान्त और यथा सभव दलगत रहित वातावरण मे विचार करने की आवश्यकता होती है। सदन की अपेक्षा जहा सदस्य दलगत निष्ठाओ के आधार पर कार्य करते हैं और जहा स्वभावतया सदस्यों मे अपनी छवि बनाने की चिन्ता रहती है, समितियों के वातावरण मे विभिन्न विचारों को स्थान देकर और आदान-प्रदान की प्रक्रिया द्वारा समझौते करना अधिक आसान होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि भारतीय ससद् के दोनो सदनो के वास्तविक गठन मे अधिक अन्तर न होने के कारण, राज्य सभा लगभग बराबर का सदन बन गया है। यदि ऐसा न भी होता तो भी यह नही कहा जा सकता कि राज्य सभा वातावरण को "शान्त" करने वाला या पुनरीक्षण करने वाला परम्परागत सदन है, या वह वरिष्ठ व्यक्तियो अथवा विशेषज्ञों का सदन है जो जल्दबाजी मे या त्रुटिपूर्ण विधान बनाने की रोक-थाम करता है। इन परिस्थितियो में, विधेयको सम्बन्धी प्रवर समितिया और सयुक्त समितिया, अन्य बातो के साथ-साथ, परम्परागत, द्वितीय सदन की भूमिका निभा सकती है। संसदीय समितियो (Parliamentary Committees) का एक और महत्त्व यह है कि दलगत प्रणाली मे, जैसी कि भारतीय ससद् मे है, कुछ समितिया ऐसे कृत्यो का पालन करती हैं जो अन्यथा विपक्ष के होते हैं अर्थात् वे कार्यपालिका को सदा सतर्क रखती हैं और उसे मनमानी करने से रोकती हैं। विपक्ष के सदस्य भी अपनी वास्तविक सख्या के बावजूद समितियो मे प्रभावी भूमिका निभा पाते हैं क्योकि सदन की अपेक्षा उनकी कार्यवाहिया कम औपचारिक होती है और प्रक्रिया अधिक लचीली होती है। इस कारण भी समितियो को सौंपे जाने वाले मामलो पर विचार अधिक व्यापक रूप से और विवेकपूर्ण ढग से होता है। समितिया ऐसे उपयोगी मचो का काम करती हैं जहा सदस्यो को अपने अनुभव एव योग्यता का प्रयोग करने का अवसर मिलता है। समितिया भावी मन्त्रियो और पीठासीन अधिकारियो (Presidins officers) के लिए बहुमूल्य प्रशिक्षण का साधन भी होती हैं। वे अनेक सदस्यो को केवल इसी बारे मे ही प्रशिक्षित नही करती कि प्रशासन किस प्रकार चलाया जाता है बल्कि दिन-प्रति-दिन के कार्यकरण मे प्रशासको के समक्ष आने वाली समस्याओं से भी उन्हें अवगत कराती हैं।[1]

समितियां सामान्यतया सामजस्यपूर्ण ढग से कार्य करती है और उनका उद्देश्य समान होता है। अपनी कार्यविधि मे किए जाने वाले विभिन्न उपक्रमो के अध्ययन दौरो के दौरान सदस्यो में मित्रता की भावना उत्पन्न होती है। उक्त भावना से न केवल समिति को कार्य करने में सहायता प्राप्त होती है बल्कि सदन मे चर्चा के दौरान पैदा हुई कटुता कम होती है। समितिया एक ओर संसद् और लोगो के बीच और दूसरी ओर सरकार और लोगो के बीच सम्पर्क का काम करती हैं। वे जिन विषयो का अध्ययन करती हैं उनके सम्बन्ध मे विभिन्न उपक्रमो तथा

निकायों और अन्य संघों को अपने विचार प्रकट करने के लिए प्रश्नावलियां भेजती हैं, प्राप्त उत्तरों पर चर्चा करती है और जहां आवश्यक होता है सार्वजनिक साक्ष्य और विशेषज्ञों की राय लेती है। वे सम्बद्ध सरकारी उपक्रमों के अधिकारियों और मंत्रालयों के वरिष्ठ अधिकारियों का मौखिक साक्ष्य (Oral evidence) भी लेती है। इस प्रकार संसदीय प्रणाली में कार्यकरण के बारे में लोगों को शिक्षित करने और महत्त्वपूर्ण, सार्वजनिक मामलों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने में सहायता मिलती है।

जहां तक भारत के संविधान में संसदीय समितियों सम्बन्धी उपबन्ध का प्रश्न है, उनके सम्बन्ध कोई विशेष उल्लेख नहीं है सिवाए इसके कि कुछ एक अनुच्छेदों में कहीं-कहीं उनका जिक्र किया गया है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान निर्माताओं ने इस बात को सदनों पर छोड़ दिया था ताकि वे अपने अपने प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में उनके विषय में उपबन्ध कर सकें।

"संसदीय समिति" से तात्पर्य उस समिति से है जो—

(क) सभा द्वारा नियुक्त या निर्वाचित की जाती है, अथवा अध्यक्ष/सभापति द्वारा नाम निर्देशित की जाती है, (ख) अध्यक्ष/सभापति के निदेशानुसार काम करती है; (ग) अपना प्रतिवेदन सभा को या अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत करती है; और (घ) समिति का सचिवालय लोक सभा अथवा राज्य सभा सचिवालय द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

संसदीय समितियों के अतिरिक्त कुछ अन्य समितियां होती हैं जो सरकार द्वारा गठित की जाती हैं और जिनमें दोनों सदनों के सदस्य रखे जाते हैं। ये समितियां संसदीय समितियां नहीं होती हैं। ये न तो अध्यक्ष के निदेश के अन्तर्गत कार्य करती हैं और न अपने प्रतिवेदन सभा या अध्यक्ष को देती हैं। केवल सम्बद्ध मन्त्री की प्रार्थना पर अध्यक्ष सभा के सदस्यों का नाम निर्देशन इन समितियों के लिये करता है विभिन्न मंत्रालयों और विभागों से संलग्न परामर्शदाता समितियां (Consultative Committees) इस वर्ग की समितियां हैं। वास्तव में परामर्शदाता समितियां, प्रतिवेदन किसी को भी पेश नहीं करतीं बल्कि मन्त्रियों के नियन्त्रणाधीन विभागों के कार्यकरण में रुचि रखने वाले संसद्-सदस्यों और मन्त्रियों के बीच विचारों के अनौपचारिक आदान-प्रदान के लिये केवल मंच का काम करती हैं। इस प्रकार वे संसदीय समितियां नहीं होतीं[3]।

संसदीय समितियों का वर्गीकरण·

संसदीय समितियां दो प्रकार की होती हैं स्थायी समितियां (Standing Committees) और तदर्थ समितियां (Ad-hoc Committees)। स्थायी समितियां वे समितियां हैं जिनका गठन नियमों के अनुसार किया जाता है और जो प्रत्येक समिति के निर्धारित कार्यकाल के अनुसार, यथास्थिति प्रतिवर्ष या अन्य कालान्तर पर पुनर्गठित की जाती हैं या अध्यक्ष/सभापति द्वारा मनोनीत की जाती

है और जो स्थायी स्वरूप की होती हैं। तदर्थ समितियां (Ad-hoc Committees) किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए नियुक्त की जाती हैं और जब वे अपना काम समाप्त कर लेती हैं तथा अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर देती हैं तब उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

स्थायी समितियां (Standing Committees) प्रत्येक सदन में स्थायी समितियों (और कुछ संयुक्त समितियों) को उनके कर्तव्यों के अनुसार निम्नलिखित पांच मोटे शीर्षों में बांटा जा सकता है —

(एक) **वित्तीय समितियां** (Financial Committees) (उदाहरण के लिये लोक सभा की प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति और सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति),

(दो) **जांच समितियां** (उदाहरण के लिये याचिका समिति और विशेषाधिकार समिति);

(तीन) **छानबीन समितियां** (उदाहरणार्थ सरकारी आश्वासनों सम्बन्धी समिति, अधीनस्थ विधान सम्बन्धी समिति, सभापटल पर रखे गए पत्रों सम्बन्धी समिति और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी समिति),

(चार) **सभा के दिन प्रति-दिन के कार्य संबंधी समितियां** (उदाहरण के लिए सभा की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति, कार्यमन्त्रणा समिति, गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति और नियम समिति), और

(पांच) **सेवा समितियां**, जिनका काम सदस्यों को सुविधाएं दिलाना है (उदाहरण के लिए सामान्य प्रयोजन समिति, आवास समिति, पुस्तकालय समिति, संसद् सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी समिति),

इसके अतिरिक्त हाल ही में तीन विशिष्ट विषयों को लेकर स्थायी समितियों की नियुक्ति की गई है वे हैं —

(क) कृषि सम्बन्धी समिति,
(ख) पर्यावरण और वन सम्बन्धी समिति और
(ग) विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी समिति।

तदर्थ समितियों को मोटे तौर पर दो शीर्षों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है .

(एक) विधेयक सम्बन्धी प्रवर या संयुक्त समितियां, जो सभा में पास किये गये इस प्रस्ताव के अनुसार बनायी जाती हैं कि किसी विधेयक पर विचार करने तथा उनके संबंध में रिपोर्ट देने के लिए समिति की नियुक्ति की जाये, ये अन्य तदर्थ समितियों से इस बात में भिन्न होती हैं कि उनका सम्बन्ध उन विधेयकों से ही होता है जो उन्हें सौंपे जाते हैं और उनकी प्रक्रिया नियमों तथा अध्यक्ष/सभापति द्वारा जारी किये गये निदेशों में दी जाती है।

(दो) वे तदर्थ समितियां जो समय-समय पर या तो दोनों सदनों द्वारा प्रस्ताव पारित करके बनायी जाती हैं या अध्यक्ष/सभापति द्वारा समय-समय पर गठित की जाती हैं। उदाहरणस्वरूप एक सदस्य के आचरण सम्बन्धी समिति (मुद्गिल का मामला, 1951), समय-समय पर नियुक्त रेलवे अभिसमय समिति, लाभ के पदों सम्बन्धी संयुक्त समिति और किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए सदन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा या सभापति द्वारा नियुक्त कोई अन्य समिति भी ऐसी समितियों के अन्य उदाहरण है।

समितियों का गठन

संयुक्त समिति जिसमें दोनों सदनों के सदस्य होते हैं, या तो एक सदन द्वारा पास किये गये और दूसरे सदन द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्ताव के अनुसार गठित की जाती है और या दोनों सदनों की अध्यक्षता करने वाले अधिकारियों के बीच सम्बद्ध के फलस्वरूप या नियमों के अंतर्गत संसदीय समितियों में सदस्यों की नियुक्ति, सभा द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्ताव के माध्यम से या सभा द्वारा निर्वाचन के माध्यम से या अध्यक्ष/सभापति द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, नाम-निर्देशन के माध्यम से की जाती है[4]। विधेयकों के संबन्ध में प्रवर या संयुक्त समितियां ऐसी समितियां हैं जिनकी नियुक्ति सभा द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्तावों के अनुसार की जाती है। सभी वित्तीय समितियों (अर्थात प्राक्कलन समिति, लोक लेखा समिति, सरकारी उपक्रमों सबन्धी समिति) अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति और लाभ के पदों संबंधी संयुक्त समिति के सदस्य प्रत्येक वर्ष सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। शेष समितियां संबंधित सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा मनोनीत की जाती हैं।

लोक लेखा समिति, सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति, जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति, लाभ के पदों संबंधी समिति तथा तीनों विशिष्ट विषय समितियां (कृषि, पर्यावरण और वन तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी) ऐसी समितियां हैं जिनके सदस्य दोनों सदनों में से लिए जाते हैं जबकि कुछ समितियां प्रत्येक सदन द्वारा अलग से गठित की जाती हैं। संयुक्त समितियों का गठन दोनों में प्रस्तुत और स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसरण में किया जाता है।

संसदीय समितियों में, जहां तक संभव हो, सदन या सदनों में विभिन्न दलों और ग्रुपों को सदस्य संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाता है। इस दृष्टि से समिति सम्पूर्ण सभा का लघु रूप होती है। आमतौर पर, दलों अथवा ग्रुपों के नेताओं द्वारा सुझाए जाने वाले अध्यक्ष/सभापति द्वारा स्वीकृत सदस्यों के नामों के आधार पर प्रत्येक वर्ष समितियों का पुनर्गठन किया जाता है।

सभी संसदीय समितियों के सभापति अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति द्वारा, यथास्थिति, समिति के सदस्यों में से नियुक्त किये जाते हैं। यदि पीठासीन अधिकारी स्वयं किसी समिति का सदस्य हो तो वह उस समिति का पदेन सभापति होता है। यदि अध्यक्ष/सभापति समिति का सदस्य न हो किंतु उपाध्यक्ष/उपसभापति सदस्य हो तो, उसे समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है।

समितियों की कार्यावधि

संसदीय समिति एक वर्ष की अवधि के लिए या अध्यक्ष सभापति द्वारा प्रस्ताव द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि के लिए या जब तक कोई नयी समिति नाम-निर्देशित नहीं की जाती, तब तक पद धारण करती है। कार्य मंत्रणा समिति, याचिका समिति, विशेषाधिकार समिति और नियम समिति पुनर्गठित होने तक कार्य करती रहती है जबकि अन्य स्थायी समितियां एक वर्ष से अनधिक अवधि के लिए पदधारण करती हैं। यदि अध्यक्ष/सभापति द्वारा किसी तदर्थ समिति का कार्यकाल निर्दिष्ट न किया गया हो, तो समिति तब तक पद धारण करती है जब तक कि उसका काम पूरा न हो जाये और वह अपना प्रतिवेदन, यदि कोई हो, न दे दे।[5]

समितियों की प्रक्रिया

किसी संसदीय समिति या उप समिति की औपचारिक अथवा अनौपचारिक बैठकें संसद भवन या संसदीय सौध में होती हैं। यदि किसी कारण से किसी समिति या उप-समिति की बैठक संसद भवन के बाहर करना आवश्यक हो तो अध्यक्ष/सभापति की अनुमति से उनकी बैठकें बाहर भी हो सकती हैं। समिति को व्यक्तियों को बुलाने तथा पत्रों और अभिलेखों को मांगने की शक्ति प्राप्त होती है। वह साक्ष्य ले सकती है या दस्तावेज मंगा सकती है, व्यक्तियों को बुला सकती है, कागजात तथा अभिलेख मंगा सकती है। परन्तु यदि कोई प्रश्न उठता है कि किसी व्यक्ति का साक्ष्य या किसी दस्तावेज का पेश किया जाना समिति के प्रयोजनों के लिए संगत है या नहीं, तो वह प्रश्न अध्यक्ष को निर्दिष्ट किया जाता है जिसका निर्णय अंतिम होता है। समिति किन्हीं ऐसे विषयों की, जो उसे निर्दिष्ट किये जायें, जांच करने के लिए एक या अधिक उपसमितियां नियुक्त कर सकती है। उप समिति के प्रतिवेदन पर मुख्य समिति द्वारा विचार कर सकती है। उप समिति के प्रतिवेदन पर मुख्य पर मुख्य समिति द्वारा विचार किया जाता है।[6]

संसदीय समितियों की बैठक गुप्त होती हैं। समितियों में कार्यवाही मुख्य रूप से उसी प्रकार चलायी जाती है, जैसी कि सभा में, किंतु वहां अधिक घनिष्ट और अनौपचारिक वातावरण रहता है और वह दलगत आधार से परे होती हैं। जब कोई समिति विचार-विमर्श कर रही हो तो कोई सदस्य

विचाराधीन प्रश्न पर एक से अधिक बार बोल सकता है। समिति की किसी बैठक में विचाराधीन सभी प्रश्न उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से निर्धारित किये जाते हैं। किसी विषय पर मतों की समानता होने पर सभापति या सभापति के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति को दूसरा या निर्णायक मत डालने का अधिकार होता है। समिति की बैठकों की कार्यवाही-साराशों के आधार पर, जिनमें समिति के विचार-विमर्शों का सार और साथ ही में सिफारिशें शामिल होती हैं, समिति प्रतिवेदन तैयार करती है। प्रतिवेदन या तो प्रारंभिक हो सकता है या अंतिम। कोई संसदीय समिति, यदि वह ठीक समझे, किसी ऐसे विषय पर, जो उसके कार्य के दौरान उत्पन्न हो या प्रकाश में आये और जिसे समिति अध्यक्ष या सदन के ध्यान में लाना आवश्यक समझे, प्रतिवेदन दे सकती है। चाहे ऐसा विषय समिति के निर्देश पदों से प्रत्यक्षतया संबंधित न हो।[7]

समिति का प्रतिवेदन सभा में सभापति द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में इस प्रयोजन के लिए प्राधिकृत समिति के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। समिति का प्रतिवेदन सभा में प्रस्तुत किये जाने से पहले गोपनीय समझा जाता है, सदन में प्रस्तुत किए जाने के बाद ही वह सार्वजनिक दस्तावेज बनता है।[8]

(एक) वित्तीय समितियां (Financial Committees)

संसदीय समितियों के माध्यम से सभा सरकार पर नियंत्रण रखने और उसकी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखने के साथ-साथ उसके द्वारा तैयार किए बजट प्रस्तावों और व्यय के अनुमानों की जांच करती है और उनका अनुमोदन करती है। यूं तो बजट अधिवेशन में सरकार द्वारा तैयार किए गए कराधान के प्रस्तावों और अलग-अलग मंत्रालय के व्यय के अनुमानों पर चर्चाएं आयोजित की जाती हैं किन्तु देखने में आया है कि सदस्य बहुधा एक ही विषय को शब्दों के हेर-फेर में दोहराते रहते हैं जिससे समय व्यर्थ की चर्चाओं में नष्ट हो जाता है और अनेक मंत्रालयों और विभागों संबंधी मांगों पर चर्चा हो ही नहीं पाती। फलस्वरूप "गिलोटिन" का प्रयोग कर दिया जाता है। ऐसे में वित्तीय समितियों की उपादेयता सिद्ध होती है। ये समितियां सरकार के खर्चे और कार्य-निष्पादन की विस्तृत छानबीन करने का कार्य करती हैं।

वित्तीय समितियां कल्याणकारी राज्य के स्वप्न को साकार बनाने में सहायक सिद्ध होती हैं। उनके माध्यम से मंत्रालयों की विस्तृत गतिविधियों पर उचित परिवीक्षण किया जाता है और उनकी अक्षमता, फिजूलखर्ची और कार्य-निष्पादन में गिरावट पर अंकुश लगा कर उन्हें-चुस्त बनाया जाता है। संसदीय समितियां लोकतंत्र के प्रहरी के रूप में कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त,

कोई प्रशासन व्यवस्था ऐसी नहीं है जो शक्ति के दुरुपयोग, लापरवाही, विलंब, उपेक्षा, पक्षपात आदि जैसे दोषों से शत प्रतिशत मुक्त हो। अतः गहन छानबीन पर आधारित अध्ययन के बिना, व्यवस्थित जांच के बिना, संबंधित मंत्रालय या उपक्रम के अधिकारियों के पूर्ण परीक्षण के बिना, प्रशासन के इन पहलुओं संबंधी तथ्य जानने संभव नहीं होते।

संसदीय समितियां अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों तथा सरकार की विभिन्न योजनाओं और संगठनों के बारे में सर्वांगीण कार्य-निष्पादन की समीक्षा करती है। सदन में इस प्रकार का ब्योरेवार अध्ययन करना सम्भव नहीं होता है इसलिए यह कार्य वित्तीय समितियों को सौंपा गया है। समितियां लगभग सभी महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों, विभागों के कार्यों की छानबीन करती है। समिति की सिफारिशों का अनुसरण करके सरकार के लिए अपनी नीतियों और कार्यक्रमों में अनेक परिवर्तन करना सम्भव हो सका है। इन समितियों के सुझाव और टिप्पणियां खर्च को विनियमित करने और भविष्य के लिए प्रस्ताव और योजनायें बनाने के मामले में मार्गदर्शक सिद्ध होती है। इस प्रकार ये समितियां छानबीन के सभी साधनों, यथा प्रश्नावलियां (List of Points) जारी करके, प्रतिनिधि गैर-सरकारी संगठनों और जानकारी रखने वाले व्यक्तियों से ज्ञापन मंगवा कर, संगठनों का मौके पर अध्ययन करके और गैर सरकारी व्यक्तियों और अधिकारियों के साथ अनौपचारिक रूप से चर्चा करके और उनका मौखिक साक्ष्य (oral evidence) लेकर सरकार के कार्यकलापों पर निरन्तर, पूर्ण और प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखती है।

यह सर्व विदित है कि सरकारी खर्च पर संसद् का नियन्त्रण धनराशि मंजूर करने तक सीमित नहीं है। तीन वित्तीय समितियां यह सुनिश्चित करती हैं कि धनराशि सही ढंग से खर्च हो और उससे योजनाओं में तथा कार्यक्रमों में निहित उद्देश्यों की पूर्ति हो। इस उद्देश्य से वित्तीय समितियों का निरंतर अभियान प्रशासन को सदा सतर्क बनाए रखता है। विचार-विमर्श के दौरान अनेक सरकारी अधिकारी समितियों के समक्ष उपस्थित होते हैं और प्रशासन की कमियों को दूर करने और भविष्य के लिए प्रस्ताव और योजनायें बनाने के मामले में लाभप्रद मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। उन्होंने अनेक बार इस बात को स्वीकार किया है कि समितियों से हुए विचार-विमर्श उपयोगी रहते हैं और इनसे उन्हें बहुत लाभ होता है। इन समितियों के प्रतिवेदनों के कारण इन्हें समाज के सरकारी और गैर-सरकारी सभी वर्गों में पर्याप्त सम्मान मिलता है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि सरकार इन समितियों की 70 से 80 प्रतिशत सिफारिशें स्वीकार कर लेती है। इन्होंने मंत्रालयों/विभागों में मितव्ययिता लाने और उनकी कार्य कुशलता बढ़ाने में सरकार को बहुत अधिक प्रभावित किया है। समितियों की जो सिफारिशें स्वीकार नहीं की जाती उन्हें स्वीकार न करने के कारणों से उनको अवगत

कराया जाता है। सिफारिशों को कार्य रूप देने में हुई प्रगति की और समितियों तथा सरकार में जिन मतभेदों का समाधान नहीं होता उनको "की-गई-कार्यवाही प्रतिवेदन" (Action taken Report) के माध्यम से सदन के ध्यान में लाया जाता है। इन समितियों द्वारा की गई सिफारिशों की अनुवर्ती कार्यवाही की विस्तृत एवं प्रभावी प्रक्रिया अन्यत्र विद्यमान संसदीय प्रक्रियाओं को मूल रूप से भारतीय देन है।

तीनों वित्तीय समितियों की कार्यावधि एक वर्ष है। इसके सदस्य सभा द्वारा प्रतिवर्ष सदस्यों में से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। कोई भी मंत्री समितियों के सदस्य के रूप में निर्वाचित नहीं किया जा सकता है और न ही उन्हें साक्ष्य देने के लिए इनके समक्ष उपस्थित होने को कहा जा सकता है। समितियों के सभापति अध्यक्ष द्वारा समितियों के सदस्यों में से मनोनीत किए जाते हैं। नियमों तथा अध्यक्ष द्वारा जारी किये गये निर्देशों (Directors) में दिये गये उपबंधों की अनुपूर्ति करने के लिए ये समितियां, अध्यक्ष के अनुमोदन से अपने आंतरिक कार्य के लिए प्रक्रिया के विस्तृत नियम बना सकती हैं। ये समितियां साधारणतया नीति के प्रश्नों में नहीं जातीं क्योंकि नीतियों का निर्माण करना पूर्णतया संसद् के अधिकार क्षेत्र की बात है और किसी समिति से यह आशा नहीं की जाती कि वह संसद द्वारा पहले से अनुमोदित किसी नीति के बारे फैसला दे। एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू जो तीनों वित्तीय समितियों में पाया जाता है वह यह है कि वे कार्य हो चुकने पर प्रशासन की जांच करती हैं। प्रशासन के दिन-प्रति-दिन के कार्यों के हस्तक्षेप की सम्भावना न रहे इस कारण समितियां केवल उन्हीं कार्यों की जांच करती हैं जो पहले से किए जा चुके हों या एसे कार्यों की जो किए नहीं गए परन्तु जो अन्यथा किए जाने चाहिए थे।

संसदीय समितियों की सिफारिशें बंधनकारी न होते हुए भी प्रभावकारी होती हैं। इसी कारण प्रायः कोई भी मंत्री अथवा अधिकारी उनकी अवहेलना अथवा उपेक्षा नहीं कर सकता।

प्राक्कलन समितिः— (Estimates Committee)

इस समिति के सभी 30 सदस्य लोक सभा के होते हैं[9]। अन्य दो वित्तीय समितियों के समान, इस समिति से राज्य सभा के सदस्य सहयोजित नहीं किए जाते। सरकारी खर्च में मितव्ययिता और कार्यकरण में कुशलता लाने सम्बन्धी सुझाव देने के लिए इस समिति का गठन किया जाता है। यह समिति वार्षिक बजट अनुमानों की विस्तृत जांच करती है ताकि :—

(क) इस सम्बन्ध में प्रतिवेदन दे कि प्राक्कलनों में अन्तर्निहित नीति के अनुरूप क्या-क्या मितव्ययिता संगठन में सुधार, कार्यकुशलता या प्रशासनिक सुधार किए जा सकते हैं।

(ख) प्रशासन में कार्यकुशलता और मितव्ययता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों का सुझाव दें।

(ग) इस बात की जांच करें कि क्या प्राक्कलनों में अन्तर्निहित नीति की सीमा में रहते हुए धन ठीक ढंग से लगाया गया है या नहीं,

(घ) इसका सुझाव दें कि प्राक्कलन किस रूप में संसद् में पेश किए जायें।[10]

समिति, संसद् द्वारा अनुमोदित नीति के विरुद्ध नहीं जाती। इस मामले में 'संसद् द्वारा, विधि के द्वारा, या विशिष्ट संकल्पों के द्वारा निर्धारित नीति" और सभी अन्य नीतियों में जो इस प्रकार निर्धारित नहीं हों, भेद किया गया है। बाद वाले मामलों के सम्बन्ध में समिति किसी ऐसे मामले की जांच खुलकर कर सकती है जो सरकार द्वारा अपने कार्यपालिका सम्बन्धी कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए नीति के रूप में तय किया गया हो। किन्तु जहां यह बात प्रमाण द्वारा सिद्ध हो जाये कि किसी विशिष्ट नीति से प्रत्याशित या अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं या उससे अपव्यय हो रहा है, तो समिति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सभा का ध्यान इस बात की ओर दिलायें कि नीति में परिवर्तन की आवश्यकता है।

लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee)

यह समिति लोक सभा की वित्तीय समितियों में सबसे पुरानी समिति है। इस समिति में 22 सदस्य होते हैं (15 लोक सभा के और 7 राज्य सभा के) वर्ष 1967 से चली आ रही परिपाटी के अनुसार विरोधी पक्ष के किसी सदस्य को इस समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है।[11]

लोक लेखा समिति भारत सरकार के व्यय को वहन करने के लिए संसद् द्वारा अनुदत्त राशियों का विनियोग दिखाने वाले लेखाओं, भारत सरकार के वार्षिक वित्त लेखाओं और सभा के सामने रखे ऐसे अन्य लेखाओं की जांच करती है जिन्हें वह ठीक समझे चूंकि प्राक्कलन समिति सार्वजनिक व्यय के अनुमानों सम्बन्धी कार्य करती है, इसलिए लोक लेखा समिति को कभी-कभी प्राक्कलन समिति की "जुड़वां बहन" भी कहा जाता है। इन दो समितियों के काम एक दूसरे के पूरक हैं। समिति इस बारे में अपना समाधान करती है कि लेखाओं में व्यय के रूप में दिखाया गया धन उस सेवा या प्रयोजन के लिए विधिवत उपलब्ध और लगाये जाने योग्य था जिसमें यह लगाया गया है या पारित किया गया है अथवा व्यय उस प्राधिकार के अनुसार है जिसके अन्तर्गत वह किया गया है। समिति यह भी देखती है कि प्रत्येक पुनर्विनियोग सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस सम्बन्ध में बनाये नियमों के उपबन्धों के अनुसार किया गया है। यदि किसी सेवा पर उस प्रयोजन के लिए सभा द्वारा स्वीकृत राशि से अधिक राशि खर्च कर दी गई हो तो समिति प्रत्येक मामले के तथ्यों के संदर्भ में उन परिस्थितियों की, जिनके कारण यह अति-

रिक्त व्यय हुआ है, जाँच करती है तथा ऐसी सिफारिशें करती है जो वह उचित समझे। तत्पश्चात् अधिक व्यय के ऐसे मामले सरकार को विनियमन के लिए सदन के समक्ष लाने पड़ते हैं।[12]

समिति के कृत्य खर्च की औपचारिकता देखने से कहीं अधिक है। वह ऐसे मामलों की जाच करती है, जिनमें हानि हुई हो, निरर्थक खर्च हुआ हो और वित्तीय अनियमितताएं की गयी हों। यदि यह प्रमाणित हो जाए कि उपेक्षा करने के कारण हानि हुई हो या फजूलखर्ची हुई है तो सम्बद्ध मन्त्रालय से यह बताने के लिए कहा जाता है कि इस प्रकार की घटना को दोबारा न होने देने के लिए अनुशासनात्मक या अन्यथा कौन सी कार्यवाही की गई है। ऐसे मामलों में समिति या तो सरकार की कार्यवाही का निरनुमोदन करती है या उसकी निन्दा करती है।

समिति जाच के लिए विषयों का चयन सरकार के लेखाओं पर नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों में से करती है जो संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जाते हैं। लेखाओं और लेखा परीक्षा प्रतिवेदनों की जाच करने में नियन्त्रक और महालेखा परीक्षा समिति की सहायता करता है।[13]

समिति की सीमाएं

समिति की दो सीमाएं हैं, प्रथम नीति सम्बन्धी निर्णयों में यह मार्ग-दर्शन नहीं करती, ऐसे निर्णय लेना सरकार का दायित्व है। दूसरी, इसके निष्कर्ष कार्योपरान्त होते हैं। परन्तु यह बताना समिति के अधिकार क्षेत्र में है कि उस नीति को कार्यान्वित करते समय फजूलखर्ची हुई है या नहीं। यद्यपि समिति अनियमितताएं हो चुकने के बाद उन्हें प्रकाश में लाती है किन्तु इसका सरकारी अधिकारियों द्वारा खर्च के अविवेकशील तरीकों पर काफी प्रभाव पड़ता है और वे इसके निष्कर्षों और सिफारिशों को बहुत गंभीर रूप से लेते हैं। सामान्यतया समिति मितव्ययिता लाने के लिए सामान्य नियन्त्रण पर ही जोर देती है, परन्तु यह प्रशासन की कमजोरियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट कर सकती है। अतः ऐसी समिति का होना ही सम्भाव्य प्रशासनिक,अपव्यय और फिजूलखर्ची के लिए रोकात्मक प्रभाव रखता है और इसके द्वारा वित्तीय व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं।

(1) सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति (Committee on Public undertakings) : देश में आयोजित आर्थिक विकास प्रारम्भ होने और पचास के दशक में सदन द्वारा औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प पारित किए जाने के बाद अनेक औद्योगिक कृषि वाणिज्यिक उपक्रमों में काफी वृद्धि हुई है जिनका नियंत्रण तथा प्रबन्ध भारत सरकार के हाथ में है। बहुत सी सरकारी कम्पनियां और सविहित निगम भी अस्तित्व में आयी जिनमें बहुत अधिक पूंजी लगी हुई है। इन्हें "सार्वजनिक उपक्रम" (Public Undertakings) कहा जाता है। उन पर लगायी गयी धन राशियां चूंकि भारत की संचित निधि में लगाई गई हैं अतः लोक सभा का यह

दायित्व हो जाता है कि वह उनके कार्यों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखे । इस उद्देश्य से संसद् द्वारा सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति का गठन किया गया है जिसके 22 सदस्य होते हैं । जिनमें 15 सदस्य लोक सभा द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं और 7 सदस्य राज्य सभा द्वारा । समिति का सभापति अध्यक्ष द्वारा समिति के सदस्यों (लोक सभा से निर्वाचित) में से नियुक्त किया जाता है ।

समिति के कृत्य ये हैं — लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियम की चतुर्थ अनुसूची में उल्लिखित सरकारी उपक्रमों के प्रतिवेदनों तथा लेखाओं की और यदि उनके बारे में भारत के नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक की कोई रिपोर्ट हो तो उसकी जांच करना और सरकारी उपक्रमों की स्वायत्तता और कार्यकुशलता के संदर्भ में, यह जांच करना कि क्या सरकारी उपक्रमों के कार्य समुचित व्यापार सिद्धान्तों और विवेकपूर्ण वाणिज्यिक प्रथाओं के अनुरूप चल रहे हैं । समिति ऐसे विषयों या मामलों की भी जांच कर सकती है जो सभा अथवा अध्यक्ष महोदय द्वारा उसे विशिष्ट रूप से सौंपे जायें । परन्तु समिति प्रमुख सरकारी नीति सम्बन्धी ऐसे मामले की जो कि सरकारी उपक्रमों के व्यापार अथवा वाणिज्यिक कृत्यों से भिन्न हैं, अथवा ऐसे मामलों की जिन पर विचार करने के लिए उस विशेष संविधि की व्यवस्था की गई है, जिसके अन्तर्गत सरकारी उपक्रम विशेष स्थापित किया गया है, जांच और छानबीन नहीं कर सकती ।[11]

समिति द्वारा सरकारी उपक्रम की जांच सामान्यतया उसके काम के मूल्यांकन के रूप में होती है । इन जांचों में नीतियों और कार्यक्रम की कार्यान्विति, प्रबंध तथा वित्तीय पहलू आ जाते हैं, जैसे उत्पादन, सामान्य अर्थव्यवस्था में अंशदान, रोजगार के अवसर पैदा करना, सहायक उद्योगों का विकास, उपभोक्ता के हितों का संरक्षण इत्यादि । समिति द्वारा किए गए कुछ महत्वपूर्ण सुझावों में परियोजना संबंधी योजना बनाने, सभी क्षेत्रों में प्रबंध व्यवस्था करने, नियन्त्रण व्यवस्थाओं में विदेशी सहयोग और उनकी भूमिका एवं उपलब्धियां इत्यादि शामिल हैं । समिति द्वारा ये तथ्य संसद् और लोगों के ध्यान में लाए गए हैं कि उपक्रमों द्वारा किस प्रकार सार्वजनिक धन का अपव्यय किया जाता है ।

(2) सदन की समितियां

कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee). प्रत्येक सदन में यह कार्यमंत्रणा होती है । लोक सभा में इस समिति में अध्यक्ष को मिलाकर पन्द्रह से अधिक सदस्य नहीं होते हैं जिनका नाम निर्देशन अध्यक्ष करता है । अध्यक्ष इस समिति का पदेन सभापति है । राज्य सभा में उपसभापति सहित इसके ग्यारह सदस्य होते हैं । राज्य सभा के सभापति समिति के पदेन सभापति होते हैं । अध्यक्ष या सभापति, यथास्थिति सभा के प्रारम्भ पर या समय-समय पर समिति को नाम निर्दिष्ट करता है । नियमों में इसका कोई कार्यकाल निर्धारित नहीं किया गया लेकिन इसका कार्यकाल तब तक रहता है जब तक कि नयी समिति मनोनीत नहीं की जाती ।

समिति का काम यह सिफारिश करना है कि सरकार के उन विधायी तथा अन्य कार्य पर जिसे अध्यक्ष/सभापति सभा के नेता के परामर्श से समिति को सौंपने का निर्देश दें, चर्चा करने के लिए कितना समय नियत किया जाए। परन्तु राज्य सभा में समिति यह भी सिफारिश करती है कि गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों पर चर्चा के लिए कितना समय नियत किया जाए। समिति ऐसे अन्य कृत्य करती है जो अध्यक्ष द्वारा अथवा सभापति द्वारा यथास्थिति उसे समय-समय पर सौंपे जायें। समिति स्वयं भी सरकार से सिफारिश कर सकती है कि वह कोई विषय विशेष सभा में चर्चा के लिए प्रस्तुत कर और उस चर्चा के लिए समय नियत कर सकती है। यद्यपि समिति में सामान्यतया सभी मतों वाले सदस्यों का प्रतिनिधित्व रहता है तथापि समय नियत करने संबंधी निर्णय सदा सर्व-सम्मति से लिए जाते हैं और समूचा सदन सामान्यतया उनसे सहमत हुआ है।

गैर सरकारी सदस्यों के विधेयक तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति (Committee on Private Members Bills & Resolutions). इस समिति के पन्द्रह से अधिक सदस्य नहीं होते, जिनका नाम निर्देशन अध्यक्ष करता है और यह एक वर्ष तक पद धारण करती है। समिति के महत्त्व को देखते हुए उपाध्यक्ष को अनिवार्य रूप से इस समिति में लिया जाता है जो इसका सभापति होता है। इसके कृत्य हैं:– गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों के लिए समय नियत करना, संविधान में संशोधन करने वाले गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों (Bills) की लोक सभा में उनको पेश किए जाने से पहले जांच करना और गैर सरकारी सदस्यों के ऐसे विधेयकों की, जिनमें सभा की विधायी क्षमता को चुनौती दी गई हो, जांच करना। इस प्रकार यह गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों के संबंध में उन्हीं कृत्यों का पालन करती है जिनका कि कार्य मंत्रणा समिति द्वारा सरकारी कार्य के संबंध में किया जाता है। राज्य सभा समिति के कृत्य ये हैं:—(एक) सभा की बैठकों से अनुपस्थिति की अनुमति प्राप्ति के लिए सदस्यों के सभी प्रार्थना-पत्रों पर विचार करना, (दो) और ऐसे प्रत्येक मामले की जांच करना, जिसमें कोई सदस्य 60 दिन या इससे अधिक समय तक बिना अनुमति के सभा की बैठकों से अनुपस्थित रहा हो और यह प्रतिवेदन देना कि क्या इस अनुपस्थिति को क्षमा कर दिया जाये या कि उस मामले को परिस्थितियों में यह उचित है कि सदन उस सदस्य के स्थान के रिक्त होने की घोषणा कर दे। इसके अतिरिक्त समिति सभा के सदस्यों की उपस्थिति के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन भी करती है, जो समय-समय पर अध्यक्ष द्वारा उसे सौंपे जाए।

नियम समिति (Rules Committee) दोनों सदनों की एक-एक नियम समिति है। लोक सभा में नियम समिति का नाम-निर्देशन अध्यक्ष करता है और उसके 15 सदस्य होते हैं जिनमें अध्यक्ष भी शामिल होता है। वह इस समिति का पदेन सभापति होता है। राज्य सभा में सभापति और उपसभापति सहित इस समिति के 16 सदस्य हैं। राज्य सभा का सभापति इस समिति का पदेन सभापति होता है।

इस समिति के कृत्य इस प्रकार है (एक) सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन के मामलों पर विचार करना और (दो) नियमों में आवश्यक समझे जाने वाले संशोधनों अथवा परिवर्द्धनों की सिफारिश करना। नियमों में संशोधन या वृद्धि करने का सुझाव सदन के किसी भी सदस्य द्वारा किसी मंत्री या स्वयं समिति द्वारा दिया जा सकता है।

(तीन) जाँच समितियाँ

याचिका समिति (Committee on Petition) संसदीय लोकतंत्र में लोगों को संसद् के समक्ष अपनी शिकायतें रखने और उनका समाधान खोजने एवं लोक महत्व के मामलों पर अपने रचनात्मक सुझाव देने का अन्तर्निहित अधिकार होता है। यह काम व अपने क्षेत्र के संसद् सदस्यों के माध्यम से याचिका समिति को याचिकाएँ पेश करके करते है। प्रत्येक सदन की एक याचिका समिति है। लोकसभा की इस समिति में 15 सदस्य होते है और राज्य सभा की इस समिति में 10 सदस्य। समिति प्रत्येक ऐसी याचिका की जाँच करती है जो सदन में पेश किये जाने के बाद उस सौंपी गयी मानी जाती है। समिति का यह कर्तव्य है कि याचिकाओं में की गयी विशिष्ट शिकायतों के संबंध में सदन को प्रतिवेदन दे और उसमें पहले ऐसा साक्ष्य ले, जैसा कि वह उचित समझे और स्थिति को सुधारने के लिए कार्यवाही का सुझाव दे, जो या तो ठोस रूप में समीक्षाधीन मामले पर लागू होती हो, या जिसके कारण भविष्य में वैसी बातों की पुनरावृत्ति न हो, जिनकी शिकायत की गई हो।

समिति विभिन्न व्यक्तियों तथा संघों से प्राप्त अभ्यावेदनों, चिट्ठियों और तारों पर विचार करती है, जो याचिकाओं संबंधी नियमों के अन्तर्गत नहीं आते हैं और उन्हें निपटाने के लिए निर्देश देती है। यह समिति आम नागरिकों की न्यायोचित शिकायतों को दूर करने के मामले में संसदीय समर्थन प्रदान करने में महत्वपूर्ण कार्य करती है। पीड़ित और दमन के शिकार नागरिकों के लिए यह समिति "ओम्बुड्समैन" या "सार्वजनिक शिकायत समिति" के रूप में कार्य करती है।

विशेषाधिकार समिति (Committee on Privileges) . संसद् के प्रत्येक सदन को सामूहिक रूप से, और उसके सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से कुछ विशेषाधिकार प्राप्त है, अर्थात् उन्हे कुछ अधिकार तथा उन्मुक्तियाँ मिली हुई है, जिनके बिना सभा तथा उसके सदस्य उन कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकते, जो संविधान ने उन्हे सौंपे है। जब कभी विशेषाधिकार भंग होने का आरोप लगाया जाता है, तो सभा उस विषय पर विचार कर सकती है परन्तु सामान्यतया सभा उस विषय की जाँच, छानबीन तथा प्रतिवेदन देने के लिये उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप देती है। प्रत्येक सदन में यह समिति गठित की गई है। सामान्यतया दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा प्रत्येक वर्ष विशेषाधिकार

रखा गया है, (ख) क्या पत्र को सभा पटल पर रखने में कोई अनुचित विलम्ब हुआ है, (ग) यदि ऐसा विलम्ब हुआ है तो क्या उक्त विलम्ब के कारणों को स्पष्ट करने वाला विवरण भी सभा पटल पर रखा गया है तथा क्या वे कारण सन्तोषजनक हैं, (घ) क्या उस पत्र के हिन्दी तथा अंग्रेजी संस्करण सभा पटल पर रखे गये है और (ङ) क्या हिन्दी संस्करण सभा पटल पर न रखने के कारणों को स्पष्ट करने वाला विवरण सभा पटल पर रखा गया है, तथा क्या वे कारण सन्तोषजनक है। इस प्रकार, सामान्य रूप से समिति का उद्देश्य प्रशासन के उन क्षेत्रों में संसदीय नियंत्रण लागू करना है जिनमे 1975 मे इस समिति का गठन होने तक वह नही था।

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति (Committee on the welfare of Scheduled Castes/Tribes) भारत के संविधान में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए कई रक्षोपायों का उपबन्ध किया गया है। इन रक्षोपायों की कार्यान्विति पर निगरानी रखने के लिए अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त के पद की व्यवस्था की गई है। आयुक्त संविधान के अनुच्छेद 338(2) के अधीन राष्ट्रपति को रक्षोपायों की कार्यान्विति के सम्बन्ध में प्रतिवेदन पेश करता है और तत्सम्बन्धी सिफारिशें करता है। इन सिफारिशों का प्रभावपूर्ण ढंग से अनुपालन सम्भव बनाने के लिए संसद् द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण संबंधी समिति गठित की गई है। इस समिति के 30 सदस्य होते है, लोक सभा के 20 और राज्य-सभा के 10 जो संसद के दोनो सदनों द्वारा अपने-अपने सदस्यों में से निर्वाचित किए जाते हैं।

समिति के महत्त्वपूर्ण कृत्य अन्य बातों के साथ-साथ अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के आयुक्त द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदनों पर विचार करना और तत्सम्बन्धी प्रतिवेदन पेश करना है कि उन पर सरकार द्वारा क्या उपाय किए गए हैं या करना अपेक्षित है। समिति केन्द्रीय सरकार के विभागों, केन्द्रीय सरकारी उपक्रमों, राष्ट्रीयकृत बैंकों, आदि में सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व के बारे में जाँच करती है और उनके कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों के कार्यकरण की समीक्षा करती है तथा संसद् में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। समिति समय-समय पर अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों के कल्याण संबंधी विशेष हित के मामलों पर भी विचार करती है तथा यह भी सुनिश्चित करती है कि इन पिछड़े समुदायों के लिये संवैधानिक रक्षोपायों को प्रभावी कार्यरूप दिया जाये।

(चार) सेवाएं उपलब्ध कराने वाली समितियाँ. संसद् सदस्यों को उपलब्ध की जाने वाली विभिन्न प्रकार की सेवाओं और सुविधाओं तथा संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों के कार्यकरण से सम्बन्धित अन्य मामलों की जाँच करने वाली समितियाँ

इस प्रकार हैं सामान्य प्रयोजन समिति, आवास समिति, ग्रन्थालय समिति और ससद् सदस्यों के वेतन तथा भत्तो सम्बन्धी सयुक्त समिति।

सामान्य प्रयोजन समिति(General Purpose Committee) इस समिति का गठन सदन के कार्यों से सम्बद्ध ऐसे विषयों पर विचार करने और परामर्श देने के लिए किया जाता है, जो अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर उसे सौंपे जायें। ससद् के दोनो सदनो की एक-एक सामान्य प्रयोजन समिति होती है। इसमे सबधित सदन का पीठासीन अधिकारी समिति का पदेन सभापति होता है। इस समिति मे अध्यक्ष/सभापति, उपाध्यक्ष/उपसभापति जैसी भी स्थिति हो, सभापति तालिका के सदस्य, उस सदन की सभी स्थायी समितियो के सभापति मान्यता प्राप्त दलो/गुटो के नेता और ऐसे अन्य सदस्य होते हैं, जिन्हे पीठासीन अधिकारी द्वारा नाम निर्देशित किया जाए।

आवास समिति(Housing Committee) ससद् के प्रत्येक सदन की एक-एक आवास समिति होती है जो सदस्यो के लिये मकानो से सबधित सभी प्रश्नो को तय करती है और दिल्ली मे सदस्यों के निवासो और होस्टलो मे दिये गये स्थान, भोजन, चिकित्सा सहायता तथा अन्य सुविधाओं सबधी कार्य करती है।

ग्रथालय समिति (Library Committee) यह एक सलाहकारिका समिति है जिसमे दोनो सदनो के सदस्य नियुक्त है। इसे अध्यक्ष द्वारा ग्रन्थालय सबधी विषयो के बारे मे उन्हे परामर्श देने के लिए गठित किया गया है। इस समिति मे उपाध्यक्ष सहित, जो समिति का पदेन सभापति होता है, लोक सभा के छह सदस्य और राज्य सभा के तीन सदस्य होते है। इन सदस्यो को दोनो सदनो के पीठासीन अधिकारियों द्वारा मनोनीत किया जाता है। यह समिति प्रत्येक वर्ष गठित की जाती है। इस समिति का मुख्य कृत्य ग्रन्थालय और उसका सहायक सेवाओ, अर्थात् सदर्भ, शोध तथा प्रलेखन सेवाओ के प्रयोग मे सदस्यो की सहायता करना है। यह नई पुस्तको तथा ससद् ग्रन्थालय मे सवग्रित अन्य दिन प्रतिदिन के विभिन्न विषयो यथा ग्रन्थालय के लिए नियम बनाने और इसकी भावी योजनाए बनाने आदि से संबधित मामलों मे अध्यक्ष को परामर्श देती है।

संसद् सदस्यो के वेतन तथा भत्तों सबधी सयुक्त समिति (Joint Committee on Members Salary & Allowances) इस समिति का गठन 1954 मे किया गया था जिससे कि ससद् सदस्यो के वेतन तथा भत्ते अधिनियम 1954 के अधीन नियम बनाये जा सकें। इस सयुक्त समिति मे लोक सभा के दस और राज्य-सभा के पाच सदस्य होते हैं, जिनको दोनो सदनो के पीठासीन अधिकारी नाम निर्देशित करते हैं।

इस समिति के कृत्य हैं केन्द्रीय सरकार के परामर्श से दोनो सदनो के सदस्यो को यात्रा और दैनिक भत्ते, चिकित्सा, आवास, टेलीफोन, डाक, पानी,

बिजली, निर्वाचन क्षेत्र सम्बन्धी तथा सचिवीय सुविधायें आदि देने के बारे में नियम बनाना।

निष्कर्ष—संसदीय समितियां विचाराधीन विषय को शान्त वातावरण में बारीकी से छान-बीन कर निष्कर्ष निकालती हैं और सिफारिशें देती हैं। सरकार द्वारा इनकी सिफारिशों को बड़ी गंभीरतापूर्वक लिया जाता है और सामान्यतया अधिकांश सिफारिशें स्वीकार कर ली जाती हैं। समितियां शक्ति का स्रोत हैं, इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती। जो सरकारी विभाग कुशल दक्षता से कार्य नहीं करते अथवा जिनके अधिकारी त्रुटियों के दोषी हैं उन्हें सम्बद्ध विषयों पर साक्ष्य के दौरान समिति के सदस्यों द्वारा की जाने वाली कठोर जिरह के समय अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है और उनको इस बात का ज्ञान भी होता है कि समिति को झूठी जानकारी देना समिति के विशेषाधिकार का उल्लंघन होता है, जिसके गंभीर परिणाम निकलते हैं। अतः समितियां सरकार के अकुशल प्रशासन पर अंकुश लगाकर उसे चुस्त बनाने में सहायक सिद्ध होती हैं। भारतीय संसद् की समितियां यह काम बड़ी कुशलतापूर्वक कर रही हैं। इन समितियों द्वारा निरन्तर सतर्क रह कर और सरकारी विभागों के कार्यकरण के न्यायोचित एवं रचनात्मक मूल्यांकन से समितियों ने संसद् के प्रभावी कार्यकरण में विशिष्ट योगदान किया है और देश में संसदीय संस्थाओं को सामान्य रूप से सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

समितियों के रचनात्मक प्रभाव को देखते हुए यह विचारधारा जोर पकड़ती जा रही है कि आधुनिक प्रशासन की बढ़ती हुई जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय संसद् की समिति प्रणाली को और सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए। संसद् में दलगत विचारधारा के कारण बहुत सा समय छींटाकशी में व्यर्थ चला जाता है, जिससे कोई रचनात्मक कार्य नहीं हो पाता है। समितियों में सदस्य दलगत भावना से ऊपर उठकर सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करते हैं क्योंकि समितियों में समान उद्देश्य के लिए कार्य किया जाता है। अतः देश में विषयों पर आधारित या मंत्रालयों/विभागों पर आधारित विशेषज्ञ समितियां स्थापित करने की विचारधारा को गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है। इससे सरकार के विभिन्न विभागों के कार्यकरण की लगातार छानबीन करना बजट प्रस्तावों और विधायी प्रस्तावों की उनके अपने-अपने विषय क्षेत्रों में जांच करना सम्भव होगा और समितियां संसद् की पूरक सिद्ध होंगी। ऐसी समितियों की स्थापना से संसद् के पास ऐसे साधन उपलब्ध हो जायेंगे, जिनसे कि वह सरकार के क्रियाकलापों की निरन्तर छानबीन कर सकेगी और साथ ही कार्यपालिका से प्राप्त होने वाले सभी प्रस्तावों की उनके विषय-क्षेत्रों में ही जांच कर सकेगी। इस संदर्भ में हाल ही तीन विषयगत समिति बनाकर जो पहल की गई है बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

भारत की संसदीय समिति प्रणाली को सुदृढ़ बनाते समय इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता है कि शक्ति प्राप्त होने से निरंकुश न बनें बल्कि गम्भीर बनें। उनकी भूमिका संसद् की पूरक और सहायक की होनी चाहिए न कि वे तो एक *विधानमण्डल अथवा कार्यपालिका* के मुकाबले में शक्ति के अलग केन्द्र बनें। वे तो एक मित्रतापूर्ण समालोचक अथवा आतंरिक प्रबंध जैसा परीक्षक की तरह होनी चाहिए। अतः समिति व्यवस्था में सुधार इस उद्देश्य से किए जाने चाहिएं कि वे उनको सौंपे जाने वाले कार्य को प्रभावी ढंग से कर सकें।

संदर्भ

1. देखिये सुभाष काश्यप, कमेटीज इंडियन लोक सभा, जॉन डी लीज एण्ड मालकम शॉ (सम्प.), कमेटीज इन लेजिसलेचर ए कम्पेरेटिव स्टडी, ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, 1979, पृ 297-300
2. मनु 88 और 105
3. काश्यप, ऊपर उद्धृत, पृ 297
4. नियम, 254
5. नियम 256 और 258
6. नियम 267, 270 और 263 तथा निर्देश 50 (1), 56 और 57
7. नियम 266, 268, 261, 262, 276 और 277
8. नियम 279 (1) और निर्देश 68 (1), 71 (क) (1-3), 55 और 65 (1)
9. नियम 309, 311 और 312 ग और निर्देश 99 (1)
10. नियम 310 और निर्देश 98
11. समिति पहली बार माटगु-चेम्सफोर्ड रिफार्म्स के अधीन वर्ष 1921 में स्थापित की गई थी। 1954-55 से पूर्व इसके 15 सदस्य थे जो लोक सभा से ही लिए गये थे।
12. नियम 303
13. नियम 308 (3)
14. नियम 312 क की चौथी अनुसूची और नियम 312 क का परन्तुक (एक-तीन)
15. स्वायत्तशासी और सांविधिक निकायों के वार्षिक प्रतिवेदन, समय समय पर नियुक्त होने वाली समितियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश, सांविधिक नियम और आदेश कुछ श्रेणियों के पत्र हैं, जो सभा पटल पर रखे जाते हैं। □□□

12

संसदीय विशेषाधिकार

विशेषाधिकार (Privileges) का सीधा-सादा शाब्दिक अर्थ "छूट का असाधारण अधिकार" है। इस शब्द का कानूनी अर्थ यह है कि "यह किसी कर्त्तव्य, बोझ या दायित्व से छूट है जो बाकी सब के लिये हो"। यह "विशेष" इसलिये है कि यह अधिकार या छूट शेष लोगों को प्राप्त नहीं है। संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary Privileges) संसद् के विशेषाधिकार नहीं है क्योंकि संसद तो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से बनती है जब कि संसदीय विशेषाधिकार केवल दोनों सदनों को, उनकी समितियों को और उनके सदस्यों को प्राप्त है।

संसदीय भाषा में, "विशेषाधिकार" शब्द से अभिप्रेत है ऐसे कतिपय अधिकार तथा उन्मुक्तियां जो संसद के प्रत्येक सदन तथा उसकी समितियों को सामूहिक रूप से और प्रत्येक सदन के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त हैं और जिनके बिना वह अपने कृत्यों का निर्वहन दक्षतापूर्वक तथा प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं कर सकते। संसदीय विशेषाधिकार का उद्देश्य संसद की स्वतंत्रता, प्राधिकार तथा गरिमा की रक्षा करना है। ये सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त है क्यों कि संसद् अपने सदस्यों की सेवाओं के बाधारहित प्रयोग के बिना अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकती और प्रत्येक सदन को अपने सदस्यों के संरक्षण तथा प्राधिकार एवं गरिमा की रक्षा के लिये ये सामूहिक रूप से प्राप्त हैं। परन्तु ये सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से केवल उसी सीमा तक उपलब्ध हैं जहां तक कि सदन को किसी अवरोध या बाधा के बिना अपने कृत्यों का स्वतन्त्रतापूर्वक निर्वहन करने के लिये आवश्यक हैं। वे सदस्यों को समाज के प्रति दायित्वों से, जो अन्य नागरिकों पर लागू होते हैं, मुक्त नहीं करते। संसद् के विशेषाधिकार कानूनों के लागू होने के मामले में संसद् सदस्यों को साधारण नागरिकों से किसी भी प्रकार भिन्न स्थिति में नहीं रखते, जब तक कि स्वयं संसद् के हित में ऐसा करने के लिये ठोस तथा पर्याप्त कारण न हों।

आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सभी नागरिक, जिनमे संसद् सदस्य भी आते हैं, कानून की दृष्टि मे बराबर हैं। कानून के लागू होने के विषय मे कोई संसद सदस्य, जब तक कि संविधान या कानून मे स्पष्ट रूप मे इसकी व्यवस्था न की गई हो, सामान्य नागरिक की अपेक्षा अधिक विशेषाधिकारो की मांग नही कर सकता। अतः किसी सदस्य को किसी प्रकार की आक्रामक अथवा परेशान किये जाने की कार्यवाही के विरुद्ध विशेषाधिकार तभी उपलब्ध होता है जब कि संसद् सदस्य के रूप मे अपने कर्तव्यो का निर्वहन करते समय उसके लिये कोई बाधा उपस्थित की जाये या किसी प्रकार उसको परेशान किया जाए। इसी प्रकार यदि किसी संसद् सदस्य के किये गये अपमान या उस पर लगाये गये आक्षेप का सदन के सदस्य के रूप मे उसके आचरण या चरित्र से सबंध नही है और वह सदन के कार्य के वास्तविक निष्पादन से उत्पन्न मामलो पर आधारित नही है तो संसद् के विशेषाधिकार का मामला नही बनता। सदस्यो को देश की साधारण विधियो के प्रवर्तन से छूट नही होती। एक विशिष्ट मामले मे यह निर्णय दिया गया कि किसी सदस्य को सभी नागरिको पर समान रूप से लागू होने वाली विधि द्वारा प्राधिकृत रूप से डाक को सैंसर करने और टेलीफोन पर होने वाली बातो को बीच मे सुनने के बारे मे कोई विशिष्ट विशेषाधिकार प्राप्त नही है। जब कोई व्यक्ति या कोई प्राधिकार, व्यक्तिगत रूप से सदस्यो या सामूहिक रूप से सभी के किसी विशेषाधिकार, अधिकार या उन्मुक्ति की अवहेलना करता है या उस पर कुठाराघात करता है तो उस अपराध को विशेषाधिकार भंग की सजा दी जाती है।

संवैधानिक उपबन्ध (Constitutional Provisions)

संसद के दोनो सदनो तथा उनके सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां भारत के संविधान के अनुच्छेद 105 मे उल्लिखित हैं। इस अनुच्छेद मे प्रमुख उपबन्ध यह किया गया है कि संसद् मे सदस्यो को वाक् स्वातंत्र्य प्राप्त है, संसद् मे या उसकी किसी समिति मे सदस्य द्वारा कही गई किसी बात अथवा दिये गये किसी मत के बारे मे किसी संसद्-सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय मे कोई कार्यवाही नही चलाई जा सकती। राज्यो के विधान मण्डलो और उनके सदस्यो के बारे मे ऐसा उपबन्ध अनुच्छेद 194 मे किया गया है। इनमे से कुछ विशेषाधिकार कतिपय संविधियो मे और लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियमो मे उल्लिखित हैं और कुछ अन्य देश मे विकसित प्रथाओ पर और पूर्वोदाहरणाओ पर आधारित हैं।

संविधान के अनुच्छेद 105 मे यह उपबन्ध है

(1) इस संविधान के उपबन्धो के और संसद् की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों और स्थायी आदेशो के अधीन रहते हुए, संसद् मे वाक्-स्वातंत्र्य होगा।

(2) संसद् या उसकी किसी समिति मे ससद् के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात पर दिये गये किसी मत के संबध मे उसके विरुद्ध किसी न्यायालय मे कोई कार्यवाही नही की जाएगी और किसी व्यक्ति के विरुद्ध ससद् के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रतिवेदन पत्र, मतो या कार्यवाहियो के प्रकाशन के सम्बन्ध मे इस प्रकार की कोई कार्यवाही नही की जाएगी।

(3) अन्य बातो मे ससद् के प्रत्येक सदन की और प्रत्येक सदन के सदस्यो और समितियो की शक्तिया, विशेषाधिकार और उन्मुक्तिया ऐसी होगी जो ससद समय-समय पर विधि द्वारा परिनिश्चित करे और जब तक वे इस प्रकार परिनिश्चित नही की जाती है तब तक वही होगी जो सविधान (चवालीसवा सशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 15 के प्रवृत्त होने से ठीक पहले उस सदन की और उसके सदस्यो और समितियो की थी।

(4) जिन व्यक्तियो को इस सविधान के आधार पर ससद् के किसी सदन या उसकी किसी समिति मे बोलने का और उसकी कार्यवाहियो मे अन्यथा भाग लेने का अधिकार है, उनके सबध मे खड (1), खड (2) और खड (3) के उपबन्ध उसी प्रकार लागू होगे जिस प्रकार व ससद् के सदस्यों के सबध मे लागू होते है।

अनुच्छेद 105 (3) अथवा 194 (3) मे स्पष्ट रूप मे यह उपबंधित किया गया था कि जब तक भारतीय ससद् द्वारा अन्य शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तिया विधि द्वारा परिभाषित नही की जाती तब तक "ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स" की शक्तिया, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तिया भारत की ससद् और विधान मंडलो और उनके सदस्यो के लिये उपलब्ध रहेगी। इससे अभिप्रेत है कि यदि संसद् किसी समय किसी विशिष्ट विशेषाधिकार के सबध मे कोई उपबन्ध अधिनियमित करती है तो ब्रिटेन के पूर्वोधारण उस सीमा तक भारतीय ससद् पर लागू नही होगे। परन्तु 1978 मे खण्ड (3) मे सशोधन करके यह उपबन्ध किया गया कि सविधान मे उल्लखित विशेषाधिकारो के अलावा विशेषाधिकारो के संबध मे, ससद् के प्रत्येक सदन की, उसके सदस्यो की और समितियो की शक्तिया विशेषाधिकार और उन्मुक्तिया वही होगी जो सविधान (चवालीसवां सशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 15 के प्रवृत्त होने (20.6.1979 से) ठीक पहले उस सदन की और उसके सदस्यो और समितियो की थी। इस सशोधन द्वारा वस्तुत ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स के सभी निर्देशो का लोप करके केवल शाब्दिक परिवर्तन किये गये हैं पर सार वही रहता है। कहना न होगा कि सविधान मे उल्लखित शक्तियो और विशेषाधिकारों के अलावा प्रत्येक सदन को, उसके सदस्यो और समितियो को व्यवहार मे वही

शक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त है, जो 26 जनवरी, 1950 को ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स उसके सदस्यों तथा समितियों को प्राप्त थे।

संविधान (संशोधन) विधेयक पर बोलते हुए, अनुच्छेद 105 (3) में संशोधन करने का प्रयोजन बताते हुये तत्कालीन विधि मंत्री ने कहा था "कि मूल उपबन्ध, जिसका कि कोई विकल्प नहीं था, में ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स का उल्लेख किया गया था। अब भारत जैसा स्वाभिमानी देश अपने पावन संवैधानिक दस्तावेज में किसी विदेशी संस्था का उल्लेख नहीं करना चाहता ... इसलिये इस खण्ड के द्वारा यह शाब्दिक परिवर्तन किया जा रहा है ताकि एक विदेशी संस्था का उल्लेख न रहे।'

मुख्य विशेषाधिकार

संसद्, उसके सदस्यों तथा समितियों के कुछ विशेषाधिकारों का स्पष्ट उल्लेख संविधान, कुछ कानूनों और सदन के प्रक्रिया संबंधी नियमों में किया गया है, कुछ इस देश में विकसित परिपाटियों पर आधारित हैं। इनके आधार पर संसदीय विशेषाधिकारों सम्बन्धी सूचियां तैयार की जा सकती हैं परन्तु ऐसी कोई सूची व्यापक नहीं हो सकती। कुछ महत्वपूर्ण विशेषाधिकार ये हैं —

(एक) संसद् में वाक् स्वतन्त्रता (संविधान का अनु. 105 (1))

(दो) संसद् में या उसकी किसी समिति में किसी सदस्य द्वारा कही हुई किसी बात या दिये गये मत के आधार पर किसी भी न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति (संविधान का अनुच्छेद 105 (2))

(तीन) किसी व्यक्ति द्वारा संसद् के किसी सदन के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के प्रकाशन के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कार्यवाही लिये जाने से उन्मुक्ति (संविधान का अनुच्छेद 105 (2))

(चार) न्यायालयों द्वारा संसद् की कार्यवाहियों की जांच करने का निषेध (संविधान का अनुच्छेद 121)

(पांच) सदन के सत्र के दौरान तथा उसके आरम्भ होने के 40 दिन पहले और उसके समाप्त होने के चालीस दिन बाद तक दीवानी मामलों में सदस्यों की गिरफ्तारी से उन्मुक्ति (दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 135 क)

(छह्) सदस्यों का जूरी की सदस्यता के दायित्व से छूट (दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 (क))

(सात) किसी सदस्य की गिरफ्तारी, नजरबंदी, दोष सिद्धि, कारावास तथा रिहाई के संबंध में तुरन्त सूचना प्राप्त करने का सदन का अधिकार (लोक सभा प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, सातवां संस्करण नियम 229 और 230)

(आठ) अध्यक्ष की अनुज्ञा प्राप्त किये बिना सदन के परिसर मे गिरफ्तारी और किसी कानूनी आदेशिका की तामील पर रोक (लोक सभा प्रक्रिया तथा कार्य सचालन नियम सातवा सस्करण, नियम 232 और 233)

(नौ) सदन की किसी गोपनीय बैठक की कार्यवाहिया या फैसले प्रकट करने पर रोक (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य सचालन नियम, सातवा सस्करण, नियम 252)

(दस) सदन के सदस्य या अधिकारी सदन की अनुमति के बिना सदन की कार्यवाहियो के सबध मे किसी न्यायालय मे साक्ष्य नही देंगे या दस्तावेज पेश नही करेंगे (दूसरी लोक सभा द्वारा 13 सितम्बर, 1957 को स्वीकृत किया गया),

(ग्यारह) सदन के सदस्य या अधिकारी सदन की अनुमति के बिना दूसरे सदन के या उसकी किसी समिति के समक्ष या राज्य विधान मण्डलो के किसी सदन के या किसी समिति के समक्ष साक्षियो के रूप मे उपस्थित नही होंगे और उन्हे सम्बन्धित सदनो की सम्मति के बिना ऐसा करने पर मजबूर नही किया जा सकता । (दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति का छठा प्रतिवेदन जो लोक सभा द्वारा 17 सितम्बर, 1958 को स्वीकृत किया गया),

(बारह) सभी ससदीय समितियो को उनके द्वारा की जाने वाली किसी जाच के प्रयोजन के लिये सगत व्यक्तियो को आहूत करने, पत्रो एव अभिलेखो को मागने की शक्ति प्राप्त है । किसी ससदीय समिति द्वारा किसी साक्षी को बुलाया जा सकता है और उसे समिति के प्रयोग के लिये अपेक्षित दस्तावेज पेश करने के लिये कहा जा सकता है (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-सचालन नियम, सातवा सस्करण, नियम 269 और 270),

(तेरह) किसी ससदीय समिति के समक्ष किसी साक्षी की जाच के समय समिति उसे शपथ दिला सकती है या प्रतिज्ञान करा सकती है (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम सातवा सस्करण नियम 272),

(चौदह) किसी ससदीय समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य और उसका प्रतिवेदन एवं कार्यवाहियां किसी के द्वारा तब तक प्रकट या प्रकाशित नहीं जा सकती तब तक कि उन्हे सभा पटल पर नहीं रख दिया जाता (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य सचालन नियम, सातवा संस्करण, नियम 275),

उपरोक्त विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के प्रतिरिक्त प्रत्येक सदन को कुछ शक्तियां प्राप्त हैं जो उनके विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के संरक्षण के लिए आवश्यक है। वे शक्तियां निम्नलिखित हैं :—

(एक) व्यक्तियों को चाहे वे सदन के सदस्य हों या नहीं, सदन के विशेषाधिकार भंग करने या अवमान के लिये दोषी सिद्ध करने की शक्ति,

(दो) साक्षियों को उपस्थित होने के लिये बाध्य करने और पत्र एवं दस्तावेज मांगने की शक्ति,

(तीन) अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य संचालन को स्वयं विनियमित करने की शक्ति (संविधान का अनुच्छेद 118),

(चार) अपने वाद-विवाद और कार्यवाही वृत्तान्त के प्रकाशन पर रोक लगाने की शक्ति (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, सातवां संस्करण, नियम 249),

(पांच) बाहर के व्यक्तियों की सदन में उपस्थिति पर रोक लगाने की शक्ति (लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम, सातवां संस्करण, नियम 248)

संविधान के अनुच्छेद 105 में संसद में वाक् स्वतंत्रता का विशेषाधिकार और सदस्यों को संसद या उसकी किसी समिति में "उनके द्वारा कही गयी किसी बात या किये गये काम के संबंध में किसी न्यायालय की कार्यवाही" से उन्मुक्ति का उपबन्ध विशिष्ट रूप से किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 19 में सभी नागरिकों को भी वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार प्राप्त है। किन्तु जहां अनुच्छेद 105 और 194 में सांसदों और विधान मण्डलों के सदस्यों के बोलने की स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया गया है वहां अनुच्छेद 19 के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य का अधिकार युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अध्यधीन है। उदाहरणार्थ अपमान संबंधी विधि के अध्यधीन यदि कोई साधारण व्यक्ति कोई अपमानजनक बात कहता है तो उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है परन्तु यदि कोई संसद् सदस्य सदन में या उसकी समितियों में बोलता है तो उसके विरुद्ध इस आधार पर कार्यवाही नहीं की जा सकती कि उसका भाषण अपमानजनक या मानहानिकारक था।

सांसद अपने निर्वाचन क्षेत्र के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनको संसद में उन लोगों की शिकायतें पेश करनी होती हैं, लोक महत्व के मामले उठाने होते है अतः उनकी वाक्-स्वतंत्रता पर कोई निर्बन्धन नहीं लगाया जा सकता। मात्र इसके कि उन्हें सदन के या सम्बन्धित समितियों

के जिसके कि वे सदस्य होते हैं, प्रान्तरिक अनुशासन में रहना होता है। वे किसी बाहरी अधिकारी के प्रति जवाबदेह नहीं होते है। कोई सदस्य संसद् में अपनी किसी बात या भाषण के सम्बन्ध में सभा के अनुशासन के ही अधीन है और उनके सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में कोई दीवानी या फौजदारी कार्यवाही उसके विरुद्ध नही की जा सकती। संसद् या उसकी समिति में कही गयी किसी बात या दिये गये किसी मत के सम्बन्ध में सम्पूर्ण विशेषाधिकार दिया गया है जिससे कि सदस्य अपनी बात कहते हुए डर नही और यथार्थ रूप से अपने विचार प्रकट करें। इस प्रकार सदस्य को न्यायालयों की कार्यवाही से पूरा संरक्षण प्रदान किया गया है। उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नही की जा सकती क्यों कि सदन में दिये गये भाषण विशेषाधिकार के अन्तर्गत आते हैं और अनुच्छेद 122 में संसद् की कार्यवाहियों की न्यायालयों द्वारा किसी जाच की विशेष रूप से मनाही है। सदन में जो भी बात कही जाय या काम किया जाए उसके सम्बन्ध में सदन में कार्यवाही हो सकती है। अतः 105 के अन्तर्गत सदस्यों को जो वाक्-स्वतन्त्रता दी गयी है वह संविधान के केवल उन्हीं उपबन्धो के अधीन है जो संसद् की प्रक्रिया को विनियमित करते है। इसके अतिरिक्त उस पर सभा के नियम तथा स्थायी आदेश लागू होते हैं। लेकिन इस पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही लग सकता जो कि अनुच्छेद 19(2) के अन्तगत कानून द्वारा किसी साधारण नागरिक की वाक्-स्वतन्त्रता पर लगाया गया हो। सदस्यों द्वारा अपने संसदीय कर्तव्यों का निर्वहन करते हुये कही गई किसी बात या किये गये किसी कार्य के सम्बन्ध में संसद् के बाहर कोई जाच सदस्यो के अधिकारों में गम्भीर हस्तक्षेप होगा।

परन्तु सदस्यों को प्राप्त वाक् स्वातंत्र्य का अधिकार अबाध अधिकार नही है। वह संविधान के उपबन्धों के अध्यधीन है। संसद् में चर्चा पर भी निर्बन्धन लगे है। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 121 में उपबन्धित है कि उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के, अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में किये गये आचरण के विषय में संसद् में कोई चर्चा उपबन्धित रीति से उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव पर ही होगी, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार लोक सभा के प्रक्रिया सम्बन्धी तथा कार्य संचालन नियमो के नियम 352 और 353 में अन्य बातों के साथ-साथ किसी सदस्य द्वारा किसी व्यक्ति के विरुद्ध मानहानिकारक या अपराधारोपक स्वरूप का आरोप लगाने पर रोक लगाई गई है। जब कोई सदस्य किसी प्रतिबन्ध का उल्लंघन करता है तो अध्यक्ष ऐसे सदस्य के आचरण की ओर सभा का ध्यान दिलाने के बाद उस सदस्य को अपना भाषण बन्द

करने का निर्देश कर सकता है या आदेश दे सकता है कि सदस्य द्वारा प्रयोग में लाये गये मानहानिकारक, अशिष्ट, असंसदीय या अभद्र शब्द वापस लिये जायें या उन्हें सदन के कार्यवाही वृत्तान्त से निकाल दिया जाए। उक्त आदेश का घोर उल्लंघन किये जाने पर अध्यक्ष सदस्य को बाहर चले जाने का निर्देश भी दे सकता है और/अथवा सदस्य को सदन की सेवा से निलम्बित करने की कार्यवाही आरम्भ कर सकता है।

सदस्यों को अपना संसदीय कार्य करने में किसी प्रकार की बाधा डालकर रोका नहीं जा सकता। उसे जिस सदन का वह सदस्य है उसके सत्र के दौरान या उसके प्रारम्भ से चालीस दिन पहले या समाप्त होने के चालीस दिन बाद, किसी फौजदारी अपराध के आरोप या निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तारी के अतिरिक्त, अन्य किसी प्रकार गिरफ्तार किया या करवाया जाना है तो यह सभा का विशेषाधिकार भंग तथा अवमान होगा। इसी प्रकार यदि कोई सदस्य संसद् या उसकी किसी समिति का कोई काम करने के लिए नयी दिल्ली आ रहा हो तो नयी दिल्ली से बाहर किसी स्थान पर उसे परेशान किया जाना या कोई बाधा उपस्थित किया जाना भी विशेषाधिकार का भंग करना होगा। सदस्यों को प्राप्त इस विशेषाधिकार का उद्देश्य यह है कि सदस्य बिना किसी रोक टोक के संसद् की कार्यवाहियों में नियमित रूप से भाग ले सकें।

यद्यपि गिरफ्तारी से उन्मुक्ति का विशेषाधिकार फौजदारी आरोप या निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार पर लागू नहीं होता, तथापि, नियमों में यह उपबन्ध स्पष्ट रूप से किया गया है कि जब किसी सदस्य को किसी फौजदारी आरोप पर या फौजदारी अपराध के आधार पर गिरफ्तार किया जाता है या किसी न्यायालय द्वारा उसे कारावास दंड दिया जाता है या कार्यकारी आदेश के अन्तर्गत उसे नजरबन्द किया जाता है तो सम्बद्ध अधिकारी को इस बात की सूचना अध्यक्ष को तुरन्त देनी होती है। यदि सम्बद्ध अधिकारी सदन को किसी सदस्य की गिरफ्तारी, नजरबंदी या कारावास की सूचना नहीं देता तो यह सदन का विशेषाधिकार भंग होगा। यदि कोई सदस्य देश के किसी दूरस्थ स्थान पर गिरफ्तार हो, उसकी सूचना तार भेज कर अवश्य दी जानी चाहिए और बाद में पत्र भेज कर उसकी पुष्टि करनी चाहिए।

संसद् के परिसर में बन्दीकरण और वैध आदेशों के निर्वहन के बारे में उपबंधित है कि संसद् के परिसरों के भीतर अध्यक्ष/सभापति की आज्ञा प्राप्त किये बिना किसी सदस्य को बन्दी नहीं बनाया जा सकता और न ही अध्यक्ष/सभापति की अनुमति के बिना दीवानी या अपराधिक कोई कानूनी आदेशिका कोई "समन" दिये जा सकते हैं। इसी प्रकार सदन या उसकी किसी समिति के सामने पेश होने के लिए बुलाए गए किसी साक्षी को बन्दी

बनाना भी सभा का अवमान है । अतः संसद् के परिसरों के भीतर अध्यक्ष/सभापति की अनुमति के बिना किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया जा सकता क्योंकि संसद के परिसरों में केवल संसद के प्रत्येक सदन के या अध्यक्ष/सभापति के आदेश लागू होते हैं । संसद् के परिसरों में धारा 144 भी लागू नहीं की जा सकती। वहां अध्यक्ष/सभापति के आदेशों का ही अनुपालन होता है ।

सांसदों को "ज्यूरी" का सदस्य बनने के दायित्व से छूट का विशेषाधिकार प्राप्त है । इस विशेषाधिकार का उद्देश्य भी यह सुनिश्चित करना है कि सांसदों को अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किसी प्रकार की बाधा का सामना न करना पड़े । दूसरे शब्दों में सदन में सदस्य के कर्तव्य न्यायालयों तथा अन्य स्थानों में उपस्थिति के दायित्व से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं ।

सदन के किसी अधिकारी या सदन द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति अथवा सदन के आदेशों का पालन करने वाले किसी व्यक्ति के काम में बाधा डालना सभा का अवमान है । उसको सदन की अनुमति के बिना किसी सदन की कार्यवाही के संबंध में साक्ष्य देने या कोई दस्तावेज पेश करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार किसी सदस्य को, उस सदन की अनुमति के बिना जिसका वह सदस्य हो, दूसरे सदन के समक्ष साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता ।

यदि सदन या उसकी किसी समिति के आदेशों का पालन करने में लगे हुए सदन के किसी अधिकारी को बाधा पहुंचाई जाती है या उसके द्वारा अपने कर्तव्य के पालन के दौरान किए गए किसी काम के लिए उसे तंग किया जाता है तो यह सभा का विशेषाधिकार भंग तथा अवमान है । सभा या उसकी समिति के सामने पेश होने के लिए बुलाए गए साक्षी को गिरफ्तार करना सभा का अवमान है । उसी प्रकार सदन या उसकी समिति के सामने उपस्थिति के समय किसी साक्षी को बाधा पहुंचाना या साक्षी के रूप में उसके पेश होने तथा साक्ष्य के आधार पर बाद में उसको तंग करना सदन का अवमान है ।

दूसरी ओर सदन या उसकी किसी समिति के सामने किसी प्रकार का कदाचार चाहे दोष संसद् के सदस्य का हो या साधारण नागरिक, जो दर्शक दीर्घा में जाने दिये गये हों या साक्षी के रूप में समिति की बैठक में आए हों—सदन का अवमान माना जाता है। ऐसे कदाचार को सदन के सामने अव्यवस्थापूर्ण, मानहानिकारक, अनादरपूर्ण, या घृणा दर्शाने वाला व्यवहार माना जाता है। सदन या उसकी समितियों के सामने सामान्य नागरिकों और साक्षियों द्वारा कदाचार के कुछ विशेष दृष्टान्त जिनमें विशेषाधिकार भंग होता है और सदन और समिति की अवमानना होती है, ये हैं :—

(एक) सदन या उसकी समितियों की कार्यवाही में बाधा या गड़बड़ डालना,

(दो) किसी समिति की बैठक के सामने किसी साक्षी द्वारा शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से इन्कार,

(तीन) किसी साक्षी द्वारा किसी समिति के प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार, या दस्तावेज, जो उसके पास हो, पेश करने से इन्कार,

(चार) किसी समिति के सामने टालमटोल करना या झूठा साक्ष्य देना या जानबूझ कर सच्चाई छिपाना, या बार-बार समिति को गुमराह करना, और

(पांच) समिति के साथ खिलवाड़ करना, उसके प्रश्नों के अपमानजनक उत्तर देना, या नशे में धुत होकर समिति के सामने आना।

संसद की समितियों के आदेशों की अवज्ञा को सदन का अवमान समझा जाता है। समितियां भी उसी सम्मान की अधिकारी हैं जिसका कि सदन। यदि कोई व्यक्ति किसी संसदीय समिति के सदस्यों, पर आचरण पर आक्षेप करता है तो उसे विशेषाधिकार भंग करना और सदन की अवमानना करना माना जाता है।

हिरासत में रखे गये किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष, महासचिव या किसी संसदीय समिति के सभापति के नाम लिखे पत्र रोकना विशेषाधिकार भंग है। उसको विधान मण्डल के साथ पत्र व्यवहार करने अध्यक्ष तथा विशेषाधिकार समिति के सभापति को अभ्यावेदन देने का अधिकार प्राप्त है तथा किसी कार्यकारी प्राधिकारी को यह अधिकार नहीं है कि वह ऐसे पत्रों को रोक सके।

किसी संसदीय समिति की कार्यवाही, साक्ष्य या दस्तावेजों के सभा में पेश किए जाने से पहले उसकी कार्यवाही या उसके सामने दिए गए साक्ष्य या उसके सामने रखे गये दस्तावेजों के किसी अंश का प्रकाशन नहीं किया जा सकता है, यदि ऐसा किया जाता है तो वह सदन का विशेषाधिकार भंग या अवमानना करना है। इसी प्रकार किसी संसदीय समिति के प्रतिवेदन के सदन में पेश किये जाने से पहले प्रारूप प्रतिवेदन या स्वीकृत प्रतिवेदन का प्रकाशन सदन का विशेषाधिकार भंग माना जाता है।

विशेषाधिकार भंग (Breach of Privilege)- संसद सदस्यों अथवा समष्टि के रूप में सदन के अधिकारों, विशेषाधिकारों या उन्मुक्तियों की अवहेलना करना अथवा किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा उनकी आलोचना करने या उसके प्रति असम्मान प्रदर्शित करने से विशेषाधिकार भंग हो सकता है। सदन द्वारा पूरी तरह से जांच किए जाने के पश्चात् विशेषाधिकार भंग किए जाने के मामले में वैसे ही दण्ड दिया जा सकता है जैसे कि न्यायालय अपनी प्रतिष्ठा अथवा प्राधिकार की अवमानना किए जाने पर देते हैं। विशिष्ट विशेषाधिकारों के भंग किये जाने के मामलों के अतिरिक्त, सभा के प्राधिकार या गरिमा के विरुद्ध आपराधिक कार्य-

वाहियां तथा उनके विभिन्नस्मत आदेशों की अवज्ञा या उसके सदस्यों अथवा अधिकारियों के बारे में अपमानजनक लेख आदि का प्रकाशन करना भी सभा के अपमान के रूप में दण्डनीय है ।

सदन की अवमानना: सदन के अवमान की सामान्यतः इस प्रकार परिभाषा दी जा सकती है कि 'ऐसा कोई कार्य या भूल-चूक, जो संसद् के किसी सदन के काम में उसके कृत्यों के निर्वहन में बाधा या अड़चन डालती है अथवा सदन के किसी सदस्य या अधिकारी के मार्ग में उसके कर्तव्य के पालन में बाधा या अड़चन डालती है अथवा जिसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ऐसे परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं, संसद् का अवमान माना जाता है ।" विशेषाधिकार भंग और सदन की अवमानना में बहुत थोड़ा सा अन्तर है । विशेषाधिकार भंग के सभी मामले अवमान के मामले हैं लेकिन सम्भव है कि कोई व्यक्ति सदन के किसी विशेषाधिकार को भंग तो न करे लेकिन फिर भी वह अवमान का दोषी हो, जैसे कि कोई व्यक्ति किसी समिति की बैठक में पेश होने के आदेश की अवहेलना करे या किसी सदस्य के आचरण या चरित्र पर आक्षेप प्रकाशित कर दे। किसी परिस्थिति में कोई विशेष कार्य अवमानना हो सकता है तो किसी अन्य परिस्थिति में वही कार्य अवमानना नहीं भी हो सकता । इस बात का निर्णय संसद का सम्बन्धित सदन ही कर सकता है कि अवमानना की गयी या नहीं । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संसद् के दोनों सदनों और उनकी समितियों की सर्वोच्चता, प्राधिकार या गरिमा पर किया गया कोई भी प्रहार उनकी अवमानना है । संसद् के कुछ महत्वपूर्ण अवमानों के उदाहरण इस प्रकार हैं —

सदनों, उनकी समितियों अथवा सदस्यों पर आक्षेप करने वाले भाषण या लेख,

अध्यक्ष/सभापति के कर्तव्यों के पालन के संबंध में उनके चरित्र या निष्पक्षता पर आक्षेप,

सदनों की कार्यवाहियों के झूठे तथा विकृत वृत्तान्त का प्रकाशन, पीठासीन अधिकारियों द्वारा सदनों की कार्यवाहियों में से निकाले गये अंशों का प्रकाशन, किसी संसदीय समिति द्वारा अपने प्रतिवेदन में पक्षपात किये जाने का आरोप लगाना,

सदनों में सदस्यों के आचरण को लेकर उनकी निन्दा या सदस्यों के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करते समय या सदनों में या उनकी किसी समिति की बैठकों में उपस्थित होने के लिए जाते हुए या वहां से आते हुए सदस्यों के मार्ग में बाधा पहुंचाना,

सदस्यों के संसदीय कार्य पर असर डालने के लिए उनको घूस देने की पेशकश करना,

सदस्यों के संसदीय आचरण के सम्बन्ध में उनको नाम पट्टे वाला, किसी सदस्य द्वारा या साक्षी द्वारा सदनों के समक्ष या उनकी किसी समिति के समक्ष जानबूझ कर गलत या गुमराह करने वाला साक्ष्य देना, और

सदनों के समक्ष या उनकी किसी समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले किसी साक्षी के लिए बाधा डालना या उसे परेशान करना,

मामले जिनमें सदनों का विशेषाधिकार भंग नहीं होता : सदनों के कार्यों से संबंधित विभिन्न मामलों का समय से पहले प्रचार करना एक अनुचित कार्य है, लेकिन सदन का विशेषाधिकार भंग या अवमान नहीं है । ऐसे अनेक कार्य हो सकते हैं जो अनुचित हों लेकिन जो सभा के विशेषाधिकार भंग या अवमान की परिभाषा में नहीं आते । उदाहरणार्थ, दल की बैठकों में मन्त्रियों द्वारा दिए गए वक्तव्य विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं । यदि लोकहित के विषयों के संबंध में वक्तव्य सदन में नहीं, बल्कि सदन के बाहर दिए जायें, तो उससे संसद् के किसी विशेषाधिकार की क्षति नहीं पहुंचती । ऐसे कार्य परिपाटी तथा औचित्य के विरुद्ध हैं, लेकिन उनके आधार पर विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता । नियमों, परिपाटियों तथा प्रथाओं के उल्लंघन को विशेषाधिकार भंग नहीं माना जाता । यदि नियम आदि का उल्लंघन किया जाये तो उपयुक्त प्रस्ताव के माध्यम से सभा या अध्यक्ष का रोष व्यक्त किया जा सकता है ।

विशेषाधिकार भंग, अवमानना आदि के लिए दण्ड :

संसद् के परिसरों में किसी दोष के लिए सामान्य न्यायालयों द्वारा दण्ड दिये जाने का प्रावधान नहीं है । वहां पीठासीन अधिकारियों का आदेश चलता है । स्वयं सदन अपने विशेषाधिकारों की रक्षा करते हैं । सदन के विशेषाधिकार को भंग करने के लिए दोषी पाये गये किसी व्यक्ति को सदन स्वयं उसकी भर्त्सना करके या ताडना करके या निर्धारित अवधि के लिए कारावास द्वारा दण्डित कर सकता है । जिन मामलों में विशेषाधिकार भंग या सदन की अवमानना का अपराध इतना गम्भीर न हो कि उसके लिए कारावास को ही ठीक दण्ड समझा जाए, उस व्यक्ति को सदन की "बार" में बुलाया जा सकता है और पीठासीन अधिकारी सदन के आदेश से उसकी भर्त्सना कर सकता है या ताडना दे सकता है । ताडना देना अपने आप में नरम किस्म का दण्ड है और भर्त्सना करना अधिक गम्भीर किस्म का दण्ड है जिसके द्वारा सदन की अप्रसन्नता व्यक्त की जाती है । विशेषाधिकार भंग या सदन की अवमानना के लिए दोषी पाये जाने वाले व्यक्तियों को सदन ऐसी अवधि के लिए कारावास का दण्ड दे सकता है जो साधारणतया सदन के अधिवेशन की अवधि से अधिक नहीं होती । दर्शकों द्वारा दर्शक दीर्घाओं से नारे लगाकर और/अथवा इश्तिहार फेंक कर सदन की अवमानना करने के कारण, दोनों सदनों ने समय-समय पर अपराधियों को सदन के उस दिन स्थगित होने तक कारावास का दण्ड दिया है ।

विशेषाधिकार भंग के उन मामलों में जो कानून के अन्तर्गत भी अपराध है, यदि सदन आवश्यक समझता है कि उसके द्वारा दिया जाने वाला दण्ड अपराध की तुलना में अपर्याप्त है, अथवा किसी अन्य कारण से सदन की राय में कानूनी कार्यवाही करना अनिवार्य हो, तो वह अपनी कार्यवाही के स्थान पर या उसके अतिरिक्त उस व्यक्ति पर न्यायालय में मुकदमा चलाये जाने का निर्देश दे सकता है।

अपने सदस्यों के मामलों में सदन दो और दण्ड दे सकता है और चेतावनी तथा भर्त्सना से अधिक कड़ा रोष प्रकट कर सकता है। वह है सदस्यों को सदन की सेवा से निलम्बित करना और निष्कासित करना। सदन का दाण्डिक अधिकार क्षेत्र अपने सदस्यों तक और उनके सामने किये गये अपराधों तक ही सीमित न होकर सदन की सभी अवमाननाओं पर व्याप्त होता है चाहे अवमानना सदस्यों द्वारा की गई हो या ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो सदस्य न हों। सदन का विशेषाधिकार भंग करने या उसकी अवमानना करने के कारण व्यक्तियों को दण्ड देने की सदन की यह शक्ति संसदीय विशेषाधिकार की नींव है। सदन अपनी दाण्डिक शक्तियों का प्रयोग बड़े गम्भीर मामलों में ही करता है। सदन की ऐसी परम्परा भी रही है कि दोषी व्यक्तियों द्वारा स्पष्ट रूप से और बिना किसी शर्त के दिल से व्यक्त किया गया खेद सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और साधारणतया सदन अपनी गरिमा को देखते हुए ऐसे मामलों पर आगे कार्यवाही न करने का निर्णय करता है।

विशेषाधिकार के प्रश्नों सम्बन्धी प्रक्रिया ·

विशेषाधिकार के प्रश्नों को निपटाने की प्रक्रिया लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमों (नियम 222 से 228 और नियम 313 से 316) में दी गयी है। कोई सदस्य, अध्यक्ष की अनुमति से, किसी सदस्य के या सदन के या उसकी किसी समिति के विशेषाधिकार का भंग अन्तर्ग्रस्त होने वाला कोई प्रश्न उठा सकता है। विशेषाधिकार का भंग किये जाने का प्रश्न उठाने वाले सदस्य को उसकी लिखित सूचना उस दिन की बैठक प्रारम्भ होने से पूर्व जिस दिन कि इस प्रश्न को उठाने का उसका विचार हो, महासचिव को देनी होती है। यदि उठाया जाने वाला प्रश्न किसी दस्तावेज पर आधारित हो, तो सूचना के साथ वह दस्तावेज भी संलग्न किया जाना चाहिए। सूचना प्राप्त होने पर अध्यक्ष द्वारा मामले पर विचार किया जाता है। अध्यक्ष विशेषाधिकार का प्रश्न सभा में उठाये जाने के लिए अपनी सम्मति दे सकता है या इन्कार कर सकता है। तथापि, वह निर्णय करने से पूर्व, कि क्या विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाये जाने वाले प्रस्तावित मामले पर सभा में विचार किये जाने की आवश्यकता है और क्या इस मामले को सभा में उठाये जाने की अनुमति दी जानी चाहिए, अध्यक्ष उस व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध अभियोग लगाया गया है, अपना स्पष्टीकरण अध्यक्ष के समक्ष देने का अवसर

प्रदान कर सकता है। तत्पश्चात् संबंधित सदस्य को अध्यक्ष के निर्णय की सूचना दी जाती है। अध्यक्ष के इस निर्णय की कि उसने मामले को सदन में उठाये जाने की सम्मति नहीं दी है सूचना सदस्य को दिये जाने के पश्चात् उस सदस्य को सभा में वह मामला उठाने की अनुमति नहीं होती है। तथापि, यदि सदस्य सन्तुष्ट न हो, तो वह अपना मामला स्पष्ट करने के लिए अध्यक्ष को उसके कक्ष में जाकर मिल सकता है। यह प्रक्रिया इसलिए निर्धारित की गई है कि जो मामला प्रथम दृष्टया गृहीत करने योग्य न हो उसे उठाने में सदन का समय व्यर्थ न जाए। जहां मामला अविलम्बनीय स्वरूप का हो और सूचना देने का समय न हो तो अध्यक्ष लिखित पूर्व सूचना के बिना सदस्य को विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति दे सकता है।

इस प्रश्न का फैसला केवल सदन कर सकता है कि जिस मामले की शिकायत की गई है क्या वह वास्तव में विशेषाधिकार भंग का या सदन की अवमानना का मामला है, क्योंकि केवल सदन ही अपने विशेषाधिकारों का स्वामी है। अध्यक्ष जब किसी मामले को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में सदन में उठाए जाने के लिए अपनी सम्मति देता है तो वह केवल यह विचार करता है कि क्या यह मामला अग्रतर जांच योग्य है और क्या उसे सदन के समक्ष लाया जाना चाहिए। यदि अध्यक्ष सदन में विशेषाधिकार का मामला उठाये जाने के लिए अपनी अनुमति प्रदान कर देता है तो जिस सदस्य ने सूचना दी होती है वह अध्यक्ष द्वारा बुलाए जाने पर विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने के लिए सभा की अनुमति मांगता है। ऐसी अनुमति मांगते समय, संबंधित सदस्य को विशेषाधिकार के प्रश्न से संगत केवल एक संक्षिप्त वक्तव्य देने की अनुमति प्रदान की जाती है। यदि अनुमति दिये जाने के संबंध में आपत्ति की जाती है तो अध्यक्ष उन सदस्यों से जो अनुमति दिये जाने के पक्ष में होते हैं अनुरोध करता है कि वे अपने स्थानों पर खड़े हो जायें। यदि तद्नुसार पच्चीस या अधिक सदस्य खड़े हो जाते हैं, तो यह माना जाता है कि सदन ने मामले के उठाये जाने की अनुमति दे देती है और अध्यक्ष घोषणा करता है कि अनुमति दी जाती है, अन्यथा अध्यक्ष सदस्य को सूचित करता है कि उसे मामला उठाने के लिए सदन की अनुमति नहीं है।

सदन में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति केवल उसी सदस्य द्वारा मांगी जा सकती है, जिसने विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना दी हो। वह अपनी ओर से किसी अन्य सदस्य को ऐसा करने के लिए प्राधिकृत नहीं कर सकता है। विशेषाधिकार के प्रश्न का कार्य-सूची की अन्य मदों के ऊपर प्राथमिकता दी जाती है। तद्नुसार विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति प्रश्नों के पश्चात् और कार्य-सूची की अन्य मदों को लिये जाने से पूर्व मांगी जाती है। तथापि, अध्यक्ष ऐसे अविलम्बनीय मामलों को जिन पर सभा द्वारा तुरन्त विचार किये जाने की आव-

आवश्यकता हो, किसी बैठक के दौरान प्रश्नों को निपटाये जाने के पश्चात्, किसी भी समय उठाने की अनुमति दे सकता है।

विशेषाधिकार का प्रश्न उठाये जाने के लिए सदन द्वारा अनुमति प्रदान किए जाने के पश्चात् उस मामले पर सदन द्वारा स्वयं विचार और विनिश्चय किया जा सकता है या उसे सदन द्वारा किसी सदन के प्रस्ताव पर परीक्षण, अन्वेषण और प्रतिवेदन के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपा जा सकता है। सामान्य प्रथा यह है कि शिकायत वाला मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाता है और सदन अपना निर्णय समिति का प्रतिवेदन पेश किये जाने तक स्थगित रखता है। जहां सदन यह देखता है कि मामला बहुत ही मामूली है या अपराधी ने पर्याप्त क्षमा याचना कर ली है, उस में आगे कोई कार्यवाही न करने का निर्णय करके सदन स्वयं उस मामले को निपटा देता है।

जब समिति का प्रतिवेदन (रिपोर्ट) सदन में पेश कर दिया जाता है तो समिति का कोई अन्य सदस्य यह प्रस्ताव रख सकता है कि रिपोर्ट पर विचार किया जाये। प्रतिवेदन पर विचार किये जाने के पश्चात्, समिति का सभापति या कोई अन्य सदस्य प्रस्ताव कर सकता है कि प्रतिवेदन में की गई सिफारिशों के साथ सदन सहमत है या असहमत है या संशोधनों के साथ सहमत है। इस प्रस्ताव को कि समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया जाये, सामान्यतया वही पूर्ववर्तिता दी जाती है, जोकि विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को बशर्ते कि उस प्रस्ताव को लाने में देरी न की गई हो।

अपनी गरिमा के अनुरूप, संसद् के दोनों सदन विशेषाधिकार भंग के मामलों में सदन अधिकतम उदार रहे हैं। अब तक कुछ ही मामलों में कार्यवाही की गई है। उन्होंने सदैव उदार दृष्टिकोण अपनाया है और तुच्छ और महत्वहीन मामलों की ओर ध्यान देना सदन की गरिमा के अनुकूल नहीं समझा है। उनके विचार में यदि ऐसे मामलों को गम्भीरता पूर्वक लिया जाता है तो इससे उन लोगों या तत्वों को अनुचित महत्व मिलेगा जो ऐसी स्थितियां उत्पन्न करते हैं।

केवल संसद् ही अपने विशेषाधिकारों की निर्णायक :—

कभी-कभी तथाकथित "उच्चतम न्यायालय के निर्णय" का उल्लेख किया जाता है जिसकी रिपोर्ट ए आई आर 1965 उच्चतम न्यायालय 745 में प्रकाशित हुई थी। वास्तव में वह कोई निर्णय नहीं था बल्कि भारत के राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन 26 मार्च, 1964 को निर्दिष्ट किए गए विशेष मामले पर उच्चतम न्यायालय की राय थी। यह मामला विशेषाधिकार भंग करने और सदन की अवमानना करने के कारण उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा श्री केशव सिंह को कारावास का दण्ड दिये जाने, और उनको मुक्त किये जाने के लिये इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दायर की गई रिट याचिका के बारे में था जिसके कारण अनेक घटनाएं घटी और राज्य विधान मंडलों और उनके

सदस्यों की शक्तियों एवं विशेषाधिकारों के संबंध में उच्च न्यायालय और उसके न्यायाधीशों की शक्तियों एवं अधिकार क्षेत्र संबंधी विधि के महत्वपूर्ण और जटिल प्रश्न उठ खड़े हुए।

भारत में न्यायालयों ने यह बात मानी है कि किसी विशेष मामले में विशेषाधिकार भंग हुआ है या नहीं हुआ है इस प्रश्न का फैसला करने का अधिकार केवल संसद् या राज्य विधानमण्डल के सदन का है। यह भी निर्णय दिया गया है कि अवमानना करने के कारण दण्ड देने की शक्ति वैसे ही है जैसे कि हाउस आफ कामन्ज की है और उस शक्ति के प्रयोग की छानबीन करने के लिए कोई न्यायालय सक्षम नहीं हो सकता।

1959 में, सर्चलाईट मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया —

"अनुच्छेद 194 के खण्ड(2) के उपबन्धों के अनुसार खण्ड(1) में निदिष्ट वाक्-स्वातंत्र्य उस वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से भिन्न है जिसकी गारंटी अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन दी गई है और उसमें अनुच्छेद 19 के खण्ड(2) द्वारा परिकल्पित किसी विधि द्वारा किसी भी तरह कमी नहीं की जा सकती।"

"अनुच्छेद 105(2) और 194(2) के उपबन्ध संवैधानिक विधियां हैं न कि संसद् या राज्य विधानमण्डलों द्वारा बनाई गई साधारण विधियां और वे उसी प्रकार सर्वोच्च हैं जिस प्रकार भाग तीन [मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद] के उपबन्ध हैं।"

"सुसंगत अर्थान्वियन का सिद्धान्त अवश्य अपनाया जाना चाहिए और उसी प्रकार अर्थ लगाये जाने चाहिए कि अनुच्छेद 19(1)(क) के सम्बन्ध, जो सामान्य हैं, अनुच्छेद 194(1) और इसके खण्ड(3) के बाद वाले विशेष भाग के अधीन होने चाहिए।"

1965 में उच्चतम न्यायालय ने, 1964 के केशव सिंह के मामले में अपनी परामर्शदात्री राय में ये टिप्पणियां की थी

"सर्चलाईट मामले में बहुमत के निर्णय का यह अर्थ लगाना सही नहीं होगा कि उस के द्वारा सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किया गया है कि जहां कहीं अनुच्छेद 194(3) के बाद वाले भाग के उपबन्धों और भाग(3) में प्रत्याभूत मूल अधिकारों के किसी भी उपबन्ध के बीच टकराव हो तो बाद में उल्लिखित उपबन्ध पहले उल्लिखित उपबन्धों के अधीन होगा। अतः बहुमत के निर्णय का यही अर्थ लगाना चाहिए कि यह फैसला दिया गया है कि अनुच्छेद 19(1)(क) लागू नहीं होगा और अनुच्छेद 21 लागू होगा।

"अनुच्छेद 194 के खण्ड(3) में किये गये उपबन्धों के प्रभाव के संबंध में जब कभी ऐसा प्रतीत हो कि उक्त उपबन्धों और मूल अधिकारों सम्बन्धी उपबन्धों के बीच टकराव है तो सुसंगत अर्थान्वियन का नियम अपना कर टकराव का समाधान करने

का प्रयास करना होगा।"

यहां यह बता दिया कि सर्चलाईट मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित मार्गदर्शी सिद्धान्त ऐसे सभी मामलों में लागू होने वाले माने गये हैं।

भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के 11 और 12 जनवरी, 1965 को बम्बई में हुए सम्मेलन में उच्चतम न्यायालय की राय पर विचार किया गया। सम्मेलन ने सर्वसम्मति से एक संकल्प स्वीकृत किया जिसमें यह विचार व्यक्त किया कि संविधान के निर्माताओं के आशय पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए, जिसमें किसी सन्देह की गुंजायश न रहे, अनुच्छेद 105 और 194 में उपयुक्त संशोधन किये जाने चाहिए ताकि विधानमण्डलों, उनके सदस्यों और समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकार एवं उन्मुक्तियां किसी भी मामले में संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद के अध्यधीन या अधीन न समझी जायें।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने केशवसिंह मामले में 10 मार्च, 1965 के अपने निर्णय में, अर्थात्, उच्चतम न्यायालय की परामर्शदात्री राय प्राप्त होने के पश्चात् दिये गये निर्णय में, ये टिप्पणियाँ कीं

1 "प्राधिकार के अनुसार और संविधान के संगत उपबन्धों पर विचार करने पर, हमारी राय है कि यही उचित है कि विधान सभा को, अनुच्छेद 194(3) के कारण, अपनी अवमानना किये जाने पर दण्ड देने की वही शक्ति प्राप्त है जोकि हाउस आफ कामन्ज को प्राप्त है।"

(2) "हमारी राय है कि संविधान के अनुच्छेद 22(2) के उपबन्ध सक्षम प्राधिकारी द्वारा दोषसिद्धि के और कारावास का दण्ड लागू किए जाने के अनुसरण में नजरबन्दी पर लागू नहीं हो सकते।"

(3) "हम चूंकि पहले ही निर्णय दे चुके हैं कि विधान सभा को उसकी अवमानना किये जाने के कारण प्रार्थी को दण्ड देने की शक्ति प्राप्त है और चूंकि विधान सभा ने अनुच्छेद 208(1) के अधीन अपनी प्रक्रिया तथा कार्य संचालन के नियम बनाये हैं, अतः प्रार्थी का दण्डित किया जाना और उसको वैयक्तिक स्वतन्त्रता से वंचित किया जाना संविधान के अनुच्छेद 21 के अर्थों में विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुकूल ही ठहराया जा सकता है।"

(4) "एक बार जब हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि विधान सभा को उसकी अवमानना किये जाने के कारण दण्ड देने और प्रार्थी पर दण्ड को लागू करने की शक्ति है और ऐसा करना उसके अधिकार क्षेत्र में है तो हम दण्ड के सही होने, उसके औचित्य या वैधता के प्रश्न में नहीं जा सकते। यह न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद

266 के अधीन किसी याचिका में, विधान सभा द्वारा उसकी अवमानना किये जाने के कारण प्रार्थी को दण्डित करने के फैसले के विरुद्ध अपील का फैसला नहीं कर सकता। विधान सभा अपनी प्रक्रिया स्वयं निर्धारित करती है और इस प्रश्न का फैसला केवल वही कर सकती है कि उसकी अवमानना की गई है या कि नहीं की गई है।"

इस निर्णय के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने फैसला किया कि संविधान में संशोधन करना आवश्यक नहीं है। सरकार का विचार था कि उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रकाश में विधानमंडल और न्यायपालिका स्वयं अपनी प्रथाएं विकसित करेंगी।

अतः यह ध्यान देने योग्य बात है कि सर्चलाईट मामले में उच्चतम न्यायालय ने जो निर्णय दिया था, विशेषाधिकार के मामलों में अभी तक वही निर्णय अन्तिम है।

संसदीय विशेषाधिकार और प्रेस

प्रेस के दो मुख्य कार्य हैं—एक समाचार प्रकाशित करना और दूसरा जनमत बनाना। प्रेस ही जनता को संसदीय लोकतंत्र में कार्यपालिका और विधान मंडल तथा सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दल के पारस्परिक संबंधों और उनके कार्यों से अवगत कराता है। जनता को शिक्षित करने के साथ-साथ प्रेस प्रजातन्त्र के दोषों को दूर करने में सहायता करता है। प्रेस की स्वतन्त्रता संविधान के अनुच्छेद 19/1/क के अधीन नागरिकों को प्रत्याभूत "वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य" के मूल अधिकार में अन्तर्निहित है। संसद् के वाद-विवाद या कार्यवाही के वृत्तान्त के प्रकाशन पर प्रत्येक सदन का नियंत्रण है। दोनों सदनों को अधिकार है कि वे इस वृत्तान्त के प्रकाशन का निषेध कर सकते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि जब भी आवश्यक हो, वाद-विवाद को गुप्त रख कर वाक्-स्वतंत्रता की रक्षा की जाये। यह शक्ति संविधान द्वारा व्यक्तियों को दिये गये "वाक्-स्वातंत्र्य" के अधिकार के ऊपर है। तथापि, संसद् की कार्यवाही के प्रकाशन के संबंध में संवैधानिक उन्मुक्ति कार्यवाही के समाचार पत्रों में प्रकाशन या न्यायालयों द्वारा अन्यथा प्रकाशन पर लागू नहीं होती लेकिन संसद् की कार्यवाही (प्रकाशन का संरक्षण) अधिनियम के अन्तर्गत, संसद् की कार्यवाही के मूलतः सच्चे वृत्तान्त के समाचार पत्रों में प्रकाशन को संरक्षण दिया गया है। सदन की कार्यवाही से निकाले गये अंश प्रकाशित करना विशेषाधिकार भंग करना और सदन की अवमानना करना है। संसद् के प्रत्येक सदन की कार्यवाहियों के प्रकाशन से संबंधित सभी व्यक्तियों को, यदि ऐसा प्रकाशन सदन द्वारा या सदन

के प्राधिकार से किया जाये, सविधान के अधीन, किसी न्यायालय मे कार्यवाही से पूर्ण उन्मुक्ति प्रदान की गई है। (अनुच्छेद 105(2)(1)

दोनो सदनो या उनकी समितियो के स्वरूप या कार्यवाहियों या ससद् सदस्य के रूप मे किसी सदस्य के चरित्र या आचरण पर या उसके सम्बन्ध मे कोई मानहानिकारक बात छापना या प्रकाशित करना सभा का विशेषाधिकार भग तथा अवमान है। *किन्तु, ससद् के प्रत्येक सदन की किसी कार्यवाही* की मूलरूप से सही रिपोर्ट समाचार पत्रों मे प्रकाशित करने या वायरलैस टेलीग्राफी द्वारा प्रसारित करने के लिए सांविधिक सरक्षण दिया गया है बशर्ते कि वे रिपोर्ट सार्वजनिक हित मे हो और किसी दुर्भावना से न की गई हो। (सविधान का अनुच्छेद 361क)

उक्त सरक्षण इस सीमा के साथ प्रदान किया गया है कि प्रत्येक सदन को *अपने वाद-विवाद और कार्यवाहियो के प्रकाशन का नियत्रण करने और यदि* आवश्यक हो, प्रकाशन के निषेध की शक्ति प्राप्त है। सामान्यतया सभा की कार्यवाही का वृत्तान्त छापने पर कोई प्रतिबध नही है। परन्तु जब वह वृत्तान्त *बदाशय से प्रकाशित किया जाता है, अर्थात् जब वाद-विवाद को जानबूझ कर* गलत ढग से पेश किया जाता है तो ऐसा करने वाले को सदन का विशेषाधिकार भग करने और सदन की अवमानना करने के अपराध मे दण्ड दिया जा सकता है। इसी प्रकार सदन की किसी गुप्त बैठक की कार्यवाही या निर्णयो का रहस्योद्घाटन जब तक कि सदन न उन्हें गुप्त रखने का प्रतिबन्ध हटा न लिया हो, घोर विशेषाधिकार भग माना जाता है। कारण यह है *कि प्रेस द्वारा ऐसी बात प्रकाशित* की गई है जिसका प्रकाशन न करने का आदेश सदन ने दिया है। किसी ससदीय समिति की कार्यवाही, साक्ष्य या दस्तावेजो के सदन मे पेश किए जाने से पहले उसकी कार्यवाही या उसके समक्ष दिए साक्ष्य या उसके सामने रखे गये दस्तावेजो के किसी अश का तब तक प्रकाशन नही किया जा सकता जब तक कि वह कार्यवाही या साक्ष्य या दस्तावेज सदन मे पेश नही कर दिये जाते। इसी प्रकार सदन की कार्यवाही के वृत्तान्त से जो अंश निकाल दिया गया हो, उसका प्रकाशन सदन का विशेषाधिकार भग तथा अवमान है और उसके लिए दंड दिया जा सकता है। दूसरी ओर यदि आलोचना न्यायोचित और सद्भावपूर्ण हो तो कोई कार्यवाही नही की जाती। प्राय: देखा गया है कि विधान मण्डलो की कमियो की सही आलोचना करने वाले लेखको, *वक्ताओ या व्यग्य चित्रकारो के विरुद्ध विशेषाधिकार भग* के बारे मे कार्यवाही नही की जाती।

लोक सभा द्वारा विशेषाधिकार के मामलो मे सामान्य रूप से वही रुख अपनाया जाता है जो यू.के. मे हाउस आफ कामन्ज़ का रहता है।

हाउस आफ कामन्ज (यू.के.) की संसदीय विशेषाधिकार सम्बन्धी प्रवर समिति, 1967, ने निम्नलिखित सिफारिश की थी :

"हाउस को अपने दाण्डिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग (क) किसी भी स्थिति में यथासम्भव कम से कम करना चाहिए, और (ख) तभी करना चाहिए जब वे सन्तुष्ट हो जायें कि ऐसा करना आवश्यक है जिससे कि हाउस को, उसके सदस्यों को या उसके अधिकारियों को ऐसी अनुचित रुकावट से या रुकावट डालने के प्रयास से या रुकावट डालने की धमकी से, जिससे उनके अपने-अपने कृत्यों के पालन में काफी हस्तक्षेप हो रहा हो या होने की सम्भावना हो, युक्तियुक्त संरक्षण मिल सके।"

उसके बाद, हाउस आफ कामंज की विशेषाधिकार समिति ने अपने तीसरे प्रतिवेदन (1976–77) में उक्त सिफारिश को दोहराया और हाउस आफ कामंज, यू.के. ने उसे 6 फरवरी, 1978 को स्वीकार किया।

दूसरी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने अपने तेरहवें प्रतिवेदन में अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की थी :—

"कोई भी प्रेस को या किसी नागरिक को न्यायोचित टिप्पणी करने के अधिकार से वंचित नहीं करेगा। परन्तु यदि टिप्पणियों में संसद् में सदस्यों के आचरण के कारण उनकी व्यक्तिगत रूप से आलोचना की गई हो या यदि टिप्पणियों की भाषा अशिष्ट या अपमानजनक हो तो उन्हें न्यायोचित टिप्पणियां या आलोचना नहीं माना जा सकता। प्रेस आयोग (1954) का भी यह विचार था कि "अशिष्ट या अपमानजनक भाषा में की गई टिप्पणियां अनुचित हैं।" गैर-जिम्मेदाराना सनसनीवाद भी न्यायोचित टिप्पणी की परिभाषा में नहीं आता।"

छठी लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने अपने चौथे प्रतिवेदन में यह विचार व्यक्त किया था :—

"समिति जानती है कि प्रेस की स्वतन्त्रता वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के मूल अधिकार का अभिन्न अंग है जिसकी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन सभी नागरिकों को दी गई है। समिति इस बात को महत्त्वपूर्ण मानती है कि संसदीय प्रणाली में संसद् की कार्यवाहियों की न्यायोचित ढंग से और वफादारी से प्रकाशित करने की प्रेस को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए परन्तु यदि प्रेस की स्वतन्त्रता का प्रयोग दुर्भावना से किया जाता है तो संसद् का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करे। इसके साथ ही समिति का विचार है कि संसदीय विशेषाधिकार के कारण विचारों की निर्बाध अभिव्यक्ति या न्यायोचित टिप्पणी में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए या उसे निरुत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।"

सातवीं लोकसभा की विशेषाधिकार समिति ने अपने प्रथम प्रतिवेदन में अन्य

बातो के साथ-साथ यह विचार व्यक्त किये —

"समिति का विचार है कि यदि लोकतन्त्रात्मक प्रणाली में शक्ति का प्रयोग सयम से किया जाये तो उससे सभी की गरिमा बढती है, जितना शक्तिशाली कोई *निकाय या सस्था हो उतने ही अधिक सयम की विशेषकर अपने दाण्डिक अधिकारो* के प्रयोग मे, उससे अपेक्षा की जाती है।"

विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध (Codification) करना

ससद् के सदनो तथा विधान मण्डलो और उनके सदस्यो एव समितियों की शक्तिया, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां भारत के सविधान के अनुच्छेद *105* तथा 194 के खण्ड (1) तथा (2) मे दी गयी है। अन्य बातो के साथ साथ इस अनुच्छेद के खण्ड *105(3)* मे उपबंधित है कि *"ससद् के प्रत्येक सदन और उनके सदस्यो तथा समितियो की शक्तिया, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तिया वही होगी जोकि ससद् समय-समय पर कानून बना कर परिभाषित करें,* किन्तु इस उपबन्ध के अनुसरण मे अभी तक ससद् ने प्रत्येक सदन, उसके सदस्यो तथा समितियो की शक्तियो, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियो की परिभाषा करने के लिए कोई व्यापक कानून नही बनाया। वास्तव मे ससद् का एक महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकार यह है कि विशेषाधिकारो को सहिताबद्ध न किया जाये। वह वैसे ही अपरिभाषित रहने चाहिए जैसे कि आज है और जैसे कि वे सदा रहे हैं। जहा तक इस सवैधानिक उपबन्ध का, अर्थात् *"जब तक ससद् द्वारा विधि द्वारा, परिभाषित न किये जायें"* और संसदीय विशेषाधिकारो की परिभाषा करने या उन्हे संहिताबद्ध करने के प्रश्न को सबध है, इस बारे मे मतभेद है।

इस विषय पर कानून बनाने का प्रश्न भी पीठासीन अधिकारियो के विचाराधीन रहा है। अधिकतर लोगो का मत था कि तत्सम्बन्धी कानून बनाने का कोई लाभ नही होगा बल्कि उसको सहिताबद्ध करने से विधानमडलो की प्रतिष्ठा और शक्तियो को क्षति पहुँचाने की अधिक सम्भावना है। उनका यह भी विचार था कि हाउस आफ कामन्ज नये विशेषाधिकार बनाने की अनुमति नहीं देता है और ऐसे विशेषाधिकारो को मान्यता देता है जो परम्परा से विद्यमान है। अत वर्तमान परिस्थितियों में ससदीय विशेषाधिकारो को सहिताबद्ध करना न तो आवश्यक है और न वाछनीय। विधानमडल और न्यायपालिका अपने-अपने क्षेत्रो मे सर्वोच्च है। ससद् अपने क्षेत्र मे सर्वोच्च है और न्यायपालिका अपने क्षेत्र मे। जो मामले न्यायालयो के समक्ष आते हैं उनमे विधि की व्याख्या करना न्यायपालिका का काम है। *इस सम्बन्ध मे श्री एम हिदायतुल्ला, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश* और राज्य सभा के भूतपूर्व सभापति का यह कथन स्मरण कराए जाने योग्य है :

"यदि ससद् और न्यायालय एक दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान की भावना रखते हैं तो विशेषाधिकारो के विषय पर विधि को सहिताबद्ध

करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। संहिताबद्ध विधि से उन लोगों को अधिक लाभ होगा जो संसद, उसके सदस्यों और समितियों को बदनाम करने पर तुले होते हैं और न्यायालयों को अधिकाधिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए कहा जाएगा। आज जो स्थिति है उसमें अगर दोनों तरफ उचित सूझबूझ हो तो अधिक सम्भावना यही है कि संसदीय विशेषाधिकार भंग करने और उसकी अवमानना करने के मामलों में दंड देने के संसदीय अधिकार को न्यायालयों का समर्थन मिलेगा न कि इसके विपरीत रुख अपनाया जायेगा। लिखित रूप में विधि होने से संसद् के लिए तथा न्यायालयों के लिए वह गरिमा बनाए रखना कठिन होगा जो वैध रूप से संसद् की है और जिसे न्यायालय सदा उत्साहपूर्वक वैसे ही बनाए रखेंगे जैसे कि वे अपनी गरिमा बनाए रखते हैं।"



13

सदन में व्यवहार के नियम

सदस्यों के लिए आचार संहिता

राष्ट्र की सर्वोच्च गरिमामयी विधायी संस्था के सदस्य होने के नाते सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे सदनों में और सदनों के बाहर संस्था के अनुरूप आचरण के कुछ स्तर बनाए रखें। चूंकि विधान मंडल कोई आमोद-प्रमोद की "क्लब" मात्र नहीं होता, अतः उसके सदस्यों से अपेक्षित है कि उनके व्यवहार से संसद् की गरिमा बढ़े और साथ ही में उनकी भी गरिमा बढ़े। शिष्टाचार के कुछ नियम और प्रथाएं ऐसी होती हैं जो प्रत्येक विधायी संस्था के लिए समान होती हैं। अतः उक्त संस्था के सदस्यों का आचरण उसके नियमों और प्रथाओं के विपरीत नहीं होना चाहिए और न ही किसी प्रकार से सदन की प्रतिष्ठा के विरुद्ध और उस स्तर से असंगत होना चाहिए जिसकी आशा संसद् अपने सदस्यों से करती है। सदन में कार्य व्यवस्थित ढंग से, निर्बाध रूप से कुशलतापूर्वक निपटाया जा सके और विविध विचारधाराओं को महत्व मिल सके, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज के सर्वोच्च विचार-विमर्श मंच में वातावरण का गम्भीर एवं गरिमापूर्ण होना अनिवार्य है।

संसद् के दिन-प्रतिदिन के कार्यकरण में सदस्यों द्वारा निजी व्यवहार का शिष्टाचार संबंधी कुछ नियमों का पालन करना केवल इसीलिए बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता कि सदन का कार्य निर्बाध रूप से और शिष्टता से चलता रहे बल्कि इसलिए भी कि संसद् और उसके सदस्यों की गरिमा बनी रहे। ये नियम दोनों सदनों के प्रक्रिया तथा गरिमा संबंधी नियमों पर आधारित हैं और प्रथाओं तथा पीठासीन अधिकारियों द्वारा समय-समय पर दिये गये विनिर्णयों से धीरे-धीरे इनका विकास हुआ है।[1]

सदन में व्यवहार

बैठक प्रारम्भ होने पर - सत्र के दौरान सदस्यों से यह आशा की जाती है कि प्रति-दिन सदन की बैठक प्रारम्भ होने के लिए जो समय निर्धारित हो उससे और

मध्याह्न भोजनोपरान्त उसके पुनः समवेत होने के समय से कुछ मिनट पूर्व वे अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लें। अध्यक्ष के सदन में प्रवेश के समय जब मार्शल अध्यक्ष के आगमन की घोषणा करता है और अध्यक्ष लोक सभा चेम्बर में प्रवेश करता है तो सदस्यों को आपस में बातचीत बंद कर देनी चाहिए और अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो जाना चाहिए और अध्यक्ष जब अपने स्थान पर आते हुए सदन के सभी ओर झुक कर अभिवादन करता है तो सदस्यों को भी अध्यक्ष की ओर झुक कर अभिवादन करना चाहिए। अन्य सदस्य जो उसी समय सदन में प्रवेश कर रहे हों, उन्हें तब तक मार्ग में खामोशी से खड़े रहना चाहिए जब तक कि अध्यक्ष अपना स्थान ग्रहण न करलें। ऐसा अध्यक्ष पीठ के प्रति सम्मान स्वरूप किया जाता है।

जब सदन की बैठक हो रही हो तो प्रत्येक सदस्य को मर्यादापूर्वक और इस ढंग से लोक सभा चैम्बर में प्रवेश करना और वहां से प्रस्थान करना चाहिए कि उससे सदन की कार्यवाही में बाधा न आये। सदन में प्रवेश करते समय या सदन से बाहर जाते समय और अपने स्थान पर बैठते समय या वहां से उठते समय भी सदस्य को अध्यक्ष पीठ के प्रति नमन करना चाहिए।[2] इस प्रकार की आदर भावना समूचे सदन के प्रति होती है न कि अध्यक्ष पीठ पर विराजमान व्यक्ति के प्रति। सदन के सामूहिक स्वरूप के प्रतीक के रूप में अध्यक्ष पीठ के प्राधिकार का सम्मान करना संसदीय आचरण का मूल सिद्धान्त है।

बोलते समय आचरण सदन की कार्यवाही को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए सदस्यों को एक समय में केवल एक सदस्य के बोलने का सिद्धान्त अपनाना चाहिए। पीठासीन अधिकारी को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सदस्यों को एक एक कर बोलने के लिए पुकारे। जब कोई सदस्य बोलना चाहे तो उसको अपने स्थान पर खड़ा हो जाना चाहिए और अध्यक्ष की दृष्टि में आने के पश्चात् उसके द्वारा बोलने के लिए कहने पर ही बोलना चाहिए। पीठासीन अधिकारी का ध्यान आकर्षित करने के लिए हाथ हिलाना स्वस्थ संसदीय प्रथा नहीं मानी जाती। यदि एक ही समय पर एक से अधिक सदस्य खड़े हों तो जिस सदस्य को अध्यक्ष बोलने की अनुमति दे दे उसी को बोलना चाहिए और शेष सबको तुरन्त बैठ जाना चाहिए।[3]

सदस्यों को वाक्-स्वातन्त्र्य का अधिकार बार-बार बीच में बोलकर अन्तर्बाधा डालने के लिए उपलब्ध नहीं किया गया है। अन्तर्बाधा डालने से सदन की कार्यवाही में गड़बड़ होती है और उससे सारी सभा की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचती है जिसकी अध्यक्ष द्वारा निन्दा की गई है। यदि कोई सदस्य सदन के सामने किसी विषय के संबंध में कोई बात कहना चाहता हो या उस सदस्य से प्रश्न पूछना चाहता हो जो कि बोल रहा हो कोई स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए या सदन के विचाराधीन किसी विषय के बारे में किसी

बात की व्याख्या के लिए तो उसे अपने प्रश्न अध्यक्ष को सम्बोधित करने चाहिए। पीठासीन अधिकारी की अनुमति मिल जाने पर यदि वह औचित्य का प्रश्न उठाने या वैयक्तिक स्पष्टीकरण के लिए खड़ा हो जाए तो भाषण करने वाले सदस्य को अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए। बोलते समय सदस्यों को अपने स्थान से बोलना चाहिए और खड़े होकर बोलना चाहिए लेकिन यदि कोई सदस्य बीमार हो या इतना कमजोर हो कि खड़ा न हो सके तो अध्यक्ष उसे बैठे-बैठे बोलने की अनुमति प्रदान करता है।[4]

सदस्यों से यह आशा की जाती है कि बोलते समय वे सदस्यों को नाम से सम्बोधित नहीं करेंगे, उनको सदा पीठासीन अधिकारी को सम्बोधित करना चाहिए और उसी के माध्यम से अन्य सदस्यों से कुछ कहना चाहिए।[5] सदस्यों को एक दूसरे को तृतीय पुरुष में सम्बोधित करना चाहिए। इसी प्रकार मन्त्रियों का उल्लेख उनके नामों से न करके सरकारी पदनामों से किया जाना चाहिए।

यदि पीठासीन अधिकारी यह महसूस करे कि जो सदस्य बोल रहा है वह बार-बार असंगत बातें कह रहा है और अपनी या उन सदस्यों की दलीलों को दोहरा रहा है जो उससे पहले बोल चुके हैं तो वह उस सदस्य से अपना भाषण समाप्त करने के लिए कह सकता है।[6] बोलते समय सदस्यों को पुरानी दलीलों को नहीं दोहराना चाहिए सिवाए उन मामलों के जहां कि किसी बात पर बल देने के लिए उसका दोहराया जाना जरूरी हो। यदि कोई सदस्य पीठासीन अधिकारी के कहने की परवाह न करते हुए अपना भाषण जारी रखता है तो वह निर्देश दे सकता है कि उस सदस्य के कथन कार्यवाही वृत्तान्त में सम्मिलित नहीं किये जायेंगे।

सदस्य वाद-विवाद में भाग लेते समय उन मामलों की चर्चा नहीं कर सकते जो किसी न्यायालय के विचाराधीन हों, परन्तु विशेषाधिकार के मामलों पर या जहां सदन के अपने सदस्यों के संबंध में सदन के अधिकार क्षेत्र का प्रश्न हो वहां यह नियम लागू नहीं होते हैं। ऐसे मामलों में पीठासीन अधिकारी और सदन द्वारा प्रत्येक मामले में उसके गुणावगुणों के आधार पर विचार किया जाता है।

सदस्यों को एक दूसरे के विरुद्ध व्यक्तिगत आरोप नहीं लगाने चाहिए। किसी सदस्य से यह आशा नहीं की जाती कि वह संसद् या किसी राज्य के विधान मंडल के आचरण या उसकी कार्यवाही के संबंध में अपशब्दों का प्रयोग करे। सदस्य सदन के किसी निर्णय पर, सिवाय उस हालत में जबकि उस निर्णय को रद्द करने के लिए प्रस्ताव पेश किया गया हो, आक्षेप नहीं कर सकते।[7] किसी सदस्य को किसी अन्य सदस्य या किसी मंत्री के विरुद्ध मानहानिकारक या अपराधारोपक स्वरूप का आरोप लगाने की अनुमति नहीं है जब तक कि सदस्य ने अध्यक्ष को तथा सम्बन्धित

मंत्री को भी पर्याप्त अग्रिम सूचना न दे दी हो।[8] सदस्यों को सदन के किसी अन्य सदस्य पर किसी प्रकार का लाछन नहीं लगाना चाहिए या इस दृष्टि से उसका वैयक्तिक रूप से उल्लेख नहीं करना चाहिए या उसकी सद्भावना पर आपत्ति नहीं करनी चाहिए। सदस्यों को सरकारी अधिकारियों का नाम लेकर उनका उल्लेख नहीं करना चाहिए क्योंकि वे अपनी रक्षा में कुछ कहने के लिए वहा उपस्थित नहीं होते। उन्हें उच्च प्राधिकार वाले व्यक्तियों के आचरण पर आक्षेप भी नहीं करना चाहिए जब तक कि चर्चा उचित रूप में रखे गये मूल प्रस्ताव पर आधारित न हो।[9]

सदस्यों को ऐसी पदावलियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिनमें देशद्रोह-पूर्ण, राजद्रोहपूर्ण, मानहानिजनक या अपमानजनक शब्दावली का प्रयोग हो। यद्यपि सरकार की आलोचना करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे सदन के कार्य में बाधा डालने के लिए अपने इस अधिकार का प्रयोग नहीं करेंगे।

सदस्यों को मानहानिकारक या अध्यक्ष पीठ पर ऐसे आरोप नहीं लगाने चाहिए जिससे उस पर किसी प्रकार का दोष आता हो। औचित्य, शिष्टता तथा शालीनता की माग है कि सदस्य बोलते समय ससदीय भाषा का प्रयोग करें। पीठा-सीन अधिकारी अशिष्ट और असंसदीय शब्द और वाक्याशों को कार्यवाही वृत्तान्त से निकालने के आदेश दे सकता है।

सदस्यों को, सिवाय अपने प्रथम भाषण के, लिखित भाषण पढ़ने की अनु-मति नहीं है। यद्यपि वह अपनी याद ताजा करने के लिए लिखित टिप्पणियां देख सकते हैं। इसी प्रकार जब उन्हें आकड़े या उद्धरण प्रस्तुत करने हों तब वे अपनी लिखित टिप्पणियों से पढ़ सकते हैं। पहले से तैयार किए गये भाषणों का वाद-विवाद के दौरान अन्य सदस्यों द्वारा कही गई बातों से मेल नहीं रहता इसमें भाषण सगत नहीं बन पाते। वाद-विवाद रुचिकर तब ही हो सकता है। जब विचारों से विचार और तर्कों से तर्क टकरायें। अतः सदन में वाद-विवाद को सजीव एवं तथ्यपरक बनाने के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें बातों की पुनरोक्ति न हो तथा तर्क केवल विचाराधीन मुद्दों तक ही सीमित रहें। इसीलिए लिखित भाषणों पर रोक का यह नियम लागू किया गया है। चूंकि मंत्रियों को नीति संबंधी वक्तव्य देने होते हैं, वे तैयार किए गये भाषण पढ़ सकते हैं, उन पर लिखित भाषण का यह नियम लागू नहीं होता।

जब कोई सदस्य बोल रहा हो वाद-विवाद में सक्रिय रूप से तभी भाग लिया जा सकता है जब श्रोता सदस्य बोलने वाले सदस्य का भाषण ध्यानपूर्वक सुनें। अतः सुनने वाले सदस्य का आचरण उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि भाषण देने वाले का। इस बारे में भी आचरण सम्बन्धी नियम हैं।

विरोधी दृष्टिकोण बुरा तो लगता है परन्तु संसदीय प्रक्रिया में उसका अपना अलग से महत्त्व है। अतः सरकारी पक्ष के सदस्यों को उसके प्रति सहनशील होना चाहिए। संसदीय विषयों का पेचीदा और जटिल होना स्वाभाविक ही है। सदन में उन विषयों पर असहमति न हो यह संभव नहीं है अतः यह आवश्यक है कि सदन में विचार-विमर्श परस्पर आदान-प्रदान की भावना से प्रेरित हो। जब कोई सदस्य बोल रहा हो तो किसी अन्य सदस्य को अव्यवस्थित ढंग से उसमें अन्तर्बाधा नहीं डालना चाहिए। जहां तक संगत टिप्पणियों और वाक्पटुता का प्रश्न है, वह तो वाद-विवाद में प्रफुल्लता भरने और सदन के वातावरण को तनाव मुक्त बनाने के साधन हैं। किन्तु निरन्तर बाधा खड़ी करने से बोलने वाले सदस्य के तर्क की शृंखला टूट जाती है और सदन की कार्यवाही में अव्यवस्था उत्पन्न होती है जो कि अच्छा आचरण नहीं। हो सकता है कि श्रोता सदस्यों को भाषण पसन्द न आ रहा हो किन्तु तत्सम्बन्धी आपत्ति, यदि कोई हो, भाषण के पश्चात् ही व्यक्त करनी चाहिए। सदस्यों को सदैव याद रखना चाहिए कि वे एक गरिमापूर्ण सदन के सदस्य हैं और उसकी गरिमा को बनाए रखना उनका दायित्व है। उन्हें लोक सभा चैम्बर में एक दूसरे से बातें नहीं करनी चाहिए। यदि किसी विषय पर बात करनी अत्यन्त आवश्यक हो जाये तो बहुत ही धीमी आवाज में ऐसा करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इससे वक्ता का ध्यान आकृष्ट न हो और न ही किसी अन्य सदस्य की तन्मयता भंग हो। उन्हें भाषण के अपने अधिकार का उपयोग सदन के कार्य में बाधा डालने के प्रयोजन से नहीं करना चाहिए।[10] सदन की बैठक के दौरान किसी सदस्य को कोई ऐसी पुस्तक, समाचारपत्र या पत्र नहीं पढ़ना चाहिए जिसका सभा की कार्यवाही से संबंध न हो।[11] किसी सदस्य को अध्यक्ष पीठ और ऐसे सदस्य के बीच से, जो भाषण दे रहा हो नहीं गुजरना चाहिए और न अध्यक्ष पीठ की ओर पीठ करके खड़ा होना चाहिए और न बैठना चाहिए।[12] यह आचरण आपत्तिजनक है।

यह स्वाभाविक ही है कि हर व्यक्ति को अपनी आवाज सुनने का आकर्षण होता है किन्तु यही बात दूसरे पक्ष पर भी लागू होती है। कोई सदस्य यदि स्वयं अपने भाषण में दूसरे सदस्यों की अन्तर्बाधा को पसन्द नहीं करता तो उसे जब कोई दूसरा सदस्य बोल रहा हो तो सदन में शान्त बैठना चाहिए।

दर्शक और गैलरियां दर्शक दीर्घाओं में बैठे किसी अजनबी व्यक्ति को इंगित कर सदन में उसका उल्लेख नियम विरुद्ध है। परन्तु यदि अध्यक्ष पीठ द्वारा सदन की किसी विशिष्ट दीर्घा में विशिष्ट विदेशी मेहमानों के उपस्थित होने का उल्लेख किया जाता है तो सदस्यों को अपने मेज थपथपाकर उन विशिष्ट मेहमानों

का स्वागत करना चाहिए। किन्तु जब सदन की किसी दीर्घा में अथवा विशेष स्थान (बाक्स) में कोई अजनबी प्रवेश करता है तो प्रशंसा-घोष नहीं करना चाहिए। सदस्य को कभी इस उद्देश्य से सदन में नहीं बोलना चाहिए कि इससे समाचार पत्रों में उसका नाम आएगा और न ही इसी उद्देश्य से किसी प्रकार की अपील या किसी बात का उल्लेख करना चाहिए।[13]

सदन में सामान्य आचरण सदस्य को संसद् भवन के परिसर में ऐसे साहित्य, प्रश्नावली, पुस्तिकाओं, प्रेस टिप्पणियों, पर्चों इत्यादि का वितरण नहीं करना चाहिए जिनका सदन के कार्य से संबंध न हो, और न ही संसद् परिसर में भूख हड़ताल करने, धरना देने, या किसी प्रकार का प्रदर्शन करने या कोई धार्मिक कार्य करने की अनुमति है।

समदीय प्रथाओं के अनुसार सदस्य सभा में शस्त्र नहीं ला सकते और न ही उसे प्रदर्शित कर सकते हैं। वे अपने कोट कन्धे या बाहू पर लटका कर लोक सभा चैम्बर में प्रवेश नहीं कर सकते हैं और न ही सदन में डेस्क पर अपना हैट/टोपी, कोट, शाल या जैकेट रख सकते हैं। जब तक स्वास्थ्य के आधार पर अध्यक्ष द्वारा अनुमति प्रदान न की गयी हो, सदस्य लोक सभा चैम्बर में छड़ी नहीं ला सकते। वे लोक सभा चैम्बर में धूम्रपान नहीं कर सकते या सदन में नारे नहीं लगा सकते, सदन की कार्यवाही में रुकावट या बाधा नहीं डाल सकते और जब कोई दूसरा सदस्य बोल रहा हो तो साथ-साथ टीका-टिप्पणी नहीं कर सकते। सदन में अपने बैठने के स्थानों पर झंडे, प्रतीक या कोई बिल्ले आदि प्रदर्शित नहीं कर सकते, लोक सभा चैम्बर में कैसेट या टेपरिकार्डर नहीं ला सकते या बजा सकते, मार्ग में खड़े होकर अन्य सदस्यों से बात नहीं कर सकते, वाद-विवाद के दौरान कोई साक्ष्य वस्तु नहीं ला सकते या सदन में उसका प्रदर्शन नहीं करते और वाद-विवाद के दौरान कोई हल्की-फुल्की हरकत नहीं कर सकते या ऐसा मजाक नहीं कर सकते जिसमें कटाक्ष का तत्व हो। सदस्य को सदन में अध्यक्ष पीठ के पास स्वयं नहीं जाना चाहिए, यदि आवश्यक हो तो वह पटल अधिकारी के पास पर्चिया भेज सकता है। इसके अतिरिक्त, सदस्यों को अपना भाषण देने के तुरन्त बाद सदन से बाहर नहीं जाना चाहिए। ऐसा करना शिष्ट संसदीय आचरण नहीं है। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि अपने भाषण पर अन्य सदस्यों की टिप्पणियों को भी सुनें। विशेष रूप से जब कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य को या मंत्री की आलोचना करता है तो उस सदस्य या मंत्री को यह आशा करने का अधिकार

है कि आलोचक उसका उत्तर सुनने के लिए सदन मे उपस्थित रहे। उस समय उसका उपस्थित न होना संसदीय शिष्टाचार का उल्लंघन है।

सदन की मर्यादा एवं गरिमा बनाये रखने के लिये सदस्यो से अपेक्षित है कि वे कोई ऐसा आचरण न करें जिससे सदन की मर्यादा और गरिमा को धक्का पहुचता हो। विशेष रूप से महिला सदस्यो से आशा की जाती है कि वे सदन मे बुनाई जैसा कोई कार्य न करें।

अध्यक्ष के खड़े होने पर प्रक्रिया . जब भी अध्यक्ष सदन को सम्बोधित करने के लिए खड़ा हो तो सदस्यो से यह आशा की जाती है कि वे शांतिपूर्वक उसे सुनें और कोई सदस्य, जो उस समय बोल रहा हो या बोलने वाला हो, उसको तुरन्त अपना स्थान ग्रहण कर लेना चाहिए।[14] सदस्यो को उस समय, जब अध्यक्ष सदन को सम्बोधित कर रहा हो, अपना स्थान छोड़ कर नही जाना चाहिए। यह संसदीय परिपाटी सुस्थापित हो चुकी है कि जब भी अध्यक्ष लोक सभा चैम्बर मे आय या सदन को सम्बोधित करने के लिए खड़ा हो या "शांति-शांति" कहे तो प्रत्येक सदस्य को तुरन्त अपने स्थान पर बैठ जाना चाहिए। जब अध्यक्ष सदन को सम्बोधित कर रहा हो तो सदस्यो को व्यवस्था सबंधी प्रश्न उठाने के लिए खड़ा नही होना चाहिए। जब पीठासीन अधिकारी खड़ा हो, तो सदस्यों को सभा–भवन के एक भाग से दूसरे भाग मे नही जाना चाहिए, न चलना चाहिए, न खड़े होना चाहिए, न सदन मे प्रवेश करना चाहिए और न वहां से उठकर जाना चाहिए।

किसी सदस्य का आर्थिक हित . जब किसी सदस्य का सभा के विचाराधीन किसी विषय मे, व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित हो, तो उससे आशा की जाती है कि वह अपने भाषण के प्रारम्भ मे ही बता दे कि उसका उस मामले मे किस प्रकार का हित है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विचार-विमर्शो मे निष्पक्षता रहे और ऐसा न हो कि वैयक्तिक, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित के आधार पर उस सदस्य के मत पर आपत्ति हो जाए। इसी प्रकार जहां किसी समिति के किसी सदस्य का उस समिति के सामने विचार के लिए आने वाले किसी विषय मे कोई व्यक्तिगत, आर्थिक या प्रत्यक्ष हित हो, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह समिति के सभापति के माध्यम से अध्यक्ष को बताये कि उसका उस मामले मे क्या हित है।[15]

मान्यताएं एवं प्रथाएं : सदस्यो द्वारा सदन मे संसदीय शिष्टाचार के नियमो का जो पालन करना होता है उसके अतिरिक्त बहुत सी मान्यताएं और प्रथाएं हैं जो संसदीय जीवन मे उचित स्तर बनाए रखने और सदन तथा इसके सदस्यों की गरिमा बनाये रखने के लिए समान महत्त्व रखती हैं। अतः संसद् सदस्यो से आशा की जाती है कि वे सदन के अन्दर ही नही बल्कि सदन के बाहर भी आचरण का एक स्तर बनाये रखेंगे।[16] सदस्यो का आचरण प्रथा के प्रतिकूल या सदन की गरिमा के

गवाददाता या व्यापारिक फर्म के मालिक आदि के रूप में, उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उपयोग करना चाहिए।

(पांच) सदस्य को अपने निर्वाचकों की ओर से कोई कार्यवाही करने से पूर्व तथ्यों की पूरी तरह से जाच कर लेनी चाहिए। उन्हें किसी व्यक्ति द्वारा की गयी शिकायतों के समर्थक के रूप में अपना प्रयोग नहीं करने देना चाहिए। साधारणतया, विधायक को अपने निर्वाचकों की शिकायतों के बारे में पहले संबंधित मंत्री को लिखना चाहिए या उससे बात करनी चाहिए। यदि किसी शिकायत का स्वरूप सामान्य प्रकार का हो तो वह प्रश्नकाल में उसे उठा सकता है या किसी अन्य तरीके से सदन में उठा सकता है। परन्तु व्यक्तिगत मामले सदन के समक्ष नहीं लाये जा सकते। यदि विधायक सोचता है कि मामला न्यायोचित और वैध है परन्तु साधारण तरीके से न्याय मिलने में विलम्ब हो जाएगा तो वह संबंधित अधिकारी या कर्मचारी से मिलकर मामला ध्यान में ला सकता है, परन्तु ऐसा मर्यादापूर्वक और ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि उसमें दबाव डालने या अनुचित प्रभाव का प्रयोग करने की बात न हो।

(छह) सदस्य को ऐसे कोई प्रमाण-पत्र नहीं देने चाहिए जो तथ्यों पर आधारित न हों। उसे जो मकान अपने आवास के लिए मिला हो उसे अथवा उसके किसी भाग को किराये पर देकर लाभ अर्जित नहीं करना चाहिए।

(सात) जिस व्यक्ति अथवा संस्था की ओर से सदस्य को कार्य करना हो उससे ऐसे किसी कार्य के लिए जो वह करना चाहता है या करने का विचार रखता है, किसी भी प्रकार का कोई आतिथ्य स्वीकार नहीं करना चाहिए।

(आठ) सदस्य को अपने किसी सम्बन्धी या दूसरे व्यक्तियों के लिए, जिनमें वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रुचि रखता हो, नौकरी या व्यापारिक सम्पर्कों के संबंध में सहकारी पदाधिकारियों को न तो सिफारिश-पत्र लिखना चाहिए और न ही उसे कुछ कहना चाहिए।

(नौ) सदस्य को किसी सरकारी कर्मचारी को प्रलोभित करके अनाधिकृत ढंग से कोई ऐसी जानकारी प्राप्त नहीं करनी चाहिए जो उस कर्मचारी को अपने सामान्य कृत्यों के दौरान नहीं देनी चाहिए थी और न ही उसे ऐसे किसी व्यक्ति को इस बात का प्रोत्साहन देना चाहिए कि वह लोक महत्त्व और नीति के विषय पर अपने वरिष्ठ पदाधिकारियों के विरुद्ध उससे कुछ कहे।

(दस) जिस मामले में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सदस्य का वित्तीय हित हो, उसके सम्बन्ध में उसे सरकारी पदाधिकारियों या मंत्रियों पर अनुचित प्रभाव नहीं डालना चाहिए।

(ग्यारह) सदस्य को किसी ऐसी फर्म, समवाय या संस्था के लिए सरकार से कारोबार प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए जिसमें उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध हो।

(बारह) सदस्य को किसी मंत्री या अर्द्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले किसी कार्यपालक अधिकारी के समक्ष वकील या विधि सलाहकार या सॉलिसिटर के रूप में उपस्थित नहीं होना चाहिए।

(तेरह) सदस्य के नाते अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए भ्रष्टाचार में लिप्त होने का उसका आचरण सदन द्वारा विशेषाधिकार भंग माना जाता है। अतः सदस्य द्वारा कोई घूस लेना, जिससे कि सदस्य के नाते उसके आचरण पर प्रभाव पड़ता हो या किसी विधेयक, संकल्प, विषय या उस बात के समर्थन या विरोध के लिए जो कि सदन या उसकी किसी समिति के सामने आनी हो, कोई शुल्क प्रतिकार या इनाम लेना विशेषाधिकार का भंग माना जाता है। यदि कोई सदस्य किसी व्यक्ति के साथ सदन में उसके दावों का पक्ष लेने तथा उन्हें मनवाने के लिए पैसा लेने का करार करता है तो वह भी उस सदस्य का कदाचार अथवा उसके द्वारा विशेषाधिकार भंग किया जाना माना जाता है।

संदर्भ

1. सुभाष काश्यप, मिनिस्टर्ज एण्ड लेजिस्लेटर्ज, मेट्रोपोलिटन, नई दिल्ली, 1982, पृ. 49–50
2. नियम 349 (तीन)
3. नियम 350, निर्देश 115 क (2)
4. नियम 351
5. नियम 349 (छह)
6. नियम 356
7. नियम 352 (तीन) और (चार)
8. नियम 353
9. नियम 352 (दो) और (पांच)
10. नियम 349 (आठ)
11. नियम 49 (1)
12. वही (चार)
13. वही (दस) और (ग्यारह)
14. नियम 361 (1)
15. नियम 371
16. काश्यप, ऊपर उद्धृत, पृ. 139–40
17. सदस्य निर्देशिका (आठवां संस्करण)

□□□

14

संसदीय सचिवालय

ससद् जन इच्छा की प्रतीक है और जनहित मे नीतियो का अनुमोदन करती है। किन्तु नीतियो को कार्यरूप देने मे अथवा उसके प्रशासन मे उसका कोई दखल नही होता। फिर भी लोगो की प्रतिनिधि निकाय के रूप मे ससद् कार्यपालिका पर निरीक्षण एव नियन्त्रण रखती है और यह सुनिश्चित कराती है कि प्रशासन सविधान के दायरे मे रहकर कार्य करे।

यदि देश के विधान मडल के सदस्यो ने निर्भीकतापूर्वक और बेलाग अपने अधिकारो का प्रयोग करना है और अपने दायित्वो को निबाहना है तो उन्हे इतनी स्वतन्त्रता अवश्य होनी चाहिए कि वे सरकार की त्रुटियो को प्रकाश मे ला सके जिससे सरकार की नीतियो और उसके कार्यनिष्पादन की सार्वजनिक रूप से छानबीन हो सके। उनको अपने इस दायित्व को पूरा करने के लिए एक ऐसे सचिवालय की आवश्यकता होती है जो कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त हो। यदि ससदीय लोकतन्त्र को लोगो के अधिकतम हित मे काम करना है तो उसके सचिवालय का स्वतन्त्र होना आवश्यक है क्योकि सदस्य विधान मडल मे ही सरकार की नीतियो को चुनौती देते हैं और उन पर चर्चा करते है और यह फैसला सचिवालय की सहायता से पीठासीन अधिकारी ही करता है कि किसी प्रश्न या चर्चा को गृहीत किया जाये या नही। यदि पीठासीन अधिकारी के फैसले कार्यपालिका के प्रभाव मे आकर किये जाते है तो ससदीय लोकतन्त्र का आधार ही खतरे मे पड़ जाता है।

भारतीय विधानमडल के लिए "सरकार से स्वतन्त्र और असम्बद्ध" एक सचिवालय का विचार जनवरी, 1926 मे तब सामने आया जब तत्कालीन विधान सभा अध्यक्ष श्री विठ्ठल भाई पटेल ने भारत मे विधायी निकायो के पीठासीन अधिकारियों का सम्मेलन बुलाया, जिसमे यह सकल्प पास किया गया कि विधान सभा के लिए एक अलग कार्यालय बनाया जाये, जिसका सरकार से कोई सम्बन्ध न हो और जो सर्वथा स्वतन्त्र हो। उसके बाद 22. 9. 1928 को तत्कालीन केन्द्रीय विधान सभा मे सुप्रसिद्ध नेता प० मोतीलाल नेहरू ने सकल्प पेश किया जिसका समर्थन तत्कालीन अन्य प्रसिद्ध नेता लाला लाजपत राय ने किया। उस सकल्प का

उद्देश्य एक अलग विधान सभा विभाग बनाना था। यह संकल्प सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लिया गया। ब्रिटेन के भारत मंत्री ने उस संकल्प में दी गयी योजना कुछ परिवर्तनों के साथ स्वीकार कर ली और एक अलग, अपने आप में सम्पूर्ण विभाग 10 जनवरी, 1929 को बनाया गया जिसका नाम "विधान सभा विभाग" था और विधान सभा का "प्रेजीडेंट"[1] उसका वस्तुतः प्रधान बना।

स्वतन्त्रता के बाद की स्थिति (Post Independence Condition)

भारत स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 के उपबन्धों के अन्तर्गत 15 अगस्त, 1947 को केन्द्रीय विधान सभा समाप्त हो गयी और विधान मंडल के कृत्य भारत की संविधान सभा ने सम्भाल लिये, परन्तु विधान सभा विभाग के नाम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने पर अन्तःकालीन संसद् के निर्माण पर विभाग का नाम बदल कर "संसदीय सचिवालय" कर दिया गया। 1952 में नये संविधान के अधीन दो अलग-अलग सदन—कौंसिल आफ स्टेट्स (राज्य सभा) और हाउस आफ द पीपुल (लोक सभा) बनने के बाद भी यही स्थिति रही, परन्तु कौंसिल आफ स्टेट् के लिए "कौंसिल आफ स्टेट्स सचिवालय" नाम का नया सचिवालय स्थापित किया गया। 1954 में उक्त दोनों सचिवालयों के नाम बदलकर क्रमशः लोक सभा सचिवालय और राज्य सभा सचिवालय रखे गये।

संवैधानिक उपबन्ध (Constitutional Provisions)

संविधान में उपबन्ध किया गया है कि प्रत्येक सदन का एक अलग सचिवालय होगा। दोनों सदनों के लिए पृथक् और स्वतन्त्र सचिवालय स्थापित करने का मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना रहा है कि संसद् के प्रति कार्यपालिका की जिम्मेदारी और प्रशासन के उत्तरदायित्व के सिद्धान्तों का प्रभावी एवं पूर्ण प्रयोग हो। वास्तव में स्वयं भारत के संविधान में इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को माना गया है। संविधान के अनुच्छेद 74 और 75 में उपबंधित है कि राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होगा तथा मंत्रिपरिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी और अनुच्छेद 98 खण्ड(1) में उपबन्ध है कि संसद् के प्रत्येक सदन का पृथक् सचिवीय कर्मचारीवृन्द होगा। उसमें दोनों के साझे पदों के सृजन की भी अनुमति दी गई है। इसी अनुच्छेद के खण्ड(2) में उपबन्ध है कि संसद्, विधि द्वारा, संसद् के प्रत्येक सदन के सचिवीय कर्मचारीवृन्द (Staff) में भर्ती और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों को विनियमित करने के लिए नियम बना सकेगी। इसके खण्ड(3) में उपबन्ध किया गया, है कि जब तक संसद् द्वारा ऐसी विधियां बनाई नहीं जाती तब तक राष्ट्रपति, यथास्थिति, लोक सभा के अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति से परामर्श करने के पश्चात्

लोक सभा के या राज्य सभा के सचिवीय कर्मचारीवृन्द में भर्ती के और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों के विनियमन के लिए नियम बना सकता है। संविधान के अनुच्छेद 98(2) के अधीन संसद् ने अब तक कोई विधान पास नहीं किया है। परन्तु प्रथम अक्तूबर, 1955 को अनुच्छेद 98(2) के अनुसरण में, राष्ट्रपति द्वारा अध्यक्ष के परामर्श से लोक सभा सचिवालय (भर्ती तथा सेवा शर्तें) नियम, 1955 बनाये गये और प्रख्यापित किये गये। राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा सचिवालय के लिए ऐसे ही नियम 1957 में सभापति के परामर्श से बनाये गये और प्रख्यापित किये गये।

पृथक् भर्ती तथा सेवा-शर्तें

संसद् के सचिवालयों में नियुक्त लोगों की भर्ती और सेवा-शर्तें उपरोक्त नियमों द्वारा विनियमित होती है। वे प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा अपने-अपने सचिवालय में भर्ती करते है।[2] इस प्रकार से सचिवालय सभापति या अध्यक्ष के, जैसी भी स्थिति हो, मार्गदर्शन और नियन्त्रण में स्वतन्त्र सचिवालयों के रूप में कार्य करते हैं। यह परिपाटी भी सुस्थापित हो चुकी है कि सरकार द्वारा भारत सरकार के मन्त्रालयों तथा विभागों द्वारा जारी किये गये आदेश स्वत लोक सभा के अधिकारियों तथा कर्मचारियों पर लागू नहीं होते। सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों की सेवा शर्तों के सम्बन्ध में जारी किये प्रत्येक आदेश की जाच की जाती है और यदि यह फैसला लिया जाये कि उन आदेशों को पूर्णरूपेण सचिवालय के अधिकारियों और कर्मचारियों पर लागू किया जावे तो वित्त मन्त्रालय या सम्बद्ध मन्त्रालय से परामर्श किये बिना, भर्ती तथा सेवा की शर्तें संबंधी आदेश के रूप में जारी किये जाते हैं। परन्तु जहां आदेशों में कोई रूप भेद या परिवर्तन आदि आवश्यक समझा जाये वहां उन्हें अपनाने के आदेश वित्त मन्त्रालय के परामर्श के बाद जारी किये जाते हैं। स्वत. सिद्ध है कि यदि विधानमंडल सचिवालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अपनी सेवा के भविष्य के लिये और पदोन्नतियों, वेतनमानों इत्यादि के लिए गृह मन्त्रालय, वित्त मन्त्रालय या सरकार के किसी अन्य विभाग पर निर्भर करना पड़े तो वे कार्यपालिका के मुकाबले में स्वतन्त्र नहीं रह सकते हैं।

संसद् के दोनों सदनों का बजट

संसद् के सदस्यों तथा अधिकारियों के वेतन तथा भर्ती और उनकी सुख-सुविधाओं के लिये होने वाला खर्च भारत की संचित निधि में से किया जाता है। केन्द्रीय सरकार के अन्य मन्त्रालयों के मुकाबले में इस संबंध में भी विधानमंडल के सचिवालयों की स्थिति स्वतन्त्र रखी गयी है। भारत सरकार के अन्य मन्त्रालयों की तरह राज्य सभा तथा लोक सभा के संबंध में अलग-अलग अनुदानों की मांगें

संसद् के दोनों सदनों के सामने रखी जाती हैं । संसद प्रत्येक वर्ष विनियोग अधिनियम के माध्यम से उस खर्च की मंजूरी देती है । दोनों सदनों को और इनके सचिवालयों की मांगों पर कटौती प्रस्ताव पेश करने या चर्चा करने की अनुमति नहीं है ।

राज्य सभा और लोक सभा तथा उनके सचिवालय के बजट प्राक्कलनों की तैयारी की जिम्मेदारी मुख्य रूप से राज्य सभा तथा लोक सभा के सचिवालयों पर है । इन प्राक्कलनों को महासचिव के अनुमोदन के पश्चात् सभापति/अध्यक्ष द्वारा, यथास्थिति, नियुक्त एक तदर्थ समिति के समक्ष रखा जाता है । इसमें उपाध्यक्ष और वित्तीय समितियों व सभापति समिति के सदस्य के रूप में शामिल होते हैं । तत्पश्चात, समिति की सिफारिशों के साथ यदि कोई हों, प्राक्कलन सभापति/अध्यक्ष के अनुमोदन के लिए उनके सामने रखे जाते हैं । राज्य सभा और लोक सभा के संबंध में अलग-अलग प्राक्कलन, दो अलग-अलग मांगों अर्थात् "राज्य सभा" और "लोक-सभा" के अन्तर्गत अनुदानों की मांगों में रखा जाता है । अध्यक्ष/सभापति द्वारा अनुमोदित प्राक्कलन, वित्त मंत्रालय को केन्द्रीय बजट के सामान्य रूप में सम्मिलित करने के लिए भेजे जाते हैं । इन प्राक्कलनों की जांच वित्त मंत्रालय की किसी विभागीय समिति या संसद की किसी अन्य समिति द्वारा नहीं की जाती ।

कृत्यात्मक आधार पर मोटे तौर पर कार्य विभाजन

सचिवालयों की स्वतन्त्रता और कार्यकुशलता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति ने एक दूसरे से परामर्श करके 21 जुलाई, 1986 को संसद की एक समिति नियुक्त की थी जिसका उद्देश्य यह था कि वह विशेष रूप से भारत सरकार द्वारा नियुक्त चौथे वेतन आयोग की, जिसने उसी वर्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया था, सिफारिशों के प्रकाश में, संसद् अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतनमानों और सेवा की अन्य शर्तों के पुनरीक्षण के मामले में उन्हें परामर्श दे । समिति ने 18 जून, 1987 को अपना प्रतिवेदन अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत कर दिया था । अपने विचार-विमर्शों में, समिति ने दोनों सचिवालयों के स्वतन्त्र स्वरूप को और इनके कृत्यों एवं उत्तरदायित्वों के विशिष्ट स्वरूप का ध्यान में रखा । समिति ने, अन्य बातों के साथ-साथ, दोनों सचिवालयों को अधिक कार्यकुशल एवं मितव्ययी बनाने के लिये वैज्ञानिक आधार पर इनके पुनर्गठन की सिफारिश की । परिणामस्वरूप, सचिवालयों का निम्नलिखित सेवाओं के रूप में कृत्यात्मक पुनर्गठन किया गया :

(एक) विधायी सेवा (Legislative Service) जो विधान, प्रश्नों, कार्य-सूची तैयार करने आदि जैसे सदन से सम्बन्धित कार्य करती है,

(दो) वित्तीय समिति सेवा (Financial Service) जो तीनों वित्तीय समितियों को और रेलवे अभिसमय समिति को सचिवालयी सहायता उपलब्ध कराती

है और इनसे सम्बन्धित सभी कार्य करती है,

(तीन) एक्जीक्युटिव तथा प्रशासन सेवा (Executive & Administrative Service) जो प्रशासन और सामान्य मामलो से संबंधित और सदस्यों तथा अधिकारियो और कर्मचारियो को वेतन तथा भत्तो की अदायगी और अन्य सुविधाओं से सम्बन्धित कार्य करती है,

(चार) ग्रन्थालय, संदर्भ, शोध, प्रलेखन तथा सूचना सेवा (Library, Reference, Research, Documentat on and Information Service) जो अद्यतन और पूरी तरह से सुसज्जित ग्रन्थालय तथा कुशल शोध एवं सदर्भ सेवाओ के द्वारा भारत में और विदेशों में प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं से ससद् सदस्यो को सुपरिचित रखती है और दोनों सदनो-लोकसभा और राज्य सभा के समक्ष आने वाले विधायी उपायों एव अन्य मामलो पर सदर्भ सामग्री उपलब्ध कराती है ताकि सदस्य अपने-अपने सदन मे होने वाले वाद विवाद में प्रभावी रूप मे भाग ले सकें,

(पाच) शब्दश आशुलेखन (रिपोर्टिंग) वैयक्तिक सचिव तथा आशुलिपिक सेवा ' जो ससदीय कार्यवाहियो और समितियों की कार्यवाहियो का आशु लेखन करती हैं और अधिकारियो के लिए आशुलिपिक सहायता की व्यवस्था करती है,

(छ) संसदीय भाषान्तरकार सेवा (Interpraters Service) जो लोक सभा की तथा इसकी समितियो की कार्यवाहियों के साथ-साथ अनुवाद के लिये उत्तरदायी है,

(सात) मुद्रण, प्रकाशन, लेखन-सामग्री, विक्रय भंडार वितरण सेवा . जो (क) मुद्रण, रोटा प्रिंटिंग और जिल्द बाधने के कार्य (ख) लेखन सामग्री और भंडार रिकार्ड रखने (ग) विक्रय और (घ) प्राप्ति तथा वितरण का कार्य करती है,

(आठ) सम्पादकीय तथा अनुवाद सेवा : (Editorial and translation Service) : जो वाद-विवाद का सम्पादन करती है और वाद–विवाद के साराश तैयार करती है, वाद-विवाद, प्रतिवेदनो और ससदीय पत्रों का अनुवाद करती है,

(नौ) सुरक्षा, द्वारपाल तथा सफाई सेवा (Watch & Ward Service) : जो ससद् भवन के अन्दर और बाहर सुरक्षा के उपायों की देख-रेख करती है और परिसरो का उचित रख रखाव सुनिश्चित करती है;

(दस) क्लर्क, टाईपिस्ट, रिकार्ड सार्टर और दफ्तरी सेवा : और

(ग्यारह) संदेशवाहक सेवा जो अन्य सभी सेवाओं द्वारा अपेक्षित सहायक कर्मचारियों के रूप मे कार्य करती है ।

ससदीय सेवा के महत्त्व को ध्यान मे रखते हुए दोनों सचिवालयो का समूचा

ढांचा कृत्यात्मक आधार पर पुनर्गठित किया गया है, जहां कहीं संभव है, वह "डेस्क आफिसर" प्रणाली पर आधारित है जिससे कि उत्तरदायित्व के अनावश्यक विस्तार के बिना कार्य शीघ्र हो और गुणवत्तापूर्ण हो।

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केन्द्र (Bureau of Parliamentry Studies & Training)

समय के साथ संसदीय लोकतंत्र की प्रक्रियाओं और कार्य पद्धतियों का तेजी से विकास हुआ है जो इतनी उलझन भरी हो गई हैं कि उनको सहज में समझ पाना एवं अपनाना सम्भव नहीं है। अतः लोकतंत्र पद्धति को चलाने के उत्तरदायी सभी पक्षों अर्थात् विधायकों, नीति निर्धारकों प्रशासकों तथा विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों का संसदीय संस्थाओं के सिद्धान्तों, साधनों और कार्य पद्धतियों में प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक हो गया है। शीर्षस्थ निकाय होने के नाते विकासमान उक्त प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में अध्ययन जारी रखने और अपेक्षित प्रबोधन एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करने का दायित्व संसद का ही है। लोक सभा सचिवालय में संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केन्द्र संसदीय संस्थाओं के विभिन्न पहलुओं तथा प्रक्रियाओं में क्रमबद्ध प्रशिक्षण, प्रबोधन तथा समस्या और व्यवहार परक अध्ययन का अवसर प्रदान करता है।

संसदीय अध्ययन तथा प्रशिक्षण केन्द्र लोक सभा के लिए एक प्रभाग के रूप में 1976 में स्थापित किया गया था। इसका उद्देश्य विधायकों और अधिकारियों को संसदीय संस्थाओं के विभिन्न विषयों, कार्यपद्धतियों एवं प्रक्रियाओं में पैदा होने वाली समस्याओं की दृष्टि से अध्ययन और क्रम बद्ध प्रशिक्षण के सम्यागत अवसर उपलब्ध कराने की काफी समय से महसूस की जा रही आवश्यकता पूरी करना है।

केन्द्र की विभिन्न गतिविधियाँ इस प्रकार हैं संसदीय अभिरुचि के विभिन्न विषयों पर संसद सदस्यों और विधायकों के लिए विचार गोष्ठियां आयोजित करना, नए संसद सदस्यों और विधायकों के लिए प्रबोधन कार्यक्रम चलाना, लोक सभा, राज्य सभा, राज्य विधानमण्डलों तथा विदेशों की संसदों के सचिवालयों के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करना, भारत सरकार और राज्य विधानमण्डलों के वरिष्ठ तथा मध्यम स्तर के अधिकारियों, और भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और अनेक अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओं के परिवीक्षाधीन अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करना। जुलाई 1985 से विदेशी संसदीय अधिकारियों के लिए वार्षिक संसदीय अतरंग कार्यक्रम तथा विधायी ड्राफ्ट में अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त उसके क्रियाकलाप हैं—भारत के विधायी अधिकारियों के विदेशों में तथा भारत में विदेशी

विद्यार्थी अधिकारियो के प्रशिक्षण दोनो का आदान-प्रदान और प्रतिनियुक्ति की देखरेख करना, विभिन्न विश्वविद्यालयों/कालेजो के प्राध्यापको/व्याख्याताओ के लिए विषयबोध पाठ्यक्रमो का आयोजन करना ताकि इसमे उन्हें अपनी सम्बन्धित सस्थाओ मे आदर्श ससद् का आयोजन करने मे सहायता मिल सके। आदर्श ससदो के सगठन मे गैर-छात्र युवको को इसके दायरे मे लाने के लिए प्रति वर्ष विभिन्न नेहरू केन्द्रो के युवा सयोजको के एक ग्रुप को प्रशिक्षण भी उपलब्ध कराता है।

संसदीय संग्रहालय तथा अभिलेखागार (Parliamentary Museum & Archives)

इस देश मे ससदीय सस्थाए आदिकाल मे पनप रही हैं और ससदीय व्यवस्था भारतवासियो की जीवन पद्धति बन गई है। अत कुछ अर्से से, इस क्षेत्र मे देश की बहुमूल्य विरासत को वर्तमान और भावी पीढियो के लिए सुरक्षित रखने, उनका सग्रह करने और उनके परीक्षण के लिए सभी उपलब्ध ससाधनो को प्रयोग मे लाने के प्रयास किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र मे शुरूआत 1976 मे ही की गई जब लोक सभा सचिवालय ने ससदीय सस्था को, इसके क्रियाकलापो के और इसकी महान् विभूतियो के इतिहास का प्रामाणिक, विस्तृत, पूर्ण एव अद्यतन चित्रीय रिकार्ड सुरक्षित रखने के लिए फोटो तथा फिल्मो का संसदीय अभिलेखागार स्थापित किया। ससदीय सग्रहालय तथा अभिलेखागार स्थापित करने के प्रस्ताव का लोक-सभा की सामान्य प्रयोजन समिति ने प्रथम अगस्त, 1984 को अनुमोदन किया।

इसका मुख्य उद्देश्य सविधान और ससद् से सबधित सभी, वर्तमान काल के और भूत काल के, बहुमूल्य अभिलेखो, ऐतिहासिक दस्तावेजो तथा लेखो को, भावी पीढियो के लिये समय के प्रकोप और उपेक्षा से बचाना है जिससे कि लोग उनमे ससदीय सस्थाओ तथा राजनीतिक प्रणाली के इतिहास और विकास को बेहतर समझ सकें। इसके विकास के वर्तमान चरण मे, यह उपरोक्त विस्तृत दस्तावेज, वस्तुएं आदि प्राप्त करने, जो सामग्री इसके पास उपलब्ध है उसका समुचित परिरक्षण करने और चयनित सामग्री को प्रदर्शनार्थ रखने की ओर ध्यान दे रहा है। यथा समय इसका विचार संसदीय सस्थाओ के विषय मे जानकारी का प्रसार करने के उद्देश्य से और ससद् के विकास मे इसके क्रियाकलापो मे और उसकी उपलब्धियो मे रुचि पैदा करके ससद् की समुचित छवि बनाने और इसके प्रति सम्मान को बढावा देने के लिये अन्य कार्य करने का है।[3]

राष्ट्रीय उपलब्धियों का केन्द्र (हाल ऑफ एचीवमेंट्स) (Hall of National Achievements) :

लोक सभा की सामान्य प्रयोजन समिति ने प्रथम अगस्त, 1984 को राष्ट्रीय उपलब्धियो का केन्द्र (हाल आफ नेशनल एचीवमेंट्स) स्थापित करने के लिए एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया जिसका उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्

विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्र द्वारा की गई उपलब्धियों की एक समग्र तस्वीर प्रस्तुत करना है। प्रदर्शनियों, प्रतिमानों, फोटो तथा अन्य दृश्य सामग्री के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत द्वारा की गई उपलब्धियों का विस्तृत दृश्य प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है। दृश्य श्रव्य साधनों के माध्यम से विदेशी संसदीय शिष्ट मण्डलों के सदस्यों, प्रभावकारी प्रतिष्ठित व्यक्तियों, विद्यार्थियों, पर्यटकों तथा अन्य लोगों के लिए देश की अखण्ड छवि प्रदर्शित करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

संसदीय अधिकारियों की भूमिका

सूचना के प्रसार का क्षेत्र हो या प्रौद्योगिकीय क्षेत्र, मानव जीवन से सम्बद्ध प्रत्येक क्षेत्र में नित नए आविष्कार हो रहे हैं। इससे सरकारी कार्य-क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा है। आधुनिक कार्य पद्धति की जटिलताओं को देखते हुए हमारी संसद के दोनों सदनों के सचिवालयों के लिये भी अधिक योग्य एवं उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त व्यावसायिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता की ओर हाल के वर्षों में ध्यान आकर्षित हुआ है। यह एक अपरिहार्य आवश्यकता है।

विधान मण्डल के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के दायित्वों को देखते हुए उनमें उच्च कोटि की योग्यता और तत्परता होने, कुशलता एवं विशेषज्ञता होने के साथ-साथ उनके मितव्ययी होने की अपेक्षा की जाती है। वे ही लोग हैं जिनको संसद सदस्यों को विविध प्रकार की सेवाएं उपलब्ध करानी होती हैं तथा संसद् की कार्यवाहियों को उपयोगी बनाने के लिए सांसदों द्वारा मांगी गई सूचना तुरन्त और ठीक-ठीक उपलब्ध करानी होती है। इस प्रकार उनको अपने महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को निबाहने के लिए पूरी योग्यता, चतुराई और अनुभव से काम लेना होता है।

संसद् के सचिवालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का परम कर्त्तव्य सदस्यों की सहायता करना होता है जिससे कि वे विधायकों के रूप में यथासम्भव अधिक से अधिक प्रभावी और कुशल ढंग से अपने कृत्यों का निर्वहन कर सकें। एक संसदीय अधिकारी का सब से बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वह सदन की सेवा और सहायता करे और सभी मामलों में निष्पक्ष एवं न्यायोचित दृष्टिकोण अपनाये। उसे यह निश्चित कर लेना चाहिए कि अध्यक्ष को दी जाने वाली तथ्यात्मक जानकारी पूर्णतः सही हो, और किसी मामले से सम्बन्धित सभी सगत विनिर्णय एवं पूर्वोधारण पीठासीन अधिकारी के समक्ष रखे जावें ताकि उसे सही फैसले करने में सुविधा हो। जहां तक सदस्यों को परामर्श देने का प्रश्न है संसदीय अधिकारियों से यह अपेक्षित नहीं है कि वे अकारण ही कोई परामर्श दें। जब संसदीय अधिकारी से विशेष रूप से कहा जाए कि वह संसदीय कार्य से संबंधित किसी मामले पर परामर्श दे तभी उसे तथ्यात्मक जानकारी सदस्य को उपलब्ध करानी चाहिए। इस विषय में अपनी राय नहीं देनी चाहिए।

संसदीय अधिकारी को इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि किसी सदस्य की विचारधारा क्या है या वह किस राजनीतिक दल से सम्बन्ध रखता है। सदस्य का दल कोई भी हो, योग्यताएं कुछ भी हों और जीवन में दर्जा कुछ भी हो, संसदीय अधिकारी के लिए सदस्य लोगों का सम्माननीय प्रतिनिधि है जिसके साथ उसे आदर से और धैर्य से पेश आना है। सदन के सेवक के नाते, संसदीय अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह सभी सदस्यों से समान रूप से पेश आए। वह सदैव स्मरण रखते हुए कि सभी सदस्य उसके समान एवं निष्पक्ष सेवा पाने के अधिकारी हैं, उसे प्रत्येक सदस्य की, जो अपने संसदीय सिलसिले में उससे सहायता मांगे, कुशल ढंग से सेवा करनी होती है।

अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए अधिकारी को अपने कार्यक्षेत्र में विशेष ज्ञान प्राप्त होना आवश्यक है और प्रक्रियाओं की जटिलताओं एवं बारीकियों की भी पूरी जानकारी होना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि वह सभी महत्त्वपूर्ण मामलों और नाजुक समस्याओं से अवगत रहे ताकि ऐसा न हो कि अकस्मात ही कोई स्थिति सामने आ जाये जिसके लिए वह तैयार न हो, जैसा कि प्रायः होता है। यदि कोई स्थिति या कोई कठिन समस्या अचानक ही सामने आ जाये तो उसे इस योग्य होना चाहिए कि वह तुरन्त और कुशलता से उससे निपट सके। इस प्रकार, काम निबटाने में तत्परता और त्रुटिहीनता संसदीय अधिकारी के कार्य चालन के मुख्य तत्त्व हैं।[8]

यह भी अपेक्षा की जाती है कि संसदीय अधिकारियों और कर्मचारियों में संसदीय कार्य व्यवहार के सिद्धान्तों की जानकारी हो और उनमें खोजी एवं जिज्ञासु भाव पैदा किया जाये। संक्षेप में कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

(एक) संसद् की संस्था और लोगों के प्रतिनिधियों के प्रति सम्मान ;

(दो) सदस्यों की सेवा के प्रति अटूट प्रतिबद्धता चाहे वे किसी भी दल के हों ;

(तीन) सदस्यों और अन्य लोगों के साथ व्यवहार में समर्पण, शिष्टता, आत्म-नियंत्रण, धैर्य, शान्त भाव और सहिष्णुता ;

(चार) सुस्पष्टता और त्रुटिहीनता और अध्यक्ष के समक्ष पूर्ण तथ्य रखने और निष्पक्ष परामर्श देने की आदत ;

(पांच) फैसले करने में और काम निबटाने में तत्परता अर्थात् काम करने की ऐसी पद्धति जिसमें कोई काम कल पर न छोड़ा जाये ;

(छः) सजगता, चेहरे पर मुस्कान और किसी की भी बात सुनने का धैर्य ;

(सात) दलगत रहित, निष्पक्ष दृष्टिकोण। एक संसदीय अधिकारी को सभी क्रिया-कलापों में भाग लेते हुए भी निर्लेप होना चाहिए ; और

(आठ) ऐसे समाधान ढूंढने की योग्यता जो केवल सैद्धान्तिक रूप में ही सही न हो वरन् व्यावहारिक भी हो।

संसद के सचिवालय गतिशील और विकासशील संस्थाएं हैं जिनके लिए अपेक्षित है कि वे सांसदों की बढ़ती हुई एवं परिवर्तनशील आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निरन्तर ध्यान देते रहें। सचिवालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों को सदा सतर्क रहना पड़ता है और बराबर सोचते रहना होता है कि सदस्यों तथा संसदीय संस्थाओं की सेवा करने के तरीकों में क्या सुधार लाए जाने चाहिए। संसदीय संस्थाओं की सेवाओं में सुधार की गुंजायश सदा रहती है। भारत की संसद उत्तम कार्य-निष्पादन के लिए गर्व का अनुभव कर सकती है और इसका श्रेय प्रशिक्षण की प्रक्रियाओं और सुविधाओं को जाता है। वह यह भी आशा रखती है कि आने वाले वर्षों की उपलब्धियां इससे भी बेहतर होंगी।[5]

संदर्भ

1. केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष को उस समय "प्रेजीडेंट" कहा जाता था।
2. विस्तृत चर्चा के लिए देखिए राष्ट्र मण्डल संसदों के क्लार्क्स-एट-द-टेबल की सोसाइटी की अक्टूबर, 1985 में ओटावा, कनाडा में हुई बैठक में रिक्रूटमेंट एण्ड ट्रेनिंग आफ पार्लियामेंटरी स्टाफ विषय पर डा. सुभाष काश्यप द्वारा प्रस्तुत किया गया मुख्य पत्र। द पार्लियामेंटेरियन 67, संख्या 3, जुलाई, 1986 में पृ. 134-36।
3. सुभाष काश्यप, पार्लियामेंटरी म्यूजियम एण्ड आरकाईव्ज दिल्ली 1985
4. देखिए काश्यप, रिक्रूटमेंट एण्ड ट्रेनिंग आफ पार्लियामेंटरी स्टाफ, ऊपर उद्धृत।
5. वही।

□□□

15

लोक सभा का विघटन

प्रतिनिधिक संसदीय संस्थाओं के इतिहास के साथ "विघटन" (dissolution) अवधारणा का अटूट संबंध है। कोई जनसभा, चाहे कितनी ही लोकप्रिय ढंग से निर्वाचित क्यों न हो, हमेशा के लिए जनता का प्रतिनिधित्व करती रहेगी, ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। इसीलिए इस बात की आवश्यकता है कि वह निश्चित् अवधि के उपरान्त पुन जनादेश प्राप्त करे। सामान्यतः सभा का कार्यकाल सांविधानिक दस्तावेज में निर्धारित होता है अथवा विधायी अधिनियम द्वारा निर्धारित किया जाता है। पिछले आम चुनाव में निर्वाचित उसके सदस्यों के कार्यकाल के समाप्त होने के साथ-साथ उसकी अवधि भी समाप्त हो जाती है। "विघटन" संसद् अथवा उसकी जन प्रतिनिधि सभा के कार्यकाल की समाप्ति का द्योतक होता है। अपनी निर्धारित कार्यावधि पूरी कर लेने पर सामान्यतः एक निर्वाचित विधान सभा स्वतः ही विघटित हो जाती है। जबकि सभा का इस प्रकार विघटित होना एक सुविदित सांविधानिक बात है. लेकिन बारीकी से देखने पर ज्ञात होगा कि कार्यपालिका द्वारा विधान मण्डल का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व उसे समाप्त करने की कोई कार्यवाही करना भी "विघटन" का द्योतक है। ऐसी कार्यवाही का उद्देश्य निर्वाचक मण्डल से नया जनादेश (mendate) प्राप्त करना अथवा तात्कालिक संसदीय बहुमत के विचारों के विरुद्ध अग्रिम निर्णायक जनता जनार्दन से अपील करना हो सकता है। निर्धारित कार्यकाल पूरा होने के पश्चात् सभा का स्वतः विघटन हो अथवा राज्य प्रमुख द्वारा उसकी कार्यावधि पूरी होने से पूर्व उसे भंग किया जाना हो, दोनों ही मामलों में यह विघटन पूरी तरह से युक्तियुक्त, वैध और सांविधानिक होता है क्योंकि संविधान और देश की विधियों के अन्तर्गत इसकी विशेष रूप से अनुमति होती है तथा उनमें ऐसा उपबन्ध होता है।[1]

सांविधानिक स्थिति (Constitutional Position)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 83(2) में उल्लिखित है

(2) लोक सभा, यदि पहले ही विघटित न कर दी जाए, तो अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियुक्त तारीख से पांच वर्ष तक चालू रहेगी और इससे अधिक नहीं तथा पांच वर्ष की उक्त कालावधि की समाप्ति का परिणाम लोक सभा का विघटन होगा :

परन्तु उक्त कालावधि को, जब तक आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, संसद विधि द्वारा, किसी कालावधि के लिए बढ़ा सकेगी, जो एक बार में एक वर्ष से अधिक न होगी तथा किसी अवस्था में भी उद्घोषणा के प्रवर्तन का अन्त हो जाने के पश्चात् छह मास की कालावधि से अधिक विस्तृत न होगी।[2]

संविधान के अनुच्छेद 85(2)(ख) में उपबंधित है कि राष्ट्रपति समय-समय पर लोक सभा का विघटन कर सकेगा। इस प्रकार,

(1) लोक सभा की सामान्य कालावधि (term) पांच वर्ष है,

(2) लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के लिए नियुक्त तारीख से पांच वर्ष की कालावधि समाप्ति स्वतः ही इसका विघटन होगी,

(3) राष्ट्रपति सभा को कालावधि से पूर्व भी विघटित कर सकेगा,

(4) आपातकाल के दौरान, संसद विधि द्वारा लोक सभा की कालावधि बढ़ा सकेगी जो एक बार में एक वर्ष की होगी।[3]

यदि कुछ भिन्न क्रम में रखे जाएं तो इन सांविधानिक उपबंधों का तात्पर्य बदलता नजर आता है। उदाहरणस्वरूप यह कहा जा सकता है कि

(1) "समय-समय पर" सभा को विघटित करना राष्ट्रपति का काम है,

(2) परन्तु, यदि राष्ट्रपति पांच वर्ष की अवधि तक सभा को विघटित नहीं करता है तो पांच वर्ष की समाप्ति पर, यदि इस बीच आपातकाल के दौरान संसद द्वारा उसका कार्यकाल बढ़ा न दिया गया हो, वह अपने आप विघटित हो जाएगी।

इस उदाहरण से अभिप्राय है कि पांच वर्ष की कालावधि समाप्त होने से पूर्व लोक सभा का विघटन होना एक सामान्य बात है, और इस पांच वर्ष की अवधि का नियतन केवल बाह्य सीमा अथवा सामान्य काल के दौरान अधिकतम कालावधि के रूप में किया गया है, और कोई निश्चित कालावधि के रूप में नहीं।[4] इसका यह अर्थ हुआ कि भारत के संविधान के अधीन लोक सभा के विघटन से अभिप्रेत होगा सभा की कालावधि की समाप्ति जो अनुच्छेद 85(2)(ख) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा जारी आदेश से अथवा पांच वर्ष की कालावधि या अनुच्छेद 83(2) के अधीन इसके प्रथम अधिवेशन के लिए नियत तारीख से बढ़ाई गई किसी कालावधि की समाप्ति द्वारा होगी। आम निर्वाचन (election) के पश्चात् संयुक्त रूप से समवेत दोनों सभाओं

को जिस दिन राष्ट्रपति उद्घाटन भाषण द्वारा सम्बोधित करते हैं, उस दिन से सभा का प्रथम अधिवेशन चालू हुआ माना जाता है। इस प्रकार विधिवत रूप से उद्घाटित होने से पूर्व सभा द्वारा कोई कार्य निष्पादित नहीं किया जा सकता है। जिन दिनों में सदस्य शपथ आदि ग्रहण करते हैं अर्थात् सभा के गठित होने और इसकी प्रथम बैठक आयोजित होने के बीच की अवधि इस उद्देश्य के लिए गिनती में नहीं ली जाती है।

निर्वाचन विधि

विघटन के पश्चात् लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (Peoples' representative Act, 1951) के अन्तर्गत नई लोक सभा का गठन करना होता है। उक्त अधिनियम में उपबंधित है कि :

नई लोक सभा गठित करने के प्रयोजन के लिए साधारण निर्वाचन वर्तमान सदन की अस्तित्वावधि के अवसान पर या उसके विघटन पर किया जाएगा।

और यह भी कि :

उक्त प्रयोजन के लिए राष्ट्रपति ऐसी तारीख या तारीखों को, जिनकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, भारत के राजपत्र में प्रकाशित एक या अधिक अधिसूचनाओं द्वारा सब संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों से अपेक्षा करेगा कि वे इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार सदस्य निर्वाचित करें। परन्तु जहां वर्तमान लोक सभा के विघटन के कारण नहीं अन्यथा साधारण निर्वाचन होता है वहां ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से, जिसको सदन की अस्तित्वावधि का अवसान होता, पूर्व के छह मास के पहले न निकाली जायेगी।[8]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 30 के अन्तर्गत लोक सभा *के लिए साधारण निर्वाचन विद्यमान सभा की कालावधि समाप्ति से छह मास पूर्व* आयोजित किये जा सकते हैं यद्यपि नई सभा का गठन केवल विद्यमान सभा के विघटन के पश्चात् ही होता है। यह ब्रिटेन में अपनाई जा रही प्रथा से भिन्न है *जहां पहले विघटन होता है और तत्पश्चात् नये 'हाउस आफ कामन्स' के गठन के* लिये आम निर्वाचन आयोजित होते हैं।[9]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 में अन्य बातों के साथ-साथ उपबन्धित है कि निर्वाचन आयोग द्वारा सभा के लिये निर्वाचित सदस्यों के नाम शासकीय राजपत्र (Gazette) में अधिसूचित किए जाने पर, समझा जाएगा कि लोक सभा "सम्यक रूप से गठित हो गई है।" और इस प्रकार एक बार जब सभा का गठन हो जाता है तो यह विघटन योग्य बन जाती है, अर्थात् इसको अधिवेशन के लिए आहूत करने या कार्य संचालन प्रारम्भ करने से पूर्व विघटित किया जा सकता है। के० के० आबू बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि संविधान के किसी भी उपबन्ध के अधीन यह अनिवार्य नहीं कि इसकी प्रथम बैठक की तिथि नियत की जानी चाहिए। "एक बार जब सभा

गठित हो जाती है, यह विघटन योग्य बन जाती है। और, एक बार जब इसका विघटन हो जाता है, इसको अधिवेशन के लिए आहूत नहीं किया जा सकता है क्योंकि तत्काल ही इसके सदस्यों की प्रतिनिधित्व करने की हैसियत समाप्त हो जाती है।'[7]

विघटित करने की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 75(3) में उपबन्धित है कि मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers) लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। अतः लोक सभा अविश्वास प्रस्ताव द्वारा सरकार को गिरा सकती है। किन्तु, परिणामस्वरूप, कार्यपालिका (executive) के हाथ में भी तत्समान प्रभावकारी शक्ति होती है और वह शक्ति है "समय-समय पर" अर्थात् उसकी निर्धारित पांच वर्ष की कालावधि समाप्त होने से पूर्व किसी भी समय लोक सभा को विघटित कर सकने की। संसदीय राज्य-व्यवस्था में, संसद को विघटित करने की शक्ति कार्यपालिका के पास उसी तरह है जिस तरह संसद् के पास लोक सभा के प्रति मन्त्रिपरिषद् की जवाबदेही सुनिश्चित करने का अधिकार है ये दोनों पक्ष परस्पर संतुलन बनाते हैं। लोक सभा यदि सरकार को बर्खास्त कर सकती है तो सरकार लोक सभा को विघटित कर सकती है। तथापि, विघटन लोक सभा को सरकार की इच्छाओं के अधीन नहीं बनाता है, किन्तु वह अपने सर्वोच्च स्वामियों अर्थात् स्वयं जनता-जनार्दन की इच्छाओं के अधीन बनाता है।

संविधान के अनुच्छेद 53 में उपबन्धित है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। अनुच्छेद 74(1) के अधीन राष्ट्रपति को अपने सभी कृत्यों का सम्पादन प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में क्रियाशील मन्त्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा से करना होगा। अनुच्छेद 85(2) के द्वारा राष्ट्रपति को प्रदत्त लोक सभा को विघटित करने की शक्ति, राष्ट्रपति पद का कार्यपालक कृत्य है और इसलिए इसे मन्त्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा से सम्पादित करना होता है। इंग्लैंड की तरह राष्ट्रपति को विघटन की शक्ति किसी विशेषाधिकार से प्राप्त नहीं होती है, अतः प्रथम दृष्ट्या इसका सम्पादन केवल मन्त्रिपरिषद् की मंत्रणा से ही किया जा सकता है। जैसा कि संविधान में उपबन्धित है, राष्ट्रपति "अपने कृत्यों का सम्पादन ऐसी मंत्रणा के अनुसार करेगा।" संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 74(1) में शब्द "करेगा" जोड़े जाने से पूर्व जो स्थिति थी उसके अन्तर्गत मन्त्रिपरिषद् की मंत्रणा के बंधनकारी स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ संदेह व्यक्त किये गये थे और कभी-कभी यह भी कहा गया था कि राष्ट्रपति ऐसा विघटन करने से इंकार कर सकता है जिसको माग अनुपयुक्त हो, या जहां इस प्रकार की मंत्रणा, प्रधान मंत्री द्वारा शक्ति का दुरुपयोग किये जाने की आशंका उत्पन्न करती हो। संविधान (चौवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978, राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में जो एक मात्र विशेषाधिकार देता है, वह यह है कि वह मंत्रिपरिषद् को इस प्रकार

की मन्त्रणा पर पुनः विचार करने के लिए कह सकेगा किन्तु यदि मन्त्रिपरिषद् पुनर्विचार के उपरान्त अपनी मन्त्रणा को दोबारा प्रस्तुत करती है तो वह उसके अनुसार कार्य करने से इंकार नहीं कर सकेगा।[8]

दिसम्बर, 1970 में प्रधान मन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने राष्ट्रपति को लोक सभा विघटित करने का इस आधार पर परामर्श दिया था कि कुछ गम्भीर समस्याएं हैं जिनका समाधान किया जाना है और विभाजित हो जाने में कांग्रेस दल कमजोर पड़ गया है और इसलिए उन्हें जनता से नवीन आदेश प्राप्त करना जरूरी हो गया है। चूंकि मन्त्रणा मन्त्रिपरिषद् द्वारा नहीं दी गई थी बल्कि प्रधानमन्त्री ने दी थी, इसलिए राष्ट्रपति ने प्रधान मन्त्री को यह मामला सर्वप्रथम मन्त्रिपरिषद् के सम्मुख रखने को कहा था। अन्त में, यद्यपि राष्ट्रपति ने मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा स्वीकार कर ली थी, परन्तु उनके सचिवालय द्वारा जारी की गई विज्ञप्ति में यह स्पष्ट रूप में उल्लिखित था कि राष्ट्रपति ने, "मामले की बारीकी के साथ जांच करने के पश्चात्" लोक सभा को विघटित करने के लिये उसको मन्त्रणा देने के "मन्त्रिपरिषद् के निर्णय" को स्वीकार किया है।[9] यह बात नोट करने योग्य है कि उक्त बात, संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा को राष्ट्रपति के लिये कानूनी तौर पर बाध्यकर बनाये जाने से पूर्व घटी थी।

बयालीसवां संशोधन लागू हो जाने के पश्चात् विघटन करने की शक्ति को लागू करने का पहला अवसर 19 जनवरी, 1977 को आया था जब राष्ट्रपति ने लोक सभा कालावधि, जिसे आपातकाल के दौरान मार्च, 1976 में सामान्य कालावधि समाप्त हो जाने के पश्चात् बढ़ाया गया था, समाप्त होने से एक वर्ष पूर्व लोक सभा को विघटित कर दिया था। राष्ट्रपति ने ऐसा प्रधान मन्त्री की सिफारिश पर किया था जिसका आधार, राष्ट्र के स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने जो आंतरिक आपातकाल की घोषणा की थी, उन उपायों के समर्थन में लोगों से जनादेश प्राप्त करने के पश्चात् पुनः सामान्य प्रशासन को लागू करना था। उक्त मामले में सभा विघटित करते समय राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री की सिफारिश को मात्र स्वीकार कर लिया था।[10]

इस प्रकार का दूसरा अवसर 22 अगस्त, 1979 को आया था जब प्रधान मन्त्री श्री चरणसिंह ने जिन्होंने सभा का सामना न कर पाने के कारण अपना त्याग-पत्र प्रस्तुत कर दिया था, राष्ट्रपति को लोक सभा विघटित करने का परामर्श भी दिया था। इस प्रकार के कार्यवाहक प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाली मन्त्रिपरिषद् का परामर्श भी राष्ट्रपति ने स्वीकार कर लिया था और तदनुसार कार्यवाही की थी। तथापि, इस बार जारी की गई विज्ञप्ति में अन्य पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा निजी विवेक का उपयोग करने का भी उल्लेख किया गया था।[11]

यह आम मान्यता है कि सांविधानिक प्रमुख होने के नाते राष्ट्रपति को कोई

स्व-विवेक-शक्ति (discretionary power) प्राप्त नहीं है। पिछले चालीस वर्षों के दौरान ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं मिलता जहां राष्ट्रपति ने किसी मामले में मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणा की उपेक्षा की हो या अपनी इच्छा से प्रेरित होकर कार्यवाही की हो। संविधान में उल्लिखित होने के बावजूद कि मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा राष्ट्रपति पर बंधनकारी होगी, इस प्रश्न पर, विशेष रूप से विद्वानों में, कुछ विवाद बना हुआ है कि क्या राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद् की सहायता और मंत्रणानुसार कार्य करना सदैव अनिवार्य है या कुछ ऐसे मामले अथवा परिस्थितियां हैं जहां वह स्वविवेक से कार्यवाही कर सकता है या मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई मंत्रणा की उपेक्षा कर सकता है।[12]

संविधान प्रारूप समिति के सभापति डा० भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि जब कि राज्य के सांविधानिक प्रमुख होने के नाते राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा मानना बंधनकारी है लेकिन दो विशेषाधिकार भी हैं जिनका राज्य प्रमुख उपयोग कर सकेगा, प्रथम प्रधान मंत्री को नियुक्त करना दूसरा "संसद् का विघटन करना", बाद में अपने मत को स्पष्ट करते हुए डा० अम्बेडकर ने पुनः कहा

भारत संघ का राष्ट्रपति सभा की भावनाओं के बारे में यह जांच करेगा कि क्या सभा यह स्वीकार करती है कि विघटन कर दिया जाना चाहिए अथवा क्या सभा यह स्वीकार करती है कि कार्य का संचालन सभा को विघटित किए बिना किसी अन्य नेता द्वारा किया जाना चाहिए। यदि वह यह पाता है कि विघटन करने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प प्राप्त नहीं है, तो निःसंदेह सांविधानिक राष्ट्रपति होने के नाते वह सभा को विघटित करने संबंधी प्रधान मंत्री की मंत्रणा स्वीकार करेगा।[13]

विघटन की शक्ति संबंधी उपबंध को स्पष्ट करने के लिए समय-समय पर विभिन्न सुझाव दिए गए हैं, 1970 में एक सुझाव यह उपबंधित करने के लिए दिया गया था कि राष्ट्रपति को लोक सभा का विघटन करने की अपनी शक्ति का उपयोग केवल उस समय करना चाहिए जब संसद् इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार करे और स्वतः ही प्रधान मंत्री या मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा पर विघटन नहीं करना चाहिए। श्री श्रीनिवास मिश्र, संसद् सदस्य द्वारा इस संबंध में 27 फरवरी, 1970 को लोक सभा में एक संविधान (संशोधन) विधेयक पुरःस्थापित किया गया था। विधेयक में यह जोड़कर अनुच्छेद 85(2)(ख) के संशोधन की व्यवस्था की गई थी कि राष्ट्रपति समय-समय पर लोक सभा का विघटन कर सकेगा यदि

(1) सभा एक संकल्प (resolution) द्वारा ऐसे विघटन को स्वीकृति प्रदान करती है, या

(2) सभा या तो अनुदान संबंधी ऐसी मांग को स्वीकृति प्रदान करने से इंकार करती है या ऐसे विनियोग को अस्वीकार कर देती है जो तीन

उत्तरोत्तरी मंत्रि-परिषदों की सहायता और मंत्रणा से रखी गई हो अथवा पुरःस्थापित किया गया हो।

मंत्रि परिषद् को जब तक लोक सभा सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त है, इसमें कदापि कोई संदेह नहीं हो सकता कि राष्ट्रपति सभा को विघटित करने के लिए दी गई प्रधान मंत्री या मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा को अस्वीकार कर सकें। क्या सभा का विघटन किया जाए और नवीन निर्वाचन कराए जाएं और ऐसा कब किया जाए। ये ऐसे मामले हैं जो प्रधान मंत्री की राजनीतिक सूझ-बूझ पर निर्भर करते हैं। यह भी कि जब सभा में देश किसी मूल प्रस्ताव पर प्रधान मंत्री हार जाता है या ऐसी हार का उसको भय होता है, तो उसे निर्वाचकों से अपील करने और उनसे दोबारा जनादेश प्राप्त करने का अधिकार है। राष्ट्रपति सभा का विघटन करने संबंधी उसका अनुरोध अस्वीकार नहीं करेगा। जहां प्रधान मंत्री का दल निर्वाचन में पूर्ण बहुमत प्राप्त करने में असफल रहता है, वहां भी राष्ट्रपति यह बात ध्यान में रखेगा कि सभा का विघटित करने की प्रधान मंत्री की मंत्रणा अस्वीकार करने से पूर्व, वैकल्पिक सरकार ढूंढने का दायित्व स्वयं उसका है और उसे इस बात पर विचार करना होगा कि क्या किसी दूसरे व्यक्ति के लिए सक्षम वैकल्पिक सरकार बनाना संभव होगा क्योंकि संघ स्तर पर राष्ट्रपति शासन लागू करने संबंधी कोई उपबंध नहीं है और केन्द्र में सदैव मंत्रि परिषद् होना अनिवार्य है।

शायद एक प्रश्न यह उत्पन्न होगा कि राष्ट्रपति के लिए स्वीकार्य अथवा बंधनकारी होने के लिए मंत्रणा प्रधान मंत्री से नहीं बल्कि मंत्रिपरिषद् से आनी चाहिए क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 74 (1) में यह वांछित है कि राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद् की सहायता और मंत्रणा पर कार्य करे और न कि एकमात्र प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर। अनुच्छेद 78 (ग) इस तर्क को और सुदृढ़ बनाता है, जिसमें राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह किसी विषय को, जिस पर किसी मंत्री ने निर्णय कर दिया हो किन्तु मंत्रि-परिषद् ने विचार न किया हो, *मंत्रि-परिषद् के विचार के लिए लौटा दे। तथापि, इसमें यह तथ्य उपेक्षित* हो जाता है कि प्रधान मंत्री न केवल मंत्रि-परिषद् का प्रमुख है बल्कि मंत्रि-परिषद् के सभी सदस्य उसकी मंत्रणा से नियुक्त किए जाते हैं और मंत्रि-परिषद् के सामूहिक दायित्व के संदर्भ में भी वे केवल तब तक परिषद् के सदस्य बने रह सकते हैं जब तक वे प्रधान मंत्री के विश्वासपात्र हैं। ऐसी स्थिति में, मंत्रि-परिषद् की मंत्रणा शायद ही प्रधान मंत्री की मंत्रणा से भिन्न होगी क्योंकि अन्ततोगत्वा प्रधान मंत्री के विचार ही सर्वमान्य होते हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि केवल ऐसी अपवाद स्वरूप स्थिति को छोड़कर जिसमें कोई विपक्षी दल स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर चुन लिया जाए और वैकल्पिक सरकार बनाने के लिए कोई सक्षम नेता उपलब्ध हो, अन्य स्थिति में राष्ट्रपति लोक सभा का विघटन करने के बारे में प्रधानमंत्री

की मंत्रणा को मानने से कभी इंकार नहीं कर सकेगा। प्रधान मंत्री को, जब भी वह चाहे, जनता से नवीन जनादेश प्राप्त करने की अनुमति होनी चाहिए। इंकार से, राष्ट्रपति पर पक्षपात और राजनीतिक षड्यंत्र में शामिल होने का दोष लग सकेगा, यह भी ऐसे समय में जब कि सरकार सुदृढ़ न हो, सभा का विघटन करने से इंकार करने से हर प्रकार के अनैतिक धंधों और विधायकों तथा राजनीतिक दलों में जोड़-तोड़ और दल-बदल तथा विधायकों को धन प्रलोभन से अपने पक्ष में लेने की प्रवृत्ति को[14] प्रोत्साहन मिलेगा, जबकि दल-बदल विरोधी कानून है जिस में विभाजित होने "और सविलयन" की अनुमति है।

संविधान में इस बारे में कुछ भी उपबंधित नहीं है कि कब, किन बातों से और किन हालात में लोक सभा को विघटित करने की शक्ति का उपयोग किया जा सकेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक मामले में स्थिति की अत्यावश्यकता को देखते हुए निर्णय लेने का पूरा उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर छोड़ दिया गया है। शायद संविधान के निर्माताओं ने विघटन करने की शक्ति के बड़े व्यापक दायरे की परिकल्पना की है।

विघटन की प्रक्रिया

लोक सभा के "सामान्य" विघटन अर्थात् उसकी पांच वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर विघटन, के बारे में प्रक्रिया यह है कि लोक सभा के अन्तिम सत्र की समाप्ति के कुछ दिन पूर्व महासचिव, संसदीय कार्य मंत्री और सदन के नेता, (यदि प्रधान मंत्री स्वयं सदन का नेता नहीं है) या संसदीय कार्य मंत्री (या सदन के नेता जैसी स्थिति हो) के माध्यम से प्रधान मंत्री से पूछता है और सभा को विघटित करने के लिए प्रधान मंत्री द्वारा सुझाई गई तारीख के सम्बन्ध में स्वयं एक पत्र जारी करता है। प्रधान मंत्री का प्रस्ताव, अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत रूप में, महासचिव द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है। नोट के साथ-साथ आदेश का प्रारूप भी भेजा जाता है जिसमें सभा को विघटित करने की प्रस्तावित तारीख बताई गई होती है। राष्ट्रपति उस दिन आदेश पर हस्ताक्षर करते हैं जिस दिन लोक सभा विघटित की जानी होती है। राष्ट्रपति द्वारा आदेश दिए जाने पर इसको, जिस दिन लोक सभा सचिवालय में आदेश प्राप्त होता है, उस दिन असाधारण राजपत्र में अधिसूचित कर दिया जाता है। इसके साथ-साथ लोक सभा सचिवालय आदेश के व्यापक प्रचार के लिए एक प्रेस विज्ञप्ति जारी करता है और इसको आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भी प्रसारित करता है। लोक सभा के विघटन की सदस्यों को जानकारी देने के लिए एक पैरा लोक सभा के समाचार बुलेटिन में भी निकाला जाता है।

जहां प्रधान मंत्री लोक सभा की सामान्य कालावधि की समाप्ति से पूर्व इसको विघटित करने की सिफारिश राष्ट्रपति को करने का निर्णय लेता है, वह

राष्ट्रपति को प्रस्ताव भेजता है और विघटन संबंधी राष्ट्रपति के आदेश की जानकारी अध्यक्ष को देता है। तत्पश्चात् महासचिव इस आदेश को राजपत्र में अधिसूचित करता है और लोक सभा समाचार बुलेटिन के माध्यम से सदस्यों को सूचित करता है। प्रेस और अन्य समाचार माध्यमों से इसका प्रचार भी किया जाता है।[15]

विघटन के प्रभाव :

लोक सभा को विघटित किए जाने के परिणाम निरपेक्ष और अनिवर्तनीय है। विघटन से सभा की कालावधि समाप्त हो जाती है। यह भारमुक्त हो जाती है, इसकी सत्ता समाप्त हो जाती है और तत्पश्चात् नई सभा का गठन होता है। किसी ने ठीक ही कहा है, इससे वस्तुत "संसदीय स्लेट पर स्पञ्ज फिर जाता है", और इसके समक्ष तथा इसकी सभी समितियों के समक्ष लम्बित पड़े सभी कार्य व्यपगत हो जाते हैं। इसमें विधेयकों संबंधी कार्य, जिसको लोक सभा ने तो निष्पादित कर दिया होता है, किन्तु जो विघटन की तारीख को राज्य सभा में लम्बित हो, भी शामिल है। विघटित सभा के रिकार्ड का कोई भी भाग आगे नहीं ले जाया जा सकता है और नई सभा के रिकार्ड या रजिस्टरों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता, तथापि इसमें संसदीय समितियों की रिपोर्टें और मंत्रियों द्वारा संसद् में दिये गये आश्वासन शामिल नहीं होते हैं जिन्हें आगे ले जाया जा सकता है और नई सभा के रिकार्ड और रजिस्टरों में शामिल किया जा सकता है। संक्षेप में, विघटन द्वारा विद्यमान सभा का अन्तिम पटाक्षेप हो जाता है।[16]

मार्कसिनिम के अनुसार लम्बित पड़े सभी कार्यों का इस प्रकार व्यपगत हो जाना तर्क और राजनीतिक दृष्टि से न्यायसंगत है। "तर्क की दृष्टि से इसलिए क्योंकि नई संसद् अपनी पूर्वगामी सभा की गतिविधियों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराई जा सकती जिनके लिए उसका तनिक भी योगदान नहीं होता है। राजनीतिक दृष्टि से इसलिए, क्योंकि ऐसा विश्वास है कि पूर्व सभा का लम्बित पड़ा कार्य नई संसद् से अभिव्यक्त राष्ट्रीय विचारधारा के विपरीत जा सकता है। यह उचित ही है कि नई सभा को यह निर्णय करने का अवसर दिया जाये कि वह किन विषयों के संबंध में विधायी कार्य करेगी।"[17]

संविधान के अनुच्छेद 107 में लोक सभा का विघटन होने पर संसद् के समक्ष पड़े विधेयकों पर पड़ने वाले विघटन के प्रभाव का उपबन्ध किया गया है। लम्बित पड़े विधेयकों के प्रभाव के संबंध में वर्तमान स्थिति इस प्रकार है :[18]

> लोक सभा में विघटन के समय लम्बित पड़े सभी विधेयक, चाहे सभा में पुरःस्थापित हुए हों अथवा राज्य सभा द्वारा भेजे गये हों, व्यपगत हो जाते हैं; और राज्य सभा में, लोक सभा द्वारा पारित विधेयक, किन्तु विघटन की तारीख को जो राज्य सभा द्वारा पारित न किए गए हों और

राज्य सभा में लम्बित हों, व्यपगत हो जाते हैं । केवल राज्य सभा में पुर:स्थापित किए गये विधेयक, जो लोक सभा द्वारा पारित न किए गए हों और अभी राज्य सभा में लम्बित हैं, व्यपगत नहीं होते हैं । राज्य सभा में पुर:स्थापित कोई विधेयक, जो लोक सभा को भेजे जाने के पश्चात् और लोक सभा द्वारा संशोधनों के साथ लौटा दिए जाने के पश्चात् उस सभा में लम्बित हो वह भी व्यपगत हो जाता है ।

तथापि, यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों में असहमति हो और राष्ट्रपति ने सभा का विघटन हो जाने से पूर्व विधेयक पर विचार करने के लिये दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने के अपने अभिप्राय को अधिसूचित कर दिया हो, तो उक्त विधेयक व्यपगत नहीं होता, इस बात के होते हुए भी कि राष्ट्रपति ने दोनों सदनों को संयुक्त बैठक में अधिवेशित होने के लिए आहूत करने का अपना अभिप्राय अधिसूचित कर दिया था और सभा का विघटन बीच में हो चुका है, और दोनों सदनों की बैठक में विधेयक पारित हो सकेगा । संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित और राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिये गये विधेयक पर विघटन के प्रभाव के बारे में संविधान में कोई विशेष उपबंध नहीं है । तथापि, न्यायालय द्वारा पुरुषोत्तमन नम्बूदरी बनाम केरल राज्य के मामले में यह निर्णय दिया गया था कि ऐसा विधेयक जो स्वीकृति के लिए लम्बित है, सभा के विघटन के पश्चात् व्यपगत नहीं होता है । यह भी कि यदि ऐसा विधेयक राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटा दिया जाता है, तो उत्तरवर्ती सभा उस पर पुनर्विचार कर सकती है और यदि उत्तरवर्ती सभा द्वारा इसको (संशोधनों के साथ अथवा बिना संशोधन) पारित कर दिया जाता है, "इसको पुनः पारित हुआ माना जायेगा ।"[10] लोक सभा में लम्बित शेष सभी मामले यथा प्रस्ताव, संकल्प, संशोधन अनुपूरक अनुदान मांग इत्यादि, चाहे कार्यवाही के किसी भी स्तर पर हों, विघटन होने पर व्यपगत हो जाते हैं, सदन में प्रस्तुत याचिकाओं जो याचिका समिति को भेजी गई मानी जाती है के मामले में भी ऐसा ही माना जायेगा । किसी अधिनियम के उपबंधों के अधीन दोनों सदनों के सभा पटलों पर रखे गये सांविधिक नियमों के अनुमोदन या उपभेद करने के लिए लोक सभा द्वारा पारित और सहमति के लिए राज्य सभा को भेजा गया कोई प्रस्ताव और प्रतिलोमन राज्य सभा से प्राप्त ऐसा कोई प्रस्ताव भी लोक सभा का विघटन होने पर व्यपगत हो जाता है ।[20]

लोक सभा की संसदीय समितियों के समक्ष लम्बित सभी कार्य लोक सभा का विघटन होने पर व्यपगत हो जाता है । लोक सभा का विघटन होने पर समितियां भी भंग हो जाती हैं । तथापि, कोई समिति, जो सभा के विघटन से पूर्व अपना कार्य पूरा करने में असमर्थ रहती है, इस बारे में सदन को सूचित कर सकती है, ऐसे मामले में जब समिति ने कोई प्रारम्भिक ज्ञापन या नोट तैयार किया हो अथवा

इसके द्वारा कोई साक्ष्य लिया गया हो तब नई समिति के नियुक्त हो जाने पर उसे यह उपलब्ध करा दिया जाता है। इसी प्रकार, जब सभा का सत्र नहीं होता है तब किसी समिति द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट उसके सभापति द्वारा अध्यक्ष को प्रस्तुत की जाती है और सभा के अगले सत्र में इसको सभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व लोक सभा का विघटन हो जाता है, तो प्रथम सुविधायुक्त अवसर पर महासचिव द्वारा रिपोर्ट नई सभा के सभा पटल पर रखी जाती है। रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय महासचिव इस संबंध में एक वक्तव्य देता है कि पिछली लोक सभा के विघटन से पूर्व यह रिपोर्ट उस सभा के अध्यक्ष को प्रस्तुत की गई थी, जहां अध्यक्ष द्वारा यह आदेश दिया गया हो कि रिपोर्ट को नियम 280 के अधीन मुद्रित अथवा परिचालित किया जाये, महासचिव सभा को इस तथ्य से भी अवगत कराता है।[21]

विघटन के मामले

प्रथम लोक सभा, जिसका प्रथम अधिवेशन 13 मई, 1952 को हुआ था, राष्ट्रपति द्वारा 14 अप्रैल, 1957 को उसकी पांच वर्ष की सामान्य कालावधि से एक मास और नौ दिन पूर्व विघटित कर दी गई थी।

दूसरी लोक सभा, जिसका प्रथम अधिवेशन 10 मई, 1957 को हुआ था, को 31 मार्च, 1962 को उसकी सामान्य कालावधि से 40 दिन पूर्व विघटित कर दिया गया था।

तीसरी लोक सभा का प्रथम अधिवेशन 16 अप्रैल, 1962 को हुआ था और उसको 3 मार्च, 1967 को उसकी सामान्य कालावधि के 44 दिन पूर्व विघटित कर दिया गया था।

चौथी लोक सभा को जिसका प्रथम अधिवेशन 16 मार्च, 1967 को हुआ था। 27 दिसम्बर, 1970 को उसकी पांच वर्ष की पूरी कालावधि में एक वर्ष 79 दिन पूर्व विघटित कर दिया गया था।

संसद् ने 4 फरवरी, 1976 को लोक सभा (कालावधि विस्तार) अधिनियम 1976 पारित किया था जिससे पांचवीं लोक सभा की कालावधि एक वर्ष के लिए बढ़ा दी गई थी जबकि उसकी सामान्य कालावधि 18 मार्च, 1976 को समाप्त हो जानी थी। इसकी कालावधि को दूसरी बार 18 मार्च, 1978 को एक वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया किन्तु उसकी बढ़ी हुई दूसरी कालावधि समाप्त होने से पूर्व उसको 18 जनवरी, 1977 को विघटित कर दिया गया था। यह उस समय किया गया था जब आपातकाल संबंधी घोषणाएं एक, 3 दिसम्बर, 1971 को (बंगला देश के संकट के दौरान) "बाह्य आक्रमण" के आधार पर और दूसरी 25 जून, 1975 को "आंतरिक अशान्ति" के आधार पर साथ-साथ लागू थीं।

छठी लोक सभा का प्रथम अधिवेशन 25 मार्च, 1977 को आयोजित हुआ और लगभग ढाई वर्ष सत्ता में रहने के पश्चात् कुछ रोचक राजनीतिक घटनाओं के मध्य, राष्ट्रपति ने 22 अगस्त, 1979 को इसका विघटन कर दिया।

चौथी लोक सभा का विघटन 1967 के साधारण निर्वाचनों ने कांग्रेस दल को पूरी तरह से हिला कर रख दिया था और उसे इस बात के लिए पुनर्विचार करने पर मजबूर कर दिया था कि असमानताएं कम करने तथा एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने के लिए समाजवादी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जून, 1967 में एक दस सूत्रीय कार्यक्रम अपनाया था जिसमें बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भूतपूर्व राजाओं व राजकुमारों के विशेषाधिकारों और प्रिवी पर्सेज जैसे पेंशन भत्तों का उन्मूलन आदि विभिन्न प्रगतिशील उपायों पर कार्यवाही करने को कहा गया था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जुलाई, 1969 में बंगलौर में हुए अधिवेशन में प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने दस सूत्री कार्यक्रम को क्रियान्वित करने और आर्थिक नीतियों को नया रूप देने के लिए तुरन्त कार्यवाही करने का सुझाव दिया। उन्होंने भूमि सुधारों, एकाधिकारों पर एक प्रतिबन्ध लगाने, बैंकों के राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्सेज एवं विशेषाधिकारों इत्यादि के उन्मूलन पर जोर दिया। उनके सुझावों को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित संकल्प में शामिल किया गया था।

वर्ष 1969 की शेष अवधि में घटनाएं बड़ी तेजी से घटीं। उप-प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई से वित्त विभाग लिए जाने पर उन्होंने मंत्रिमंडल से त्याग पत्र दे दिया। चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। कांग्रेस पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार श्री एन० संजीव रेड्डी को पराजित कर श्री वी० वी० गिरी राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। तत्पश्चात् पार्टी का विभाजन हो गया। कांग्रेस पार्टी के 62 सदस्यों द्वारा दल-बदल करने के परिणामस्वरूप जो शासक कांग्रेस दल बचा रह गया उसे लोक सभा में पूर्ण बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं रहा। वह घट कर एक मात्र बड़ी पार्टी की स्थिति में आ गई। तथापि, श्रीमती इन्दिरा गांधी को लोक सभा में सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त रहा। उनको भारतीय साम्यवादी दल तथा अन्य विपक्ष के गुटों और कुछ स्वतंत्र सदस्यों ने अपना समर्थन दिया। बंगलौर संकल्प में उल्लिखित आर्थिक नीति के अनुसरण में लोक सभा में 18 मई, 1970 को तीन खण्डों वाला एक संक्षिप्त संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक पुरःस्थापित किया गया।

विधेयक में अनुच्छेद 291 और 362 तथा अनुच्छेद 366 के खण्ड (22) को हटाने का उपबन्ध किया गया था जिससे कि भारत में राजाशाही शासन के अंतिम चिह्नों को समाप्त किया जा सके। विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के कथन में कहा गया था :

राजाशाही की अवधारणा, जिसके साथ किन्हीं वर्तमान कृत्यों और सामाजिक उद्देश्यों से असम्बद्ध पेंशन भत्ते और विशिष्ट विशेषाधिकार जुड़े हैं, समता-

वादी सामाजिक व्यवस्था के साथ मेल नहीं खाती। अतः सरकार ने भूतपूर्व भारतीय रियासतों के शासकों के पेंशन भत्ते और विशेषाधिकार समाप्त करने का निर्णय लिया है।[23]

लोक सभा में विधेयक पर केवल 1 सितम्बर, 1970 को विचार प्रारम्भ हुआ। स्वयं प्रधानमंत्री ने विधेयक पर विचार करने का प्रस्ताव पेश किया। शासक दल के सभी सदस्यों को तीन पंक्तियों का 'व्हिप' जारी किया गया जिसमें उन्हें अनिवार्य रूप से सदन में उपस्थित रहने और मतदान करने को कहा गया था तथा किसी प्रकार से "आत्मा की आवाज पर मतदान करने" की पूर्ण मनाही की गई थी।

लोक सभा में 1 और 2 सितम्बर, 1970 को दो दिन विधेयक पर चर्चा हुई। दूसरे दिन शासक पक्ष और विपक्ष के एक बड़े भाग के समर्थन के बीच अध्यक्ष डा० जी० एस० ढिल्लो ने घोषणा की कि श्रीमती गांधी द्वारा पेश किये गये सरकारी संशोधन द्वारा संशोधित रूप में विधेयक 154 मतों की तुलना में 339 मतों अर्थात् वांछित दो तिहाई बहुमत से 9 मत अधिक से पारित हुआ।

खचाखच भरी सभा में जिसमें आज तक के इतिहास में सदस्यों की सबसे अधिक उपस्थिति (98.5 प्रतिशत) थी, विधेयक पर बोलते हुए प्रधान मन्त्री ने सदस्यों से अपील की कि समानता और सामाजिक न्याय के लिए प्रयत्न कर रहे एक प्रगतिशील समाज की आवश्यकता के संदर्भ में वे ऐतिहासिक सूझबूझ प्रदर्शित करें। उन्होंने कहा कि राजकुमारों के पेंशन भत्ते और विशेषाधिकार लोकतन्त्रात्मक संविधान, समय की मांग और परिवर्तन की इच्छा के साथ मेल नहीं खाते।[24]

लोक सभा द्वारा पारित रूप में विधेयक विचारार्थ राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया और उस पर 4 और 5 सितम्बर, 1970 को चर्चा हुई। जिन शब्दों में लोक सभा में अपील की थी लगभग उन्हीं शब्दों में प्रधान मंत्री ने विधेयक को स्वीकृति प्रदान करने की राज्य सभा से अपील की और घोषणा की कि इतिहास के प्रवाह को पीछे नहीं मोड़ा जा सकता और परिवर्तन अवश्यम्भावी है। जब विधेयक पर मतदान हुआ तो उसे पक्ष में 139 मत प्राप्त हुए तथा 75 सदस्यों ने उसका विरोध किया। तथापि, उसे वांछित दो तिहाई मतों का बहुमत प्राप्त नहीं हो सका और उसमें एक मत के एक तिहाई अंश की कमी रह गई। इस प्रकार विधेयक के पारित होने में अवरोध हो गया।[25]

राज्य सभा में संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1970 अस्वीकार किये जाने के पश्चात् प्रधान मंत्री ने केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की एक आपातकालीन बैठक बुलाई। मंत्रिमण्डल ने राष्ट्रपति को यह परामर्श देने का निर्णय लिया कि वह संविधान के अनुच्छेद 366 (22) के अधीन, जिसमें राजा से अभिप्राय, ऐसे किसी व्यक्ति से था जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उस समय राष्ट्रपति ने ऐसी

मान्यता दी हुई हो एक आदेश जारी करके सभी 278 राजाओं की ऐसी मान्यता समाप्त कर दें। अगली प्रात मे पूर्व श्री वी० वी० गिरि ने, जो उस समय दक्षिण मे हैदराबाद मे निवास कर रहे थे, ऐसे राष्ट्रपतीय आदेश पर हस्ताक्षर कर दिये। मान्यता वापस लेने का अवश्यम्भावी परिणाम था प्रिवी पर्सेज और विशेषाधिकारों का स्वत ही उन्मूलन। मान्यता वापस लेने के आदेश जारी किए जाने के चार दिनो के भीतर भूतपूर्व राजाओं मे से पांच राजाओं ने राष्ट्रपतीय आदेश को चुनौती देते हुए और उसके कार्यान्वयन पर एकतर्फा रोक लगाने के लिए उच्चतम न्यायालय में एक याचिका दायर कर दी। उच्चतम न्यायालय ने 15 दिसम्बर, 1970 को अपना निर्णय दिया और 2 की तुलना मे 9 के बहुमत से मान्यता वापस लेने के राष्ट्रपति के आदेश को असंविधानिक, अवैध और अप्रवर्तनीय करार दिया और इस आधार पर उसका कार्यान्वयन रोक दिया।"

उच्चतम न्यायालय के निर्णय की प्रतिक्रिया स्वरूप और उद्वेलित एवं क्रोधित संसद सदस्यों की पूछताछ पर प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने लोक सभा और राज्य सभा को क्रमश 15 और 16 दिसम्बर, 1970 को बताया कि सरकार को, प्रगति की ओर हमारे कूच और हमारे लोगों को बेहतर जीवन-यापन प्रदान करने के हमारे प्रयासों मे, प्रत्येक पग पर अड़चनें मिलने की आशा थी। न्यायालय का निर्णय सरकार की "हार" नहीं और न ही सरकार के रास्ते मे यह कोई "अड़चनें" पैदा करेगा क्योंकि सरकार "उचित संविधानिक उपायों द्वारा प्रिवी पर्सेज उन्मूलन की अपनी नीति के प्रति वचनबद्ध है।"

27 दिसम्बर, 1970 को संविधान के अनुच्छेद 85 के खंड (2) के उप-खंड (ख) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने लोक सभा का विघटन कर दिया। घटनाक्रम, अन्त में जिसका फल राष्ट्रपतीय आदेश जारी करना हुआ जैसाकि राष्ट्रपति भवन से जारी सरकारी विज्ञप्ति मे दर्शाया गया है, बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। विज्ञप्ति का ध्यानपूर्वक पठन करने से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि 24 दिसम्बर, 1970 को प्रधानमन्त्री की राष्ट्रपति से साथ प्रथम भेंट, जब उन्होने लोक सभा के विघटन के संबंध मे प्रस्ताव रखा था, की तारीख और 27 दिसम्बर, 1970 को हुई दूसरी भेंट, जब उन्होने इस संबंध मे मंत्रिमण्डल के निर्णय से अवगत कराया था, की तारीख के बीच चार दिन का अन्तराल था। इससे पता चलता है कि—

(I) विघटन, मन्त्रिमण्डल की मंत्रणा पर स्वीकार किया गया था और न कि केवल प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर, और

(II) राष्ट्रपति ने मामले के सभी पहलुओं, जिनमे विपक्ष के नेताओं, जो इस दौरान उनसे मिले थे, के दृष्टिकोण भी शामिल हैं, पर "ध्यानपूर्वक विचार करने" के पश्चात् ही मंत्रणा स्वीकार की थी।

इससे पता चलता है कि राष्ट्रपति ने यद्यपि वह मंत्रिपरिषद् की "सहायता और मन्त्रणा" मानने के लिए वचनबद्ध हैं, संविधानिक महत्त्व के ऐसे पहलुओं पर "ध्यानपूर्वक विचार" किया।

लोक सभा के विघटन के बारे में 27 दिसम्बर, 1970 को राष्ट्रपतीय आदेश जारी करने के तत्काल पश्चात् प्रधानमंत्री ने राष्ट्र के नाम अपने प्रसारण में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों संबंधी अपने समाजवादी कार्यक्रमों और नीतियों यथा बैंकों का राष्ट्रीयकरण, एकाधिकार और प्रतिबन्धित व्यापार प्रथा पर नियंत्रण आदि को कार्यान्वित करने में उनकी सरकार के मार्ग में आ रही कठिनाई का उल्लेख किया और बताया कि किस प्रकार राज्य सभा में एक मत के अपूर्णांक से भूतपूर्व राजाओं के पेंशन भत्ते और विशेषाधिकारों का उन्मूलन करने संबंधी संविधानिक संशोधन गिर गया और किस प्रकार उच्चतम न्यायालय द्वारा भूतपूर्व राजाओं की मान्यता समाप्त करने संबंधी राष्ट्रपतीय आदेश को रद्द कर दिया गया। प्रधानमंत्री ने कहा कि यद्यपि सरकार को संसद् में बहुमत का समर्थन प्राप्त है, परन्तु उनकी सरकार ने जनता से नया जनादेश प्राप्त करने का निर्णय किया है जिससे कि "समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष कार्यक्रमों और नीतियों को कारगर ढंग से लागू किया जा सके।" उन्होंने लोक सभा के समय पूर्व विघटन को "भारत में एक अभूतपूर्व पग कहा, यद्यपि यह कोई असामान्य संसदीय प्रथा नहीं है।"

लोक सभा में विघटन के समय पार्टीवार स्थिति इस प्रकार थी

कांग्रेस-221, भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)-19, भा० सा० द०-24, द्र०मु०क०-24, जनसंघ-33, कांग्रेस (ओ)-63,स्वतंत्र 35, एस० एस०पी०-17, पी० एस० पी०-15, यू० आई० पी०जी०-29, बी० के० डी०-10, निर्दलीय-24, रिक्त स्थान-3

यह दोहराना आवश्यक है कि राष्ट्रपति को लोक सभा का विघटन करने की मन्त्रणा देते समय श्रीमती गांधी को लोक सभा के सदस्यों के बहुमत का निर्विवाद समर्थन प्राप्त था। यद्यपि सत्तारूढ़ कांग्रेस दल को सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं था, यह अभी एक मात्र बड़ा दल था और इसकी सरकार को अनेक विपक्ष के समूहों और निर्दलीय सदस्यों का बिना शर्त समर्थन प्राप्त था। इस पर भी प्रधानमन्त्री ने विघटन को प्राथमिकता दी क्योंकि जैसाकि उन्होंने 27 दिसम्बर, 1970 को राष्ट्र के नाम अपने प्रसारण में कहा था —

> "राष्ट्र के जीवन में एक ऐसा समय आता है जबकि तात्कालिक सरकार को कठिनाइयों पर काबू पाने के लिए असामान्य कदम उठाने पड़ते हैं जिससे कि राष्ट्र के सम्मुख पेश आई गम्भीर समस्याओं का समाधान निकाला जा सके। अब वह समय आ गया है" यह इसलिए नहीं कि हम केवल सत्ता में बने रहना चाहते हैं, बल्कि उस सत्ता का उपयोग अपनी

जनता के एक विशाल बहुमत के लिए जीवनयापन के बेहतर साधन सुनिश्चित करने और एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था संबंधी उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए करना चाहते हैं · समय हमारी प्रतीक्षा नहीं करेगा। करोड़ों ही लोग, जो अन्न, आवास और रोजगार की मांग कर रहे है, कार्यवाही करने की जोरदार माग कर रहे हैं। लोकतंत्र मे सत्ता जनता के हाथ मे होती है। इसीलिए हमने अपनी जनता के पास जाने और उनसे नया जनादेश प्राप्त करने का निर्णय किया है।[26]

मार्च, 1971 मे आयोजित लोक सभा के नये आम निर्वाचनो से प्रधानमंत्री श्रीमती गाधी के कार्यक्रमो और नीतियो की जीत हुई। उनके शासक कांग्रेस दल ने न केवल अपने आप में निरपेक्ष बहुमत प्राप्त किया बल्कि उसे स्पष्ट रूप मे दो-तिहाई बहुमत प्राप्त हुआ।

छठी लोक सभा का विघटन . निर्वाचनो मे श्रीमती इन्दिरा गाधी के कांग्रेस दल की पराजय के पश्चात् जनता पार्टी, जो कांग्रेस का विकल्प उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न पार्टियो को मिला कर बनी थी, ने सरकार का गठन किया और मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने। जनता पार्टी मे तत्काल ही बिखराव के चिन्ह दिखाई देने लग पड़े, और नीति संबंधी महत्त्वपूर्ण मामलो मे मंत्रिपरिषद् का सामूहिक दायित्व लागू करना कठिन हो गया। श्री राजनारायण, जो एक मंत्री थे, ने सरकार पर सर्वप्रथम खुला आक्रमण किया, जिन्होंने 7 सदस्यों के साथ पार्टी छोड़ दी और एक नई पार्टी जनता (एस) का गठन किया। तत्पश्चात् कुछ और सदस्य दल बदल कर जनता (एस) मे शामिल हो गये। बाद मे श्री चरणसिंह भी दल बदल कर बनी पार्टी में शामिल हो गये और उसके नेता निर्वाचित हुए। कांग्रेस, जो अधिकृत विपक्षी दल बना, के नेता श्री वाई० बी० चव्हाण ने सरकार के विरुद्ध एक अविश्वास प्रस्ताव रखा। श्री मोरारजी देसाई ने 16 जुलाई,1979 को जनता सरकार का त्यागपत्र प्रस्तुत किया। राष्ट्रपति ने उनका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया और जब तक कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं हो जाती, उनको तब तक के लिए सरकार मे बने रहने को कहा।

राष्ट्रपति ने श्री चव्हाण को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। उनके द्वारा अपनी असमर्थता व्यक्त किये जाने पर राष्ट्रपति ने सर्वश्री मोरारजी देसाई और चरण सिंह को अपने समर्थकों की अलग-अलग सूचियां प्रस्तुत करने को कहा। दोनों सूचियां विधिवत् प्रस्तुत की गई। बाद मे, श्री देसाई की सूची मे सम्मिलित कुछ सदस्यों ने कहा कि वे उनका समर्थन नहीं कर रहे हैं। श्री देसाई ने जनता पार्टी के नेतृत्व से त्याग-पत्र दे दिया और श्री जगजीवन राम को इसका नेता चुन लिया गया।

राष्ट्रपति ने श्री चरण सिंह को सरकार का गठन करने के लिए आमंत्रित

किया क्योंकि उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सूची में सदस्यों की संख्या अधिक थी, यद्यपि उनको पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं था। उनको अधिक से अधिक 20 अगस्त, 1979 तक सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने को कहा गया। तथापि, श्री चरणसिंह ने जिस दिन प्रातः सभा की बैठक होनी थी और उनको सभा का विश्वास प्राप्त करना था, सदन के समक्ष एक दिन के लिए भी आए बिना प्रधानमंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया।

त्यागपत्र देते समय श्री चरण सिंह ने राष्ट्रपति को लोक सभा का विघटन करने और नए निर्वाचनों का आदेश जारी करने की मंत्रणा दी। श्री जगजीवन राम ने सरकार का गठन करने को आमंत्रित करने का अपना दावा पेश किया। तथापि, राष्ट्रपति इससे सहमत नहीं हुए बल्कि उन्होंने लोक सभा का विघटन करने की श्री चरणसिंह की मंत्रणा स्वीकार कर ली और श्री चरणसिंह को, जब तक निर्वाचनों के पश्चात् नयी मंत्रिपरिषद् गठित नहीं हो जाती, कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करते रहने को कहा। लोक सभा के विघटन के लिए उत्तरदायी उक्त घटनाओं के दौरान जो प्रत्यक्ष महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हुआ वह था "क्या राष्ट्रपति लोक सभा के विघटन की प्रधानमंत्री श्री चरणसिंह की मंत्रणा को अस्वीकार कर सकता था।" इस पर भिन्न-भिन्न मत थे। एक पक्ष यह था कि राष्ट्रपति श्री चरण सिंह की मंत्रणा स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं थे, विशेष रूप से ऐसे समय जबकि उनकी नियुक्ति सशर्त की गई थी और उनको बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं था। वास्तव में इन सभी शंकाओं का समाधान करने के लिए पहले ही संविधान में बयालीसवां संशोधन जोड़ा जा चुका था जिसके द्वारा अनुच्छेद 74(1) में शब्द "करेगा" जोड़ा गया था जिसके द्वारा राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा स्वीकार करना अनिवार्य बना दिया गया था तथापि, संवैधानिक मामलों में कभी भी कोई बात पत्थर की लकीर नहीं होती है।

नवीं लोक सभा के लिए चुनावों के नतीजे आ जाने के बाद उसके विधिवत् गठन के लिये आवश्यक अधिसूचना जारी करने का प्रश्न आया। अधिसूचना निर्वाचन आयोग को जारी करनी थी किन्तु आठवीं लोक सभा का अभी राष्ट्रपति ने विघटन नहीं किया था और उसकी संवैधानिक कार्यावधि में अभी समय शेष था। ऐसी स्थिति में कुछ क्षेत्रों में यह मत व्यक्त किया गया कि आठवीं लोक सभा का विघटन हुए बिना ही नवीं लोक सभा का गठन किया जा सकता है। यह मत नितान्त भ्रामक और असंगत था, क्योंकि

(1) संविधान में एक ही लोक सभा सदन का प्रावधान है अतः एक ही समय दो लोक सभा सदन नहीं रह सकते।

(2) नये सदन का गठन होते ही उसके सदस्य वेतन, कुछ भत्ते और कुछ अन्य सुविधाओं के अधिकारी हो जाते हैं तथा जब तक पुरानी सदन

का विघटन न हो तब तक उसके सदस्य भी इस सब के अधिकारी रहते हैं किन्तु यह सब एक समय में एक ही लोक सभा के सदस्यों को उपलब्ध कराया जा सकता है।

(3) संविधान लागू होने से आज तक सदैव नयी लोक सभा का गठन होने से पहले पुरानी लोक सभा का विघटन किया गया है।

(4) सदन का गठन होते ही राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल जाता है कि वह उसका विघटन कर सके। अगर पहली लोक सभा का विघटन किये बगैर नई लोकसभा का गठन हो जाये तो राष्ट्रपति के सामने दो विधियत् गठित सदन होंगे जिन दोनों का या जिनमें से एक का विघटन किया जा सकता है। संविधान-निर्माताओं ने ऐसी परिकल्पना कभी नहीं की हो सकती।

यदि आठवीं लोक सभा का विघटन किये बिना नवीं लोकसभा का गठन कर दिया जाता तो संविधानिक दृष्टि से बड़ी विषम स्थिति पैदा हो जाती और बहुत-सी कठिनाईयां पैदा हो सकती थी। अत यह उचित ही हुआ कि अन्तत 27 नवंबर, 1989 को राष्ट्रपति ने आठवीं लोक सभा का विघटन कर दिया और 2 दिसम्बर, 1989 को नवीं लोक सभा के गठन की अधिसूचना जारी की गई।

संदर्भ

1 देखिये बी. एस. मार्केसिनिस : द थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आॅफ डिसोल्यूशन आॅफ पार्लियामेंट, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972, अध्याय—।

2 संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा लोक सभा की अवधि ■ वर्ष कर दी गई थी। परन्तु 1978 में चौवालीसवें संशोधन द्वारा इसे पुनः पांच वर्ष कर दिया गया।

3. इस प्रकार की वृद्धि की कोई अधिकतम सीमा नहीं है। अभिप्राय यह है कि प्रत्येक बार लोक सभा की कालावधि एक वर्ष के लिए बढ़ाने हेतु बार-बार विधि पारित करना सम्भव होगा ताकि आपातकाल की सम्पूर्ण अवधि के लिए लोक सभा का अधिवेशन चालू रखा जा सके और राष्ट्रीय अस्तित्व के कार्यों में राष्ट्र का ध्यान न हटाना पड़े। परन्तु जैसे ही आपातकाल समाप्त हो, सभा के नये निर्वाचन आयोजित किए जाने चाहिए और तत्पश्चात् लोक सभा की कालावधि ■ मास से अधिक काल के लिए

बढ़ाई नहीं जा सकेगी ।

इस मत पर विस्तारपूर्वक चर्चा के लिए देखिए बी जी वर्गीज द्वारा "डिसोल्यूशन ऑफ लोक सभा—व्यूज एण्ड नोट्स", जनरल ऑफ कांस्टीट्यूशनल एण्ड पालियामेंट्री स्टडीज, वाल्यूम 5 न० 3 ।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, धारा 14 ।

एल ए. अब्राहम एण्ड एसी सी ह्वाटरे पालियामेंट्री डिक्शनरी, लन्दन, 1956 पृ 82

ए.आई आर. 1965—केरल 229

अनुच्छेद 78(ग) भी देखें जिसमें लिखा है · "यह प्रधानमंत्री का 'किसी विषय को, जिस पर किसी मन्त्री ने विनिश्चय कर दिया हो किन्तु मन्त्रि-परिषद् ने विचार नहीं किया हो, राष्ट्रपति के अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचार के लिए रखने का कर्त्तव्य होगा।"

27 दिसम्बर, 1970 को जारी विज्ञप्ति का पाठ इस प्रकार है

"24 दिसम्बर को प्रधानमंत्री राष्ट्रपति से मिले थे और उनके सम्मुख लोक सभा विघटित करने का प्रस्ताव रखा था । उन्होंने कहा कि उक्त सिफारिश करने का एक मात्र उद्देश्य लोगों से नवीन जनादेश प्राप्त करने की सरकार की इच्छा है ताकि वह अपने समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष कार्यक्रमों और नीतियों को कारगर ढंग से लागू कर सके । तदुपरान्त, कुछ विपक्षी नेता भी उसी दिन राष्ट्रपति से मिले थे ।

इस साथ प्रधानमन्त्री दोबारा राष्ट्रपति से मिली थीं और उन्हें लोक सभा विघटित करने के मन्त्रिपरिषद् के निर्णय से अवगत कराया । मामले की बारीकी से जांच करने के पश्चात् राष्ट्रपति ने सिफारिश स्वीकार कर ली है ।

प्रधान मन्त्री के आकाशवाणी से 18-1-1972 को राष्ट्र के नाम प्रसारित भाषण से संगत उद्धरण नीचे दिये गये हैं :—

"प्रत्येक व्यक्ति यह देख सकता है कि पिछले एक लम्बे काल की अपेक्षा आज राष्ट्र अधिक स्वस्थ, कुशल और गतिशील बन गया है । हमारे सामने अब यह सवाल है कि जिन राजनीतिक प्रक्रियाओं पर मजबूर होकर हमें प्रतिबन्ध लगाने पड़े थे उनको पुन स्थायित्व किस प्रकार प्रदान किया जाय ...... ।

"हमारी शासन प्रणाली इस विश्वास पर टिकी है कि सरकार अपनी शक्ति जनता से प्राप्त करती है, और लोग हर बार कुछ वर्षों के बाद, स्वतन्त्रतापूर्वक और बिना किसी रुकावट के अपने द्वारा वांछित सरकार

निर्वाचित करके और नीतियों के प्रति अपनी पसन्द व्यक्त करके, अपनी सार्वभौमिक इच्छा को अभिव्यक्त रूप देते हैं।"

"किन्तु हमारा यह भी पक्का विश्वास है कि संसद् और सरकार को वापस जनता के पास जाना चाहिए और उनसे राष्ट्र की शक्ति और कल्याण के कार्यक्रमों और नीतियों के बारे में स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए।"

"जनता की शक्ति में इस प्रकार के अटूट विश्वास के कारण ही मैंने राष्ट्रपति को वर्तमान लोक सभा का विघटन करने और निर्वाचन आयोजित करने का परामर्श दिया है। उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया है...."

11. 22 अगस्त, 1979 को जारी की गई विज्ञप्ति का पाठ इस प्रकार है :--

"राष्ट्रपति ने 22 अगस्त, 1979 को प्रधान मंत्री श्री चरणसिंह और उनके मंत्रिपरिषद् का त्यागपत्र स्वीकार करते हुए उन्हें तब तक पद पर बने रहने को कहा है जब तक कि कोई अन्य व्यवस्था नहीं हो जाती। उन्होंने विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं, सांविधानिक और विधि विशेषज्ञों से परामर्श किया।"

"मंत्रिपरिषद् ने 20 अगस्त, 1979 को आयोजित अपनी बैठक में सर्वसम्मति से यह परामर्श देने का निर्णय लिया कि जनता से नए जनादेश प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध किए जाएं। जनता दल को छोड़कर लगभग सभी राजनीतिक दल इस बात के लिए सहमत थे कि निर्वाचकों से नवीन जनादेश प्राप्त किया जाये। राष्ट्रपति ने, स्थिति के सभी संगत पहलुओं पर विचार करने के पश्चात्, लोक सभा को विघटित करने का निर्णय किया। संविधान के अनुच्छेद 85 के खण्ड (2) के उपखंड (ख) के अधीन लोक सभा विघटित करने के बारे में एक राष्ट्रपतीय आदेश जारी कर दिया गया है।"

"राष्ट्रपति ने प्रधान मंत्री और उनके मंत्रिपरिषद् के कुछ सहयोगियों से परामर्श किया था, जिन्होंने आश्वासन दिया कि :---

(1) निर्वाचन शांतिपूर्वक, स्वतंत्र और निष्पक्ष होंगे। निर्वाचक नामावलियों का पुनरीक्षण तत्काल शुरू हो जाएगा और अक्टूबर तक इसे पूरा कर लिया जाएगा। निर्वाचन समय सारणी नवम्बर में शुरू होगी और दिसम्बर, 1979 तक इसको पूरा कर लिया जाएगा। यह सुनिश्चित बनाया जाएगा कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण और लोक सभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय को प्रतिनिधित्व देने के बारे में संविधानिक उपबंध लागू रहें।

(2) इस अवधि के दौरान सरकार कोई भी ऐसा निर्णय नहीं लेगी जिससे नई नीति का निर्धारण हो अथवा पर्याप्त मात्रा में नया व्यय हो या व्यापक

प्रशासनिक कार्यकारी निर्णय हो । तथापि, तात्कालिक महत्व का कार्य, जिसमें राष्ट्रीय हित संलग्न हो, रोका नहीं जाएगा।"

12. क्या सभा को विघटित करने के बारे में मन्त्रिपरिषद् द्वारा राष्ट्रपति को दी गई मंत्रणा राष्ट्रपति पर बंधनकारी है, इस प्रश्न पर शमशेर सिंह के मामले में चर्चा की गई थी। न्यायालय ने दृष्टान्त स्वरूप एक अपवादिक स्थिति का उल्लेख किया जहां ऐसा प्रतीत होता था कि राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की मंत्रणा के अनुसार कार्य नहीं कर सकता है। क्या बयालीसवें संशोधन द्वारा पुनःस्थापित आज्ञापक पाठ के समक्ष यह अपवाद ठहर सकता है, इस प्रश्न का समाधान निर्वाचन के सिद्धान्तों को लागू करके निकालना होगा। मन्त्रिपरिषद् की मंत्रणा के प्रश्न पर इनको लागू करने पर यह प्रतीत होगा कि जहां इस प्रकार की मंत्रणा उपलब्ध नहीं होती है अथवा जहां कृत्य अन्तर्निहित रूप से इस प्रकार का हो कि उसे विद्यमान मन्त्रिपरिषद् की मंत्रणा से सम्पन्न न किया जा सकता हो वहां राष्ट्रपति के लिए मन्त्रि परिषद् की मंत्रणा के अनुसार कार्य करना अनिवार्य नहीं हो सकता है।

विस्तृत जानकारी के लिए देखिए शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1974 उ० न्या० 2192, पैरे 66—32

श्री जैलसिंह के राष्ट्रपतित्व काल के अन्तिम समय के दौरान, विशेष रूप से डाक-विधेयक, जिसे राष्ट्रपति ने स्वीकृति प्रदान नहीं की थी और स्वीकृति प्रदान करने के बारे में दी गई मंत्रणा को कथित रूप से पुनर्विचार के लिए लौटा दिया गया था, यह प्रतिवाद कुछ अधिक मुखर हो गया था।

13. संविधान सभा वाद-विवाद, खण्ड 7, पृ० 1158 और खण्ड 8, पृ० 107.
14. देखिये एम पी जैन "प्रोप्राइटी आफ डिसाल्यूशन आफ लोक सभा" जरनल आफ कान्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंट्री स्टडीज, खण्ड 5 स 3
15 एम. एन. कौल एण्ड एस एल शकधर, प्रेक्टिस एण्ड प्रोसिजर ऑफ पार्लियामेंट, मैट्रोपालिटन, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1978 पृ 158
16 वही, पृ. 159, एम एन कौल, इफेक्ट आफ डिसोल्यूशन अपान पेंडिंग बिजिनेस इन पार्लियामेंट, जरनल ऑफ पार्लियामेंट्री इन्फारमेशन, खण्ड-चार, स 1, पृ 19
17. मार्कसिलिम, पूर्वोल्लिखित, पृ 17-18
18 संविधान का अनुच्छेद 108 (5)
19. ए. आई आर. 1962, उच्चतम न्या 694
20. कौल और शकधर, पूर्वोल्लिखित, पृ 160
21. वही, पृ. 160–161 और कौल, जे. पी आई (खण्ड 4, स. 1), पूर्वोल्लिखित ।

22. उदाहरण के लिए देखिए भारत का राजपत्र, असाधारण भाग–1, 27 दिसम्बर, 1970.
23 "टाइम्स ऑफ इण्डिया", 19 मई, 1970 और देखिए "द हिन्दु", 10 मई, 1970.
24. लोक सभा वाद–विवाद, 1–2 सितम्बर, 1970
25 सरकार को न्यूनतम 149½ मतों (240 सदस्यों में से उपस्थित और मतदान करने वाले 224 सदस्यों के दो–तिहाई) की आवश्यकता थी। देखिए सुभाष काश्यप, "द इण्डियन प्रिमिज एण्ड द कांस्टिट्यूशन, द टेबल (लंदन) खण्ड 40, 1971 (1972)
26 द ईयर्स ऑफ एंडीवर, सिलेक्टिड स्पीचेज ऑफ इंदिरा गांधी, अगस्त, 1966 से अगस्त, 1972, नई दिल्ली, पृ 75–76

□□□

16

दल सचेतक, संसदीय विशेषाधिकार और दल-परिवर्तन विरोधी कानून

हमारे संसदीय इतिहास में पहली बार, आठवीं लोक सभा के नवें सत्र में शासक दल के मुख्य सचेतक (Chief Whip) की कार्यवाही को लेकर सदन के समक्ष विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया। इससे बहुत गरमा-गरमी और विवाद पैदा हुआ तथा संविधानिक, वैधानिक और संसदीय प्रक्रिया की दृष्टि से महत्वपूर्ण मुद्दे उठाये गए।

मामले के तथ्य 17 नवम्बर, 1987 को प्रश्न काल के बाद असम के एक सदस्य (श्री दिनेश गोस्वामी) ने असम के क्षेत्राधिकार में आने वाले स्थानों में नागालैंड के चुनावों के लिए मतदान केन्द्रों की स्थापना के संबंध में एक प्रश्न उठाना चाहा, इस पर बहुत शोरगुल हुआ, अनेक बार व्यवधान डाला गया और कई सदस्य तो आपस में ही विवाद करने लगे। एक ही साथ अनेक सदस्य बोल रहे थे और सभी अध्यक्ष की अनुमति के बिना बोल रहे थे। ऐसे में जो कुछ कहा गया, उसमें से अधिकांश सुनाई नहीं दिया अथवा, और अध्यक्ष के आदेश से कार्यवाही वृत्तान्त में सम्मिलित नहीं किया गया। निरन्तर व्यवधान डाले जाने के कारण और सभी ओर से हो रहे शोरगुल के बीच अध्यक्ष के लिए व्यवस्था कायम करना कठिन हो गया। उन्होंने टिप्पणी की कि सदन में जो हो रहा है, वह बहुत शर्मनाक और खेदजनक है और इस प्रकार के "अपकर्म और हुडदंग" के लिए उनके मन में कोई जगह नहीं है। अध्यक्ष महोदय द्वारा भर्त्सना किए जाने के बाद और श्री गोस्वामी द्वारा उठाये गए मुख्य मुद्दे से सम्बन्धित मामलों को स्पष्ट करने के लिए गृह मन्त्री के सहमत हो जाने पर सदन में तनाव और शोरगुल घटने लगा और ऐसा लगा कि सदन में फिर से सामान्य और व्यवस्थित रूप से कार्य होने लगेगा, किन्तु तभी दो सदस्यों, श्री रामधन और प्रोफेसर के. के. तिवारी के बीच तीखी झड़प हो गई। अध्यक्ष ने कहा कि उन्हें नहीं सुनाई दिया कि प्रोफेसर तिवारी और श्री रामधन ने एक-दूसरे से क्या कहा किन्तु प्रोफेसर तिवारी को उठकर श्री रामधन को डराते-

धमकाते हुए, उनकी ओर बढ़ते देखा। अध्यक्ष ने देखा कि वे दोनों एक-दूसरे की ओर बढ़े और उन्होंने एक-दूसरे को मुक्के दिखाये। इन परिस्थितियों में, अन्ततः अध्यक्ष ने सभा को 1-1 बजे पुनः समवेत होने के लिए स्थगित कर दिया।

दोपहर बाद जब सभा पुनः समवेत हुई तो अध्यक्ष ने दोनों सदस्यों (श्री रामधन और प्रोफेसर के.के. तिवारी) को व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने को कहा। दोनों सदस्यों ने कहा कि उनकी एक-दूसरे के प्रति कोई दुर्भावना न थी। श्री रामधन ने कहा कि उन्होंने तो केवल अपने प्रति अनुचित व्यवहार किये जाने पर आपत्ति की थी। प्रोफेसर के.के. तिवारी ने यह स्पष्टीकरण दिया कि सदन में अपने सभी साथियों के प्रति उनका व्यवहार सम्मानजनक और मित्रतापूर्ण रहा है और उनकी भावना श्री रामधन को किसी भी प्रकार से धमकी देने की नहीं थी। तत्पश्चात् अध्यक्ष ने यह विनिर्णय दिया कि इस मामले को यहीं समाप्त समझा जाए। अध्यक्ष के इस विनिर्णय के बाद भी सर्वश्री रामधन और राजकुमार राय दोनों सत्तारूढ़ कांग्रेस (आई) दल के निलम्बित सदस्य-सहित अनेक सदस्य इस बात पर अड़े हुये थे कि अध्यक्षपीठ को प्रोफेसर तिवारी को उनके आपत्तिजनक व्यवहार के लिए खेद व्यक्त करने और क्षमायाचना करने के लिए कहना चाहिए। ऐसा लगता था कि जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा तब तक वे सभा की कार्यवाही को नहीं चलने देंगे। अध्यक्ष ने सदस्यों से व्यवस्था कायम रखने का अनुरोध किया और उनसे अपनी सीटों पर बैठ जाने का अनुरोध किया ताकि सभा की कार्यवाही सुचारू रूप से चल सके। फिर भी अनेक सदस्य खड़े ही रहे और उन्होंने अध्यक्ष से उनके विनिर्णय पर बहस करनी चाही। इस स्थिति में, कांग्रेस (आई) दल के मुख्य सचेतक (श्री एच. के. एल. भगत) ने सभा में उन दोनों सदस्यों को लिखित "व्हिप" जारी किए। स्पष्टतः ऐसा उसी क्षण किया गया था। "व्हिप" हाथ से लिखे गए थे और उसमें सदस्यों से कहा गया था कि वे "और आगे कुछ न कहें" तथा अध्यक्ष के विनिर्णय का पालन करें। भारत अथवा ब्रिटेन के विधानमण्डलों में कहीं भी इस प्रकार का व्हिप जारी किए जाने का पूर्वदृष्टांत नहीं था। व्हिप का पाठ इस प्रकार था :

श्री रामधन,

आप अब भी कांग्रेस पार्टी में हैं। मैं, कांग्रेस पार्टी के मुख्य सचेतक के रूप में आपसे और आगे कुछ न कहने तथा अध्यक्ष के विनिर्णय का पालन करने के लिए कहता हूं। यह व्हिप है जिसका पालन अनिवार्य है।

एच. के. एल. भगत
17-11-87

श्री रामधन,
"संसद सदस्य"
प्रिय श्री राजकुमार राय,

आप अब भी कांग्रेस पार्टी में हैं। अध्यक्ष ने विनिर्णय दिया है। हम सब को अवश्य ही इसका पालन करना चाहिए और हम उनके विनिर्णय के विरुद्ध और आगे न बोलें। मैं मुख्य सचेतक के रूप में आपको यह निदेश दे रहा हूं। यह व्हिप है जिसका पालन अनिवार्य है।

एच के एल भगत
17-11-87

श्री राजकुमार राय
"संसद सदस्य"

व्हिप जारी करने के पश्चात् श्री भगत ने सभा में निम्नलिखित टिप्पणी की

"महोदय, मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं। वह अध्यक्षपीठ के विनिर्णय का पालन नहीं कर रहे हैं। मैंने कांग्रेस पार्टी के मुख्य सचेतक के रूप में उन्हें और श्री राय, दोनों को एक व्हिप जारी कर दिया कि वे कांग्रेस पार्टी के व्हिप का पालन करें और अध्यक्षपीठ के विनिर्णय को चुनौती न दें। यदि वे व्हिप की अवज्ञा करना चाहते हैं, तो वे जानबूझकर ऐसा करें। मैंने व्हिप जारी कर दिया है और मैं उन दोनों को व्हिप जारी करने के लिए प्राधिकृत हूं।"

बाद में 17 से 20 नवम्बर, 1987 के दौरान अनेक सदस्यों (सर्वश्री रामधन, के पी. उन्नीकृष्णन, जयपाल रेड्डी, मधु दण्डवते और विद्याचरण शुक्ल) ने सदन के दो सदस्यों—सर्वश्री रामधन और राजकुमार राय–को डराने-धमकाने और सभा में व्हिप जारी करके सदन में उनके वाक्स्वातन्त्र्य को प्रतिबन्धित करने के लिए संसदीय कार्य मन्त्री (श्री एच के एल भगत) के विरुद्ध विशेषाधिकार के प्रश्न के अलग-अलग नोटिस दिए।

अन्तर्ग्रस्त मुद्दे

सदस्यों द्वारा विशेषाधिकार के प्रश्न को लेकर दिये गए नोटिसों से जो प्रश्न उत्पन्न हुए, उनमें से कुछ प्रश्न इस प्रकार हैं

(एक) क्या संसदीय कार्य मन्त्री को, कांग्रेस (आई) पार्टी का मुख्य सचेतक होने के नाते, अपनी पार्टी के दो सदस्यों को सभा में व्हिप जारी करने का अधिकार है,

(दो) क्या मन्त्री को उपर्युक्त तरीके से व्हिप जारी करके जानबूझकर दोनों सदस्यों को सभा के सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन से रोकने तथा उन्हें डराने-धमकाने के लिए दोषी ठहराया जा सकता है,

(तीन) क्या मन्त्री ने किसी प्रकार अध्यक्ष के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है,

(चार) क्या सभा में लिखित अथवा मौखिक व्हिप जारी करना सदन की अवमानना है; और

(पांच) ऐसे में जब कि सभा के सम्मुख कोई प्रस्ताव नहीं था, क्या इन दोनों

सदस्यो को अध्यक्ष के विनिर्णय का पालन करने का निर्देश देने के लिए व्हिप जारी किया जा सकता है ?

"व्हिप"—अर्थ और कार्य

शब्दकोष मे "व्हिप" का शाब्दिक अर्थ है मूठ अथवा कुन्देयुक्त कोडा, जिसका प्रयोग किसी व्यक्ति को अपराध का दण्ड देने अथवा अश्वचालित बग्घी को चलाने मे घोडे को तीव्र गति से दौडाने हेतु उसे पीटने के लिए किया जाता है । इसी प्रकार "टू व्हिप" का अर्थ है किसी व्यक्ति या पशु को कोडा मारना । ऐसा माना जाता है कि इस शब्द की उत्पत्ति आखेट की शब्दावली मे हुई है जिसमे शिकारी का वह कर्मचारी, जो शिकारी कुत्तो (हाउण्डस) को सभालने और उन्हे उनके स्थान मे रखने के लिये जिम्मेदार होता था "व्हिपर इन" कहलाता था ।

राजनीतिक दलो और ससदीय जीवन के सन्दर्भ मे "व्हिप" दलो और उनके सदस्यो के बीच सबध के मामले मे एक महत्त्वपूर्ण कडी है । "व्हिप" दल के नेताओ और सदस्यो के बीच सूचना के आदान-प्रदान के लिए दोतरफा माध्यम रूप से कार्य करता है । "व्हिप" ससदीय दल अथवा ग्रुप का वह अधिकारी होता है जो उसके *सदस्यों की उपस्थिति को सुनिश्चित करने, विभिन्न मुद्दो के सम्बन्ध मे दल की* नीति से उन्हे अवगत कराने और सभा मे उठने वाले विशिष्ट मुद्दो के सम्बन्ध मे मतदान करने के मामले मे दल के अनुशासन का पालन कराने हेतु समय-समय पर आवश्यक निर्देश अथवा व्हिप जारी करने के लिए जिम्मेदार होता है । दूसरी ओर, *व्हिप विभिन्न मुद्दो के सबध मे सदस्यो की राय के बारे मे जानकारी भी जुटाता है* और दल के नेताओ को महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है ।

ऐसा माना जाता है कि सर्वप्रथम अठारहवी शताब्दी मे सर एडमड बर्क द्वारा ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स मे इस शब्द का ससदीय सन्दर्भ मे प्रयोग किया गया था । सन् 1769 मे ऐसा हुआ कि एडमण्ड बर्क ने हाउस आफ कामन्स मे एक मत विभाजन के मामले मे मतदाताओ को एकत्रित करने के लिए किये गये प्रबल प्रयासो का उल्लेख करते हुये बताया कि किस प्रकार सम्राट् के मन्त्रियो ने अपने समर्थको को एकजुट करने के लिए प्रबल प्रयास किए, किस प्रकार उन्होने सभी दिशाओं से अपने सदस्यों को "व्हिपिंग" करके सदन मे बुला भेजा । बर्क द्वारा प्रयुक्त यह शब्द जनता को अच्छा लगा और शीघ्र ही यह ससदीय प्रयोग मे आम हो गया ।

वस्तुत ब्रिटेन मे पार्टी की नीतियो के अनुसार मतदान करने की प्रणाली के विकास के साथ-साथ व्हिप की सकल्पना का भी क्रमिक रूप से विकास हुआ है । उदाहरण के लिए वर्ष 1836 मे केवल 23 प्रतिशत मामलो मे दलगत आधार पर सभा मे मत विभाजन के रूप मे मतदान हुआ, अर्थात् 100 मे से 77 मामलो मे सदस्यो द्वारा दल के विरुद्ध मतदान किया गया । 1898 तक दल की नीति के

अनुसार किए गए मतदान की प्रतिशतता बढ़कर 69 हो गई। वर्ष 1924—28 के दौरान यह बढ़कर 95 प्रतिशत हो गई और 1948 में यह बढ़ते-बढ़ते 98 प्रतिशत तक जा पहुंची।[2]

व्हिप वेस्टमिन्स्टर की प्रतिरूप संसदों तक ही सीमित नहीं है। यह संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देशों में भी जहाँ हाउस आफ रिप्रेज़ेंटेटिव्स में प्रत्येक दल को व्हिप के रूप में जाने जाने वाले एक सदस्य की सेवाएं प्राप्त होती हैं। वेस्टमिन्स्टर के समान ही अमरीकी कांग्रेस में व्हिप आवश्यक दोतरफा सम्प्रेषण का कार्य करते हैं, एक ओर तो वे दल के नेताओं को सदस्यों के विचारों से अवगत कराते हैं और दूसरी ओर सदस्यों को नेता के विचारों की जानकारी देते हैं।

भारतीय संसदीय प्रणाली के सन्दर्भ में किसी संसदीय दल का व्हिप वह व्यक्ति होता है जिसे यह सुनिश्चित करने के लिए पदनामित किया जाता है कि दल के सदस्य पर्याप्त संख्या में उपस्थित हों और वे महत्वपूर्ण मुद्दों पर दल द्वारा निश्चित की गई नीति के अनुसार मतदान करें। लोक सभा/राज्य सभा में सरकारी पक्ष का मुख्य सचेतक संसदीय कार्य मन्त्री होता है और वह सीधा सदन के नेता के प्रति उत्तरदायी होता है। सरकार को संसदीय कार्यों के सम्बन्ध में परामर्श देना उसके कर्त्तव्य का अंग है। जहाँ तक सदस्यों का सम्बन्ध है, मुख्य सचेतक दल के नेता के नेत्र और कान के रूप में कार्य करता है। सत्र के दौरान, दल के नेता का परामर्शदाता होने के नाते उसे निरन्तर प्रधान मन्त्री से सम्पर्क बनाये रखना होता है। दो राज्य मन्त्री मुख्य सचेतक की सहायता करते हैं उसका यह उत्तरदायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक सदस्य अपने दायित्व को भली-भाँति निभाये और उसका दल सुदृढ़, मजबूत और सुसंगठित रहे सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दलों के सचेतक सामान्य हित के मामलों को हल करने और अनेक नाज़ुक अवसरों पर एक-दूसरे का समझने और आपसी तालमेल के लिए मिलते रहते हैं। इस प्रकार सत्तारूढ़ दल और विपक्ष के सचेतक संसदीय लोकतन्त्र के सुचारू और कुशल कार्यकरण के लिए बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पिछले कुछ दशकों में सचेतक के कार्यों में बहुत वृद्धि हो गई है और उसमें कई दिशाओं में विस्तार हो गया है। विशेषकर संसदीय राजनीति में सचेतक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सरकार का बने रहना अथवा न बने रहना, सदन में एक निर्णायक मत पर निर्भर हो सकता है। सरकारी पक्ष के सचेतक को "सभा को बनाना और उसे कायम रखना" होता है, जिसका तात्पर्य यह है कि सदस्यों को सदन की सम्पूर्ण बैठक के दौरान मत विभाजन सूचक घंटियों की स्वर सीमा में रखकर गणपूर्ति सुनिश्चित करना उसकी जिम्मेदारी है विशेषकर ऐसे समय में जबकि किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर विचार किया जा रहा हो। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करना और विशेष रूप से

महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर अपने दल की शक्तियों को व्यवस्थित रखना है। संसद् में सचेतक दल के प्रबन्धक होते हैं और संसदीय दल के प्रबन्धक की कला को 'व्हिप-क्राफ्ट' कहा जा सकता है।

सभा प्रबन्धक होने के नाते सत्तारूढ़ दल के मुख्य सचेतक को मतभेदों को दूर करना होता है और दूसरे दलों के सचेतकों से परामर्श करके सभा के कार्य को योजनाबद्ध करना होता है। उसे एक ओर संसद् के सदनों, उनके पीठासीन अधिकारियों तथा उनके सचिवालयों और दूसरी ओर मन्त्रियों और सरकार के मन्त्रालयों और विभागों के बीच संपर्क बनाये रखना होता है। संक्षेप में आज सचेतक के कार्यों की परिधि में प्रबन्ध, सम्प्रेषण और प्रबोधन का कार्य सम्मिलित है। वे अपने सदस्यों को सभा के कार्य और विभिन्न मुद्दों पर दल की नीति से अवगत रखते हैं और दल के अनुशासन को लागू करते हैं। यहां हमारा सरोकार मुख्यतः सचेतकों की प्रबन्धकीय भूमिका अथवा उनके अनुशासनिक कार्यों से है।

व्हिप (सचेतक) के पद के अतिरिक्त "व्हिप" शब्द का एक और अर्थ भी है। सत्रों के दौरान विभिन्न दलों के सचेतक अपने सदस्यों को महत्त्वपूर्ण वाद-विवादों और मत विभाजनों की सूचना देने और उन्हें मतदान का समय बताने तथा समय पर उपस्थित रहने हेतु कहने के लिए आवधिक नोटिस और निर्देश भेजते हैं। ऐसे नोटिस और/अथवा निर्देश भी "व्हिप" कहलाते हैं। ऐसा बताया जाता है कि ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स में 1621 में ही ऐसे व्हिपों का प्रयोग किया जाता रहा है जब सम्राट् के मित्रों को छः बार अधोरेखांकित नोटिस भेजे जाते थे।

व्हिप की किस्में

दलगत निर्देशों के संदर्भ में व्हिप तीन प्रकार के कहलाते हैं— एक बार रेखांकित व्हिप, दो बार रेखांकित व्हिप और तीन बार रेखांकित व्हिप। इनका पाठ जितनी बार अधोरेखांकित होता है, उसी के आधार पर इन्हें ऐसा कहा जाता है। रेखाओं की संख्या इस बात की सूचक है कि सदन के सम्मुख रेखांकित मुद्दे का महत्त्व और उसकी अविलम्बनीयता किस स्तर की है। एक अधोरेखा युक्त व्हिप सबसे सामान्य होता है, इसमें सदस्य को सदन में तारीख विशेष को समय विशेष पर उपस्थित रहने को कहा जाता है। साथ ही एक अधोरेखा इस बात की भी सूचक है कि मत विभाजन होने की संभावना नहीं है। दो अधोरेखायुक्त व्हिप अधिक बाध्यकर और दल का आपेक्षाकृत कड़ा निर्देश माना जाता है। यह उस स्थिति में जारी किया जाता है जबकि कोई पर्याप्त महत्त्वपूर्ण कार्य हो और मत विभाजन की संभावना हो। तीन अधोरेखायुक्त व्हिप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य और मत-विभाजन का सूचक होता है। सदस्य के लिए इसका पालन करना और सदन में उपस्थित होना अनिवार्य होता है। यह पूर्णतः बाध्यकर है और कोई भी सदस्य अपने जोखिम पर ही इसकी अवज्ञा कर सकता है। तीन अधोरेखायुक्त व्हिप की

अवज्ञा किये जाने पर निश्चित रूप से गम्भीर अनुशासनिक कार्यवाही किए जाने की पूर्ण संभावना होती है।

रावर्ट जेक्सन ने ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स में कामर्वेटिव और लेबर पार्टी के व्हिपों द्वारा जारी तीन प्रकार के व्हिपों को निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है[2]

(एक)

बुधवार, 2 अगस्त को हाउस 2.30 बजे म० प० समवेत होगा,

यदि आवश्यक हुआ तो लाइसेंसिंग बिल के लिए दस बजे वाला नियम स्थगित करने का प्रस्ताव 10 बजे म० प० प्रस्तुत किया जाएगा।

कामन मार्केट में संबंधित सरकार के एक प्रस्ताव पर चर्चा होगी (पहला दिन)

सम्पूर्ण चर्चा के दौरान पर्याप्त संख्या में उपस्थित रहने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया जाता है।

लाइसेंसिंग विधेयक लार्ड्स के संशोधनों पर आगे विचार (यदि पूरा न हुआ हो)

मत विभाजन होगा और ठीक दस बजे म० प० तथा कार्य की समाप्ति तक आपसे उपस्थित रहने के लिए विशेष रूप से अनुरोध किया जाता है बशर्ते कि आपने इससे अनुपस्थित रहने की पूर्व अनुमति न ले ली हो।

गुरुवार 3 अगस्त को हाउस 2.30 बजे म० प० समवेत होगा।

कामन मार्केट पर चर्चा की समाप्ति।

एक अति महत्त्वपूर्ण मत विभाजन होगा और 9.30 बजे म० प० आपकी उपस्थिति आवश्यक है।

शुक्रवार, 4 अगस्त को हाउस 11 बजे म० प० समवेत होगा।

ग्रीष्मावकाश के लिए स्थगन

आपसे उपस्थित होने का अनुरोध किया जाता है।

मार्टिन रेडमेयने
(कामर्वेटिव व्हिप)
1961

(दो)

गोपनीय

सोमवार, 5 अप्रेल 1965 को हाउस 2.30 बजे म० प० समवेत होगा।

रेंट बिल : दूसरा वाचन और धन संकल्प का समिति चरण।
(धन संकल्प-45 मिनट के लिए इगजेम्टिड बिजनिस)
मत विभाजन होगा और आपकी उपस्थिति अनिवार्य है।

इंडस्ट्रियल एंड प्राविडेंट सोसाइटीज बिल (लार्ड्स) : दूसरा वाचन
(समेकन कार्यवाही)

साउथ ईस्ट एशिया ट्रीटी आर्गेनाइजेशन (इम्यूनिटीज एण्ड प्रिविलेजेस) आर्डर सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार (इगजेम्टिड बिजनिस)

मिनिस्टर्स आफ दि क्राउन आर्डर को रद्द करने के लिये विपक्ष का अनुरोध (एस० आई० 1965 स० 319) (इगजेम्टिड बिजनिस)

मत विभाजन हो सकते हैं और कार्यवाही समाप्ति तक आपकी उपस्थिति अनिवार्य है बशर्ते कि आपने पक्के तौर पर अनुपस्थित रहने की अनुमति न ले ली हो।

नोट : इण्डस्ट्रियल एण्ड प्राविडेंट सोसाइटीज बिल (लार्ड्स) के लिये 10 बजे वाला नियम स्थगित करने का प्रस्ताव 10 बजे म० प० प्रस्तुत किया जायेगा।

मंगलवार, 6 अप्रैल, को हाउस 2.30 बजे म० प० समवेत होगा।

चासलर आफ दि एक्सचेकर बजट पर चर्चा आरम्भ करेंगे।

बजट संकल्पों के पारित हो जाने तक आपकी उपस्थिति अनिवार्य है

(एडवर्ड शार्ट)
(लेबर व्हिप)
1965

भारत में भी हमारे यहां वैसे ही तीन प्रकार के व्हिप हैं, निम्नलिखित उदाहरण संसद में कांग्रेस (आई) दल द्वारा जारी तीन प्रकार के व्हिपों को स्पष्ट करते हैं :—

(एक)

संसद मे कांग्रेस (आई) दल

व्हिप संख्या 10/8/9/87

125, संसद् भवन
नई दिल्ली
4 दिसम्बर, 1987

राष्ट्रीय नौवहन बोर्ड चुनाव मंगलवार, 8 दिसम्बर, 1987 को 11.30 बजे से 14.30 बजे तक समिति कमरा सं० 62, पहला तल, संसद भवन मे होंगे

दल के उम्मीदवार निम्न हैं

1 श्रीमती एम० चन्द्रशेखर
2 श्रीमती विद्यावती चतुर्वेदी
3 श्री नित्यानन्द मिश्र

लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्यों से अनुरोध है कि वे दिल्ली में उपस्थित रहें और दल के उम्मीदवारों के पक्ष में अवश्य ही मत दें। सदस्यों से यह भी अनुरोध है कि वे नीचे बताए गये तरीके से मतदान करें :—

मत विभाजन संख्या 1 से 135 श्रीमती एम० चन्द्रशेखर
मत विभाजन संख्या 136 से 270 श्रीमती विद्यावती चतुर्वेदी
मत विभाजन संख्या 271 से आगे के सदस्य श्री नित्यानन्द मिश्र के पक्ष मे

अपने प्रथम अधिमान मत डालें

सदस्यों से यह भी अनुरोध है कि वे दल के उम्मीदवारों से भिन्न किसी अन्य उम्मीदवार को कोई अधिमान मत न दें।

एच० के० एल० भगत
मुख्य सचेतक

सेवा मे
लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्य

(दो)

संसद मे कांग्रेस (आई) दल

125, संसद् भवन
नई दिल्ली
1 दिसम्बर, 1987

व्हिप सं० 7/8/9/87

सरकारी कार्य की निम्न मदों को बुधवार, 2 दिसम्बर, 1987 को लोक सभा में लिया जायेगा :—

(एक) 1987-88 के लिये बजट (सामान्य) के सम्बन्ध में अनुदानों की अनुपूरक मांगों और उससे सम्बन्धित विनियोग (संख्या 5) विधेयक पर चर्चा और मतदान;

(दो) प्राधिकृत अनुवाद (केन्द्रीय विधि) संशोधन विधेयक पर विचार तथा उसे पारित करना;

(तीन) निरसन और संशोधन विधेयक पर विचार तथा उसे पारित करना; और

(चार) पारसी विवाह और विवाह विच्छेद (संशोधन) विधेयक पर विचार और उसे पारित करना।

लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्यों से अनुरोध है कि वे बुधवार, 2 दिसम्बर, 1987 को सभा में उपस्थित रहें और सरकार के पक्ष का समर्थन करें।

शीला दीक्षित
उप मुख्य सचेतक

सेवा में

लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्य

(तीन)

संसद् में कांग्रेस (आई) दल

व्हिप सं० 6/3/9/87

125, संसद् भवन
नई दिल्ली
19 नवम्बर, 1987

सदस्यों को सूचित किया जाता है कि संविधान (56 वां संशोधन) विधेयक, 1987 मंगलवार, 24 नवम्बर, 1987 को लोक सभा में विचार करने तथा पारित करने के लिए लिया जायेगा।

जैसा कि सदस्यों को विदित ही है, भारत के संविधान में संशोधन करने वाला विधेयक सदन की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से तथा उस सदन के उप-

स्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई से अन्यून बहुमत से पारित होता है।

अत: लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्यों से अनुरोध किया जाता है कि वे अपना कार्यक्रम इस प्रकार बनाएं जिससे कि वे मंगलवार, 24 नवम्बर, 1987 को सभा में और विधेयक पर विचार करने तथा पारित करने के प्रत्येक चरण पर उपस्थित रह सकें और सरकार के पक्ष का समर्थन कर सकें।

एच० के० एल० भगत
मुख्य सचेतक

सेवा में
लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्य।

(चार)

संसद् में कांग्रेस (आइ) दल

ह्विप संख्या 13/8/9/87

125, संसद् भवन,
नई दिल्ली।
8 दिसम्बर, 1987

आगामी कुछ दिनों के दौरान लोक सभा में चर्चा हेतु कार्य की कुछ महत्वपूर्ण मदें ली जायेंगी। अतएव, लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्यों से अनुरोध किया जाता है कि वे संसद् के चालू अधिवेशन के अन्त तक दिल्ली में रहें और सभा में उपस्थित रहें तथा सभा में चर्चा के लिये आने वाले विभिन्न विषयों पर सरकार के पक्ष का समर्थन करें।

एच० के० एल० भगत
मुख्य सचेतक

सेवा में
लोक सभा में कांग्रेस (आई) दल के सभी सदस्य।

इससे यह पता चलता है कि एक ओर ब्रिटेन के लेबर और कन्जर्वेटिव संसदीय दल के ह्विपों द्वारा जारी किये गये ह्विपों और दूसरी ओर भारत में कांग्रेस (आई) संसदीय दल के ह्विपों द्वारा जारी किये गये ह्विपों में प्रयोग की गई भाषा में कुछ अन्तर है। सबसे महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जबकि ब्रिटेन के ह्विप उपस्थित

रहने के लिये केवल "अनुरोध" अथवा "विशेष रूप से अनुरोध" करते हैं या उपस्थिति को "अनिवार्य" घोषित करते हैं, भारत में व्हिप इससे भी आगे बढ जाते हैं और वे सदस्यों को न केवल उपस्थित रहने के लिए कहते हैं अपितु उन्हें सरकार के पक्ष का समर्थन करने के लिए भी निदेश देते हैं अथवा व्हिप द्वारा बताये गये तरीके में "दल के उम्मीदवारों के पक्ष में अवश्य ही मतदान करने के लिए" कहते हैं। ब्रिटेन में व्हिप "समर्थन" या "मतदान" के लिये नही केवल "उपस्थिति" के लिये ही अनुरोध करते हैं। यद्यपि दल के सदस्यों को उपस्थित रहने के लिये कहने का आशय स्पष्ट ही है और उनसे आशा की जाती है कि वे किसी भी मत विभाजन में दल के निर्णय का समर्थन करेंगे, संभवत ब्रिटेन के हाऊस आफ कामन्स मे चली आ रही प्रथा में एक विशेष तरीके से मतदान करने के लिये व्हिप में विशेष निदेश देना किसी सदस्य की अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता और संसद में मतदान करने के उसके मौलिक विशेषाधिकार का हनन समझा जाता है।

ब्रिटेन में, व्हिप का मिलना दल की सदस्यता का विशेषाधिकार समझा जाता है और कोई भी सदस्य व्हिप को न मानने के लिए स्वतन्त्र है। हाऊस आफ कामन्स में व्हिप को जारी करना दल का आन्तरिक मामला माना जाता है और व्हिप हमेशा हाऊस के बाहर जारी किया जाता है। सभा में व्हिप को मौखिक अथवा लिखित रूप में जारी करने की बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस प्रकार के व्हिप को जारी करने और सदस्य को व्हिप न मानने के विरुद्ध चेतावनी देने का अर्थ वास्तव में सभा की अवमानना हो सकता है। व्हिप में सदस्यों को केवल सभा के कार्य की सूचना दी जाती है और यह सुनिश्चित किया जाता है कि वे सभा में उपस्थित रहें।[3] यदि कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य को बोलने से रोकने की कोशिश करता है अथवा उसमें अपना भाषण जारी न रखने के लिये कहता है तो इसका तात्पर्य सदस्य को उत्पीडित करना होगा। इसके अतिरिक्त, व्हिप अध्यक्षपीठ के कृत्यों पर अपना अनधिकार स्वत्व नहीं जमा सकता और व्हिप का प्रयोग हाऊस में स्पीकर द्वारा दिये गये विनिर्णय को चुनौती देने से सदस्यों को रोकने में नही किया जा सकता। ब्रिटेन में हाऊस आफ कामन्स के दीर्घकालीन इतिहास में ऐसा कोई मामला नहीं आया है जब व्हिप सभा में ही जारी किया गया हो अथवा जब दल के मुख्य व्हिप ने दल के कुछ चुनींदा सदस्यों को ही कोई व्हिप जारी किया हो।

रावर्ट जैक्सन के अनुसार, ब्रिटेन के राजनैतिक दलों में खुले विद्रोह को रोकने के लिए व्हिप का काम धमकी भरी भाषा में नहीं किया जाता है।[4] लेकिन एक दूसरा मत भी है जो इस बात पर जोर देता है कि दल की सदस्यता के दायित्वों का पालन सुनिश्चित करने के लिए अनुशास्ति की भूमिका का होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, लेबर पार्टी की आचार संहिता में अनेक कड़ी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों की व्यवस्था है। पहली, मुख्य रूप से लिखित में भर्त्सना। दूसरी, "निलंबन"

जो वास्तव में परिवीक्षाधीन अवधि है जिसके दौरान सदस्य को यद्यपि पार्टी की चर्चा में भाग नहीं लेने दिया जाता है, तथापि उससे आशा की जाती है कि वह पार्टी के व्हिप का पालन करे। एक अन्य अति गंभीर अनुशासित पार्टी व्हिप का वापस लिया जाना है जिसके बारे में निर्णय (निलंबन की भाँति) संसदीय लेबर पार्टी करती है। पार्टी व्हिप को वापस लेने का अर्थ यह होता है कि सदस्य को अब व्हिप द्वारा मार्गनिर्देश वाला साप्ताहिक परिपत्र नहीं भेजा जाता है और वह वास्तव में संसदीय दल का सदस्य नहीं रहता है। इसका बिल्कुल उलट प्रभाव भी पड़ सकता है क्योंकि जिस सदस्य के मामले में व्हिप वापस लिया गया होता है वह अपने मत के अनुसार बोल सकता है और मतदान कर सकता है और इस प्रकार वह संसदीय दल के अन्दर की अपेक्षा उसके बाहर ज्यादा परेशानी पैदा कर सकता है। एक और कार्यवाही यह हो सकती है कि उसे राष्ट्रीय दल से निष्कासित कर दिया जाए और उसके निर्वाचन क्षेत्र से दल के उम्मीदवार के रूप में उसे पुनः चुनने से इंकार कर दिया जाए।[5] तथापि हाउस आफ कामन्स में मतविभाजन लाबियों में दल के व्हिप के आदेश को न मानने के कारण संसद सदस्यों को दंड देने के लिए दल से किसी सदस्य को निष्कासित करने के अधिकार का अनेक वर्षों से प्रयोग नहीं किया गया है।[6]

प्रश्न यह है कि भारत में वर्तमान स्थिति किस प्रकार और कहां तक उससे भिन्न है ?

भाषण और मतदान करने की स्वतंत्रता का विशेषाधिकार भारत के संविधान में, सदनों, समितियों और संसद सदस्यों के विशेषाधिकारों का निर्धारण इसलिए नहीं किया गया है ताकि उनका निर्धारण आमतौर पर संसद द्वारा पारित विधि द्वारा किया जा सके तथा यह भी कहा गया है कि जब तक उनका ऐसा निर्धारण नहीं हो जाता है, वे वही रहेंगे जो संविधान के लागू होने के दिन वे ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स में थे। फिर भी, भारत के संविधान के निर्माताओं ने दो विशेषाधिकारों को सबसे अधिक महत्त्व दिया जिनको वे संसदीय लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक मानते थे और इसलिए उन्होंने उनको संविधान के पाठ में अनुच्छेद 105(1) और (2) में विशेष रूप से सम्मिलित किया। संसद् के सदस्यों के ये विशेषाधिकार सदनों और उनकी समितियों में भाषण और मतदान करने की स्वतन्त्रता के विशेषाधिकार हैं। संसद् में या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात अथवा दिए हुए किसी मत के विषय में संसद के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही न चल सकेगी। संविधान के अनुच्छेद 105(1) और (2) का पाठ निम्नवत है .

105(1), इस संविधान के उपबंधों के तथा संसद् की प्रक्रिया के विनियामक नियमों और स्थाई आदेशों के अधीन रहते हुए संसद में वाक् स्वातंत्र्य होगा।

(2) ससद् मे या उसकी किसी समिति मे कही हुई किसी बात अथवा दिए हुए किसी मत के विषय मे ससद् के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय मे कोई कार्यवाही न चल सकेगी और न किसी व्यक्ति के विरुद्ध ससद् के किसी सदन के प्राधिकार के द्वारा या अधीन किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतो या कार्यवाहियो के प्रकाशन के विषय मे इस प्रकार की कोई कार्यवाही चल सकेगी।

इस प्रकार कोई भी सदस्य ससद् मे अपने भाषण और कृत्य के लिए केवल सविधान के उपबधो और सदन के नियमो तथा अनुशासन के अध्यधीन है। उसे ससद् अथवा उसकी किसी समिति मे कही गई किसी बात अथवा दिये हुए किसी मत के विषय मे पूर्ण विशेषाधिकार प्राप्त है। सदस्य बिना किसी भय के अथवा पक्षपात के अथवा अपने विचार रखने के कारण किसी भी तरह के प्रतिकूल परिणाम के प्रति आशकित हुए बिना निर्मुक्त रूप मे बोल सकते है और मत दे सकते है। वे जैसा चाहे, अपने विचार रख सकते है और मत दे सकते है। दलीय व्यवस्था और पार्टी व्हिप सस्था की विद्यमानता मे यह स्वतत्रता विधिसम्मत रूप मे कहा तक कम की जा सकती है? यह प्रश्न 1973 मे उस समय उठा था जब तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष डा जी एस ढिल्लन ने एक ससदीय दल द्वारा अपने सदस्यो को अन्य दलो के सदस्यो के साथ मेल मिलाप न रखने के लिए जारी कथित निदेश के सबध मे विशेषाधिकार के प्रश्न को नामजूर करते हुए अन्य बातो के साथ-साथ निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

> उन्हे अपने दल की बैठको मे, अपने दल की कार्यकारिणी समिति की बैठको मे हर विषय पर चर्चा करने का अधिकार है और उन्हे अपने दल के लोगो को निदेश देने का अधिकार है। यदि उनके दल का कोई व्यक्ति इसका विरोध करता है और मेरे पास आता है और कहता है यह केवल निदेश ही नही है, यह सदस्य की हैसियत मे मेरे कर्तव्य निर्वहन के मार्ग मे एक रुकावट है, तब मैं इस पर विचार करूगा..."[7]

पुन 1978 मे, श्री एडुआर्डो फलेरो ने विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन पर की जाने वाली कार्यवाही के सम्बन्ध मे दल मे निर्णय करने के लिए दल की बैठक बुलाने के कारण प्रधान मन्त्री और जनता ससदीय दल के पदाधिकारियो के विरुद्ध विशेषाधिकार के प्रश्न के बारे में एक सूचना दी। प्रधान मन्त्री ने श्री फलेरो के प्रस्ताव पर अपनी टिप्पणियों मे अध्यक्ष को सूचित किया कि इस मामले पर चर्चा की गई थी परन्तु इस मामले मे जनता पार्टी ने कोई व्हिप जारी नही किया था। इस पर अपनी सम्मति न देते हुए अध्यक्ष ने यह टिप्पणी की:

"सभा मे पिछले विनिर्णयो ने यह स्थापित किया है कि सभा दल की बैठको मे होने वाली किसी चर्चा को ध्यान मे नही रखेगी। जब सभा विशेषा-

धिकार के प्रश्न के बारे में निर्णय करती है, उस समय यह अर्द्ध-न्यायिक संस्था के रूप में कार्य करती है · सभा के समक्ष आये प्रस्ताव पर पक्षपातपूर्ण ढंग से विचार नहीं किया जा सकता। परन्तु इस जैसे मामले में भी, दल द्वारा मामले पर चर्चा करना कोई गलत बात नहीं है क्योंकि इसमें सदस्यों को सभा के समक्ष आये प्रस्ताव के प्रति सही दृष्टिकोण के बारे में अन्य सदस्यों को आश्वस्त करने का अवसर मिल सकता है।'[8]

दल परिवर्तन विरोधी कानून (anti-defection law) भारत के संविधान अथवा सदन के प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में सचेतक का कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में, हाल ही तक राजनैतिक दलों को इस विषय में कोई जानकारी नहीं थी। संविधान (बावनवां संशोधन) विधेयक, 1985, जिसे दल परिवर्तन विरोधी कानून के रूप में जाना जाता है, पारित होने के बाद से "व्हिप" ने हमारी संसदीय लोक-तांत्रिक प्रणाली में महत्त्वपूर्ण स्थान ले लिया है। इस संशोधन में अन्य बातों के साथ-साथ दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता का भी उपबंध है

(1) संसद् अथवा राज्य विधानमण्डल का कोई सदस्य जो किसी राज-नैतिक दल का सदस्य हो, सदन का सदस्य होने के लिए निरर्हत होगा

(क) यदि उसने ऐसे राजनैतिक दल की जिसका वह सदस्य है अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है; या

(ख) यदि वह ऐसे राजनैतिक दल द्वारा जिसका वह सदस्य है अथवा उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा दिये गये किसी निदेश के विरुद्ध दोनों ही दशाओं में, ऐसे राजनैतिक दल, व्यक्ति या प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के बिना, सदन में मतदान करता है या मतदान करने से विरत रहता है और ऐसे मतदान या मतदान करने से विरत रहने को ऐसे राजनैतिक दल, व्यक्ति या प्राधिकारी ने ऐसे मतदान या मतदान करने से विरत रहने की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर माफ नहीं किया है।

संविधान की दसवीं अनुसूची के उपबन्धों के अधीन अध्यक्ष द्वारा बनाये गये लोक सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबन्ध है कि दसवीं अनुसूची के अन्तर्गत किसी सदस्य की निरर्हता के सम्बन्ध में केवल अध्यक्ष से याचिका द्वारा ही पूछा जा सकता है। याचिका पर विचार करने के पश्चात् अध्यक्ष याचिका को रद्द कर सकता है अथवा यह घोषणा कर सकता है कि सदस्य निरर्ह हो गया है। (खण्ड 6 और 8)

अतः यह स्पष्ट है कि संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 तथा इसके अन्तर्गत बनाये गये दल-परिवर्तन विरोधी नियमों के लागू होने पर राजनीतिक

दलो को सवैधानिक मान्यता एव वैधता मिलने लगी तथा दल नेतृत्व द्वारा जारी निदेश विधिसगत बन गए हैं । अतः पार्टी निदेशों अथवा व्हिप का उल्लघन करने से सदस्य निरर्ह हो सकता है और उसे सदस्यता से वचित होना पड सकता है । तथापि, यह बात नोट की जानी चाहिए कि निरर्ह होने के लिए सदस्य को "राजनीतिक दल द्वारा जारी निदेश के विरुद्ध सदन मे मतदान करना होगा या विरत रहना होगा" । मतदान से भिन्न कार्यों पर यह लागू नही होता अर्थात् यह सदन मे भाषण देने की किसी सदस्य की स्वतत्रता मे बाधक नही है ।

विशेषाधिकार का मामला

वर्तमान मामले मे सुस्थापित प्रक्रिया के अनुसार अध्यक्ष महोदय ने ससदीय कार्य मत्री के विरुद्ध 17-20 नवम्बर, 1987 के दौरान प्राप्त विशेषाधिकार के मामलो सम्बन्धी सभी सूचनाए उनकी टिप्पणी के लिए भेजी । जब 18 नवम्बर, 1987 को कुछ सदस्यो ने सदन मे मामला उठाने की अनुमति मांगी, तो अध्यक्ष ने अन्य बातो के साथ-साथ टिप्पणी की

> "मैं आपको यह आश्वासन दे सकता हू कि इस सदन मे भाषण की स्वतत्रता के मौलिक अधिकार का हनन नही किया जा सकता और न ही कभी किया जाएगा । इसका प्रश्न ही नही उठता । मैंने श्री भगत अथवा अन्य कभी किसी मामले मे कोई निर्णय नही लिया है क्योकि मुझे इस मामले की जाच करनी है । मुझे इसकी जाच करने का समय दीजिए । यही मै चाहता हू । मामले का अध्ययन किये बिना मै अपना निर्णय नही दे सकता । पहले मुझे यह जाच करनी है कि क्या यह एक प्रथम दृष्टया मामला है— । मुझे इस मामले के सभी पहलुओ का अध्ययन करने दीजिए । मुझे दोनो पहलुओ से ही देखना है—मै आपको आश्वासन दे सकता हू कि यदि मै उनके स्पष्टीकरण से सतुष्ट नही हुआ तो नियमों के अनुसार कार्यवाही करूंगा ।"

ससदीय कार्य मत्री, श्री एच. के. एल. भगत ने अपनी टिप्पणियो और उत्तर के रूप में भलीभांति तैयार एक विस्तृत वक्तव्य 1 दिसम्बर को अध्यक्ष महोदय को भेजा, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित बातें कही गई थी :—

(एक) सविधान के अनुच्छेद 105 (1) में ससद मे भाषण की स्वतत्रता के अधिकार की गारटी दी गई है, "बशर्ते कि यह सविधान के उपबंधो तथा संसद की प्रक्रिया को विनियमित करने वाले नियमो एवं स्थायी आदेशो के अनुरूप हो ।"

(दो) श्री रामधन और श्री राय सभा की कार्यवाही मे बाधा डाल रहे थे, अध्यक्ष पर आक्षेप कर रहे थे और अध्यक्ष के विनिर्णय का निरतर उल्लघन करके

सदन तथा अध्यक्ष महोदय की अवमानना कर रहे थे। उन्हें लिखित व्हिप भेजा गया था कि "वे अध्यक्ष के विनिर्णय को मान लें।"

(तीन) यद्यपि सदन की गरिमा, मर्यादा एवं अनुशासन बनाए रखने का दायित्व एवं विशेषाधिकार अध्यक्षपीठ का होता है तथापि सदस्यों का भी कर्तव्य है कि नियमों के अनुसार तथा विभिन्न दलों/ग्रुपों के नेताओं/सचेतकों के निर्देशों के अनुसार कार्य करें ताकि सभा की कार्यवाही के सुचारू रूप से संचालन को सुनिश्चित करने के लिए किसी परिस्थिति विशेष में अपने सदस्यों को नियन्त्रित करके अध्यक्षपीठ की सहायता की जा सके।

(चार) सचेतकों के विभिन्न सम्मेलनों में भी यह चर्चा की जा चुकी है कि सचेतकों की जिम्मेदारी सबंधित दलों के सदस्यों द्वारा सदन की मर्यादा और गरिमा बनाये रखने में सभापति की सहायता करना भी है।

(पांच) मुख्य सचेतक/सचेतक का सदन में अपने दल के सदस्यों को व्हिप जारी करने से कोई नहीं रोक सकता। यदि सदन में कुछ मुद्दे अचानक उठ जाते हैं और मत विभाजन हो जाता है तो सचेतकों को ही अपने सदस्यों को निर्देश देना होता है कि वे सदन में चल रही कार्यवाही पर क्या रवैया अपनायें।

(छह) सचेतक सदन में विशेषाधिकार का उल्लंघन तथा गरिमा और अनुशासन भंग करने के दोषी सदस्यों को ही अनुदेश जारी कर सकते हैं।

निष्कर्षतः श्री भगत ने सदस्यों के भाषण की स्वतन्त्रता के अधिकार के बारे में अपना विश्वास दोहराया जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 105 में दिया गया है और कहा कि दोनों सदस्यों के प्रति उनकी कोई दुर्भावना नहीं थी तथा उनके कर्तव्य पालन में बाधा डालने तथा उन्हें परेशान करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। उनसे अध्यक्षपीठ की आज्ञा की अवहेलना न करने के लिए कहने का उनका मात्र यही उद्देश्य था कि सदन की मान-मर्यादा तथा अनुशासन बनाये रखा जाये।

मंत्री जी के वक्तव्य की एक-एक प्रति, जिसमें इस मामले के बारे में उनकी टिप्पणी सम्मिलित थी, उन सभी सदस्यों को दी गई जिन्होंने विशेषाधिकार हनन की सूचनाएं दी थी। सदस्य उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने पूर्ववर्ती मुद्दों को दोहराया। उनमें से एक प्रो. मधु दण्डवते ने अन्य बातों के साथ-साथ कहा कि श्री भगत ने "व्हिप का उल्लंघन न करने के लिए श्री रामधन और श्री राय को सदन में खुले तौर पर धमकी दिए जाने" से संबंधित आपत्ति के बारे में कुछ नहीं कहा। श्री रामधन ने तो यहाँ तक कहा कि श्री भगत के उत्तर से तो सभा की अवमानना बढ़ी है जो उन्होंने दावा करके और उनके द्वारा सदन में अपने दल के सदस्यों को विचार व्यक्त करने से रोकने के लिए अधिकार के इस्तेमाल से की है। श्री जयपाल रेड्डी ने अध्यक्ष की पूर्ववर्ती टिप्पणियों का हवाला दिया कि "व्हिप

पार्टी का आतरिक मामला है" और पूछा कि सदन मे व्हिप को खुले तौर पर धमकी इसके अनुरूप कैसे है। श्री उन्नीकृष्णन ने अन्य बातो के साथ-साथ इस बात पर जोर दिया कि यद्यपि सदस्यगण, विशेषतौर पर मुख्य सचेतक, अनुशासन बनाये रखने मे अध्यक्ष महोदय की सहायता कर सकते हैं तथापि वे "अध्यक्ष के कृत्यो को नही ले सकते" और नियमो को लागू करने का प्रयास नही कर सकते।

अध्यक्ष महोदय ने सदस्यो द्वारा व्यक्त किये गये विचारो और ससदीय कार्य मत्री की टिप्पणियो पर विचार करने के पश्चात् लोक सभा प्रक्रिया तथा कार्य सचालन संबधी नियमो के नियम 222 के अधीन 14 दिसम्बर, 1987 को सदन मे विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात् श्री रामधन ने सदन की अनुमति मागी। सदन द्वारा अनुमति दिये जाने के पश्चात् श्री रामधन ने विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया। इस मामले पर सदन मे विस्तारपूर्वक चर्चा हुई। श्री रामधन के अतिरिक्त कुल 14 सदस्यो ने बहस मे भाग लिया। सबधित मुद्दो के महत्त्व को देखते हुए, विशेषाधिकार प्रश्न पर बोलते हुए सदन मे कुछ सदस्यो द्वारा दिये गये भाषणो से कुछ अश उद्धृत करना उचित होगा।

श्री रामधन

सविधान मे "दल" और "सचेतक" शब्दो का कोई जिक्र नही है। 52वा सशोधन और उसके द्वारा जोडी गई 10वी अनुसूची मे 'सभा' 'विधानमडल दल' 'मूल राजनीतिक दल' शब्दो की परिभाषा दी गई है। इसमे ऐसे व्यक्ति अथवा प्राधिकारी की बात कही गई है जिसको दल द्वारा 'इस निमित्त' अथवा मतदान करने या मतदान से विरत रहने के सबध मे निर्देश देने हेतु प्राधिकृत किया गया हो। यदि यह मान भी लिया जाए कि सचेतकों को उपरोक्त प्राधिकार है, तो भी उनका क्षेत्राधिकार मत विभाजन के दौरान मतदान तक सीमित है और इसका सविधान और प्रक्रिया नियमो के अन्तर्गत सदस्यो को दिये गये अधिकारो का प्रतिलघन करने के लिए प्रयोग नही किया जा सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सदस्यो को अनुशासित करने का अधिकार अध्यक्ष को है। सभा का नेता अथवा मुख्य सचेतक किसी सदस्य को निलम्बित करने का प्रस्ताव भी तब तक प्रस्तुत नहीं कर सकता है जब तक कि अध्यक्ष किसी सदस्य को अभद्र व्यवहार करने के कारण नाम लेकर न पुकारे।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चू कि व्हिप होने वाले मत विभाजन के समय सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए जारी किये जाते हैं वे दल के सभी सदस्यो को बिना किसी अपवाद के जारी किये जाते हैं। कुछ सदस्यों को ही एक ऐसे विषय पर व्हिप जारी करना, जिस पर मतदान या मत विभाजन न हो रहा हो, व्हिप का मजाक बनाना है।

सचेतकों के अधिकारों और कृत्यों के बारे में सभा द्वारा कोई नियम नहीं बनाये गये हैं और न ही सभा के नियमों में उनका उल्लेख है क्योंकि इसका सभा से कोई सबध नहीं है और व्हिप जारी करना दलों का आंतरिक मामला है।

माननीय अध्यक्ष को सभा की प्रक्रिया तथा कार्यवाही पर नियत्रण रखने का पूर्ण अधिकार है हालांकि इस बारे में सर्वोच्च अधिकार सभा के पास ही है। अन्य कोई भी व्यक्ति सभा की प्रक्रिया अथवा कार्यवाही को नियत्रित अथवा विनियमित नहीं कर सकता और किसी विधि अथवा नियम के अन्तर्गत व्हिप जारी करने की शक्ति किसी को नहीं दी गई है।

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

"ससदीय कार्य मंत्री के उत्तर में सभा की अवमानना का मामला और गम्भीर हुआ है क्योंकि उन्होंने माननीय अध्यक्ष की उपस्थिति में अपने दल के सदस्यों की सभा में अभिव्यक्ति पर रोक लगाई है। सभा में भाषण की अभिव्यक्ति के मेरे अधिकार को दबाने का यह उनका स्पष्ट प्रयास था। यदि सचेतक इस प्रकार सदस्यों को सभा में किसी मामले में बोलने अथवा न बोलने के लिए निर्देश जारी करता है तो सदस्यों के सवैधानिक अधिकार मजाक बनकर रह जाएंगे। इस *स्थिति में मैं अध्यक्ष महोदय से विनम्र निवेदन करता हूं कि इस मामले को विचार* के लिए तथा उस पर निर्णय लेने के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाए।

प्रो० मधु दंडवते

अनुच्छेद 105 के अन्तर्गत हमें जो भाषण की स्वतत्रता की गारटी दी गई है वह सविधान में निर्धारित प्रक्रिया तथा विभिन्न नियमों, प्रक्रिया और स्थायी आदेशों में निर्धारित बातों के अधीन है"""नियम 352 में भी भाषण की स्वतत्रता *पर कतिपय प्रतिबध लगाये गये हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 105 के अन्त*-गंत ससद सदस्यों को प्राप्त भाषण की स्वतन्त्रता पर अन्य कोई प्रतिबंध नहीं है।

""*जहां तक व्हिप का सबध है, सविधान की दसवीं अनुसूची में इस सबध में थोड़ा सा उल्लेख है। यह बहुत स्पष्ट है कि जहां व्हिप की शक्तियों के क्षेत्राधिकार* का सम्बन्ध है, यह भी मतदान करने और मतदान से विरत रहने से सबधित है कि जब किसी विशेष ढग से मतदान करने हेतु व्हिप जारी किया जाता है और यदि मतदान उसके विरुद्ध किया जाता है अथवा मतदान से विरत रहा जाता है तो यह उसका उल्लघन है। यदि कोई *विधान मडल दल ऐसे मामले में क्षमा कर देता है तो* अध्यक्ष उसे अनर्ह नहीं कर सकता। केवल जब वे उसे व्हिप की प्रति भेजते हैं और उसे यह बताया जाता है कि उल्लंघन के कारण इसे क्षमा नहीं किया गया है और उस पर कार्यवाही की गई है तभी अध्यक्ष यह घोषणा कर सकता है कि सदस्य ने *ससद की सदस्यता खो दी है"""जहां तक अनुच्छेद 105 के अन्तर्गत प्रदत्त भाषण की* स्वतत्रता पर प्रतिबध का सबंध है, इसके लिए केवल नियम 352 है। उसके परि-

णामस्वरूप हम यह देखते हैं कि इस सभा में भाषण की स्वतंत्रता जो हमें प्राप्त है वह संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अधीन नागरिकों को प्राप्त भाषण की स्वतंत्रता की तुलना में निर्बाध है"

❀ ❀ ❀ ❀

वह विशेषाधिकार का विशेष मामला है। इसलिए सभा में प्रस्तुत किये बिना अध्यक्ष को शक्ति प्राप्त है कि वह पूरे मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपे भेज दें और भविष्य के लिए एक उदाहरण स्थापित करें।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री एस० जयपाल रेड्डी

इस सभा में, यह स्पष्ट है कि भाषण की स्वतन्त्रता का पूर्ण अधिकार है बशर्ते कि वह अध्यक्ष के निदेशों के अनुरूप हो। इन प्रतिबंधों को अध्यक्ष द्वारा लागू किया जाना होता है। इन्हें सचेतक द्वारा लागू नहीं किया जा सकता' 'परन्तु इस मामले में उन्होंने व्हिप जारी किया और एक मौलिक धमकी द्वारा सदन में व्हिप दिया।

श्री बी० आर० भगत

संसदीय कार्य मंत्री ने दो माननीय सदस्यों, श्री रामधन और श्री राजकुमार राय को, उनके द्वारा अध्यक्ष महोदय के विनिर्णय को चुनौती देकर उस पर विवाद कर और उसकी आलोचना कर विशेषाधिकार का हनन करने अथवा सदन की अवमानना करने से केवल रोका है व्हिप की प्रणाली के बिना, सदन की कार्यवाही का सुव्यवस्थित एवं मर्यादित ढंग से संचालन नहीं किया जा सकता' व्हिप सभा में उपस्थिति एवं अनुशासन हेतु एक व्यवस्था है' श्री रामधन उस समय सदन की अवमानना करने वाले थे तथा उस समय संसदीय कार्य मंत्री का यह कर्त्तव्य था कि वे उन्हें अध्यक्षपीठ की आज्ञा मानने की सलाह दें और उन्होंने ऐसा किया इसलिए यह कोई मुद्दा नहीं है। इसमें विशेषाधिकार हनन का प्रश्न नहीं उठता।

श्री शरद दिघे

संसदीय कार्य मंत्री ने सदस्य को अध्यक्ष द्वारा दिये गये विनिर्णय को स्वीकार करने के लिये कहा है। क्या ऐसा करना किसी भी तरह भाषण की स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगाना है? प्रत्येक सदस्य अध्यक्ष द्वारा दिये गये विनिर्णय को मानने के लिए बाध्य हैं। उन्हें अध्यक्ष महोदय के विनिर्णय पर टीका-टिप्पणी तक करने का कोई अधिकार नहीं है और जब कभी हम अध्यक्ष महोदय के विनिर्णय के विरोध में सदन से बाहर चले जाते हैं तो मेरे विचार में यह भी सदन की अवमानना है पर सामान्यतः हम इस बात को बहुत हल्के रूप में लेते हैं। यहां हमारी पार्टी के एक सदस्य को अध्यक्ष महोदय के निर्णय को चुनौती देने में मना करना बोलने की स्वतन्त्रता पर पाबन्दी लगाना है, यह सब कहना असंगत है। अतः इसमें विशेषाधिकार का कोई हनन नहीं होता है"

   

सदन की कार्यवाही को सुचारू रूप से चलाने और इस उद्देश्य हेतु प्रादेश, सलाह तथा सदन में प्राचार व्यवहार के बारे में सदस्यों को निर्देश आदि देने का कर्त्तव्य मुख्य सचेतक का होता है। जहां तक इसका प्रश्न है इसमें विशेषाधिकार के हनन का कोई प्रश्न ही नहीं है" जब भी सदन में अव्यवस्था होती है तो दोनों ओर से ह्विप को सदन की कार्यवाही को सुचारू रूप से चलाने में अध्यक्ष की सहायता करनी होती है। इस दृष्टि से यदि सदस्यों को कोई निर्देश दिया जाता है तो विशेषाधिकार हनन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता और न ही भाषण की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध का सवाल उठता है तो ह्विप भी नहीं है। ये सदस्यों को मात्र निर्देश और मित्रवत सलाह है कि वह सदन की अवमानना न करें। इसलिए सभा का संचालन सुचारू रूप से करने के लिए" सदन में खुले तौर पर निर्देश या सलाह देने में कोई गलती नहीं है। इसमें विशेषाधिकार का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि यह सारी घटना सदन में सभी के सामने घटित हुई है ।

रक्षा मंत्रालय में रक्षा उत्पादन और पूर्ति विभाग में राज्य मंत्री (श्री शिवराज पाटिल)

यदि संसदीय कार्य मंत्री अपने दल के सदस्यों को सदन की कार्यवाही में बाधा न डालने और उचित व्यवहार करने तथा सदन की कार्यवाही को सुचारू रूप से चलाने में सहायता करने का निर्देश देते हैं तो क्या इसे विशेषाधिकार हनन कहा जा सकता है?

' माननीय सदस्य को नियमों का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी गई थी। उन्हें माननीय अध्यक्ष द्वारा दिए गये विनिर्णय की अवमानना करने की अनुमति नहीं दी गई थी। माननीय अध्यक्ष को दो बार सभा को स्थगित करना पड़ा था। क्या हम इस बात को भूल सकते हैं? क्या हम यह कह सकते हैं कि सदस्य को इस प्रकार का व्यवहार करने का जिसमें सभा कार्य न कर सके और फिर सभा में विशेषाधिकार का दावा करने का अधिकार है" यदि माननीय संसदीय मंत्री ■ उनके किसी भी भिन्न नीति के प्रतिपादन पर, विभिन्न नीतियों को सामने रखने पर, कुछ नए विचार सुझाने अथवा सरकार के विचार की आलोचना करने पर टोका होता तो हमारे लिए यह मानने का अधिकार था कि उन्हें अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए टोका गया'"

अब प्रश्न यह है कि क्या कार्यवाही की जा सकती है'"जहां तक संविधान और साथ ही नियमों का संबंध है, मैं नहीं समझता कि इसमें कोई संदेह है" किंतु यदि माननीय सदस्य समझते हैं कि यह बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा है, तो ठीक है इस पर सम्पूर्ण सभा द्वारा निर्णय किया जाए यदि हम इसे विशेषाधिकार समिति को सौंपते हैं तो हम इसे ऐसी समिति को सौंपते हैं जो संसद का अंग है और इस प्रकार हम मामले को उच्चतम निकाय को नहीं सौंप रहे हैं। नियम 226 के अनुसार, यह सभा यहां इस प्रश्न पर विचार करे और निर्णय ले'"इस मामले को विशेषाधिकार

समिति के समक्ष क्यों ले जाया जाए ? क्या इस मामले को लम्बा खींचने, इसका प्रचार करने और कठिनाइयाँ पैदा करने के लिए ही ऐसा किया जा रहा है ? फिर तथ्यों का पता लगाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। तथ्य हम सबके सामने हैं।

श्री आरिफ मोहम्मद खां

प्रश्न यह है कि क्या सदन में व्यवस्था बनाये रखने के प्रश्न को सम्बन्धित दलों के सचेतकों पर छोड़ा जा सकता है ? जी नहीं। यह पूर्णतः अध्यक्ष की शक्ति के अंतर्गत निहित है, यह अध्यक्ष महोदय का विशेषाधिकार है। यह शक्ति किसी दल के सचेतक अथवा मुख्य सचेतक को नहीं प्रदान की जा सकती।

हमें इस सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार सम्बन्धी मामलों को दलगत दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए। विशेषाधिकार हनन का यह मामला किसी एक सदस्य का नहीं है। यह पूरे सदन का मामला है।

श्री सोमनाथ रथ

संविधान के अनुच्छेद 105 में परिभाषित अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को सभा के नियमों और प्रक्रियाओं द्वारा प्रतिबन्धित किया गया है। लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम अनुच्छेद 105 के उपबन्धों के अन्तर्गत प्राप्त शक्तियों के अनुसार बनाये गए हैं।

न केवल विनिर्णय का बल्कि अध्यक्ष महोदय की टिप्पणियों और वक्तव्यों की आलोचना सदन के अन्दर या बाहर नहीं की जा सकती है। यह अध्यक्ष और सदन की अवमानना है। संसदीय प्रणाली की सरकार में एक दल का संसद् के अन्दर अपना आन्तरिक संगठन होता है और यह कार्य मुख्य सचेतक द्वारा किया जाता है सम्पूर्ण देश के सचेतकों के सम्मेलन में माननीय सदस्यों के सदन के अन्दर विशेषाधिकार और व्यवहार पर विस्तार से चर्चा की गई है। सम्मेलन का यह मत है कि दोषी सदस्य को सत्तारूढ़ दल तथा विपक्षी दलों के सचेतकों द्वारा अनुशासित किया जाना चाहिए।

श्री सैफुद्दीन चौधरी

"इस सभा के सदस्यों को इस सभा में भाषण देने का निर्बाध अधिकार है और कोई ह्विप उन्हें नहीं रोक सकता.....इस मामले में मैं इसे ह्विप नहीं मानता। इस सभा में हम केवल उसी को ह्विप मान सकते हैं जो मतदान करने अथवा मतदान से विरत रहने अथवा विरोध में मतदान करने से सबंधित हो। इसलिए यह ह्विप नहीं है। यह सत्तारूढ़ दल के सदस्यों को सोचना है कि क्या ह्विप के नाम पर इस प्रकार के हास्यास्पद निर्देश जारी किए जाने चाहिए थे अथवा नहीं।" "इस मामले विशेष में सदस्य की भाषण देने की स्वतन्त्रता के अधिकार का गम्भीर उल्लंघन हुआ है जोकि सभा का सदस्य होने के नाते हमें प्राप्त है, वह केवल प्रक्रिया नियमों के अन्तर्गत ही आता है और उसे एक दल-विशेष के

मुख्य सचेतक ने कुचलने का प्रयास किया है। इसलिए यह पूरी सभा के लिए चिंता का विषय है'''इसे तत्काल विशेषाधिकार समिति को भेज दिया जाना चाहिए और इसे किसी व्हिप विशेष के मनमाने निदेशों के लिए नहीं छोड़ा जाना चाहिए।"

(श्री पी० शिवशंकर) योजना मन्त्री, कार्यक्रम क्रियान्वयन मन्त्री और विधि तथा न्याय मन्त्री

इस मामले से संबंधित प्रश्न यह है कि विशेषाधिकार का हनन वास्तव में क्या है? इसलिए हमें पता लगाना है कि क्या सदस्य का अध्यक्ष महोदय के विनिर्णय पर टिप्पणी करने की अनुमति दी जानी चाहिए थी। यदि हां, तो क्या कोई टिप्पणी आदि की गई थी इस मामले का दूसरा भाग यह है कि क्या इसे माननीय सदस्य की वाक् स्वतन्त्रता को दबाना माना जा सकता है, मेरा निवेदन यह है कि सदन में व्यवस्था बनाये रखने के लिये यहां पर बैठे मुख्य सचेतक अपने सदस्यों को प्रायः कहते हैं कि बैठ जाइये और यदि हम उस व्हिप का सर्वांग अर्थ लें तो जब भी वे ऐसी कार्यवाही करते हैं विशेषाधिकार हनन के दोषी होंगे वास्तव में किसी ऐसी कोई प्रणाली अथवा प्रोफार्मा की व्यवस्था नहीं है कि व्हिप कैसे जारी किया जा सकता है, इसके अभाव में व्हिप मौखिक भी हो सकता है अथवा लिखित भी। क्या यह सलाह से हट कर है, यह तथाकथित व्हिप सलाह के अलावा और कुछ नहीं था। मैं यह नहीं समझता कि इसे माननीय सदस्यों के भाषण के अधिकार में हस्तक्षेप कैसे कहा जा सकता है जिस से विशेषाधिकार प्रस्ताव की जरूरत पड़े। मेरा निवेदन है कि प्रथम दृष्टि में यह कोई मामला नहीं है।

श्री बिनय गोस्वामी

"यह साधारण मामला नहीं है जैसा मेरे मित्र ने बताया है। केवल इस तथ्य से कि अध्यक्षपीठ ने सभा की अनुमति के लिए अपनी सहमति दी है, यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथमदृष्टया यह मामला बनता है जिस पर न्याय निर्णय की आवश्यकता है। अब इस पर निर्णय कौन देगा? क्या विशेषाधिकार के इस मामले पर यह सभा निर्णय लेगी अथवा यह मामला विशेषाधिकार समिति में जायगा मेरे विचार से अनुच्छेद 105, अनुच्छेद 19 के अध्यधीन नहीं है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि अनुच्छेद105, अनुच्छेद 19 के अध्यधीन है। क्या हम इस महत्त्वपूर्ण सवैधानिक मामले को मतों के आधार पर तय करेंगे? यह सभा इसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करेगी और इस प्रकार इस में अन्तर्निहित मुद्दे स्पष्ट नहीं हो पायेंगे। इसलिए यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाए ताकि वह अनुच्छेद 105 में क्षेत्राधिकार तथा उसमें उठाए गए विभिन्न मुद्दों के बारे में तर्क सम्मत निर्णय दे सके।

बात केवल अनुच्छेद 105 के क्षेत्राधिकार की नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या व्हिप सदन में किसी सदस्य को डरा-धमका सकते हैं? दूसरा प्रश्न यह है कि

क्या यह दल का आन्तरिक मामला है । क्या दल के आन्तरिक दस्तावेज को इस सदन के परिसर में परिचालित किया जा सकता है, जबकि वाद-विवाद चल रहा हो ? यदि सभा मतों द्वारा, निर्णय करती है तो भावी मार्गदर्शन के लिए इन सभी मुद्दों तक तर्क सम्मत निर्णय नहीं हो सकेगा । इसीलिए मैं चाहता हूं कि यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाए ।

श्री राजकुमार राय

इसमें कुल मामला इतना है कि क्या संसदीय कार्य मन्त्री, मुख्य सचेतक के रूप में सदन के अन्दर किसी सदस्य को व्हिप जारी करके यह कह सकते हैं कि वह आगे न बोलें जबकि वह बोल रहे हों । ऐसा करना किसी सदस्य की वाक् स्वतन्त्रता का हनन करना है । सभी ने यह स्वीकार किया है कि जो जारी किया गया था वह व्हिप था । यह भी सच है कि व्हिप जारी करना एक दल का आन्तरिक मामला है । अब निर्णय इस बात का होना है कि क्या किसी दल का मुख्य सचेतक व्हिप जारी करने के लिए इस सदन के परिसर का उपयोग कर सकता है ।

वास्तव में हम अध्यक्षपीठ के विनिर्णय का उल्लंघन नहीं कर रहे थे जैसा कि आरोप लगाया गया है । यदि यह मान भी लिया जाये कि हम विनिर्णय का उल्लंघन कर रहे थे तो उस हालत में भी केवल अध्यक्ष ही हमारे विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है । हम यह जानना चाहते है कि क्या माननीय अध्यक्ष महोदय इस विशेषाधिकार को संसदीय कार्य मन्त्रालय को सौंपना चाहते है । यह एक ऐसा मामला है जहां पर अध्यक्ष सभी बातों का साक्षी है । इसलिए मेरे विचार से विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए यह एक उपयुक्त मामला है । दूसरे एक ऐसे मामले पर जिसमें कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे निहित हों, सभा में मतदान द्वारा निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए । यदि ऐसा किया गया तो विशेषाधिकार समिति का कोई औचित्य नहीं रह जायेगा । इसलिए मैं अनुरोध करता हूं कि इस मामले को तुरन्त विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाए ।

श्री भोला नाथ सेन

संविधान में दसवीं अनुसूची के सम्मिलित किए जाने से उसमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं । दसवीं अनुसूची के जोड़े जाने से दलीय प्रणाली को मान्यता प्रदान की गई है । एक निर्दलीय सदस्य भी, यदि किसी अन्य दल में शामिल होता है, तो वह अपनी सदस्यता खो सकता है ।....आज दल पद्धति को मान्यता दी गई है तथा अनुच्छेद 105 को, संविधान के सभी उपबन्धों के अध्यधीन अनुच्छेद 19 समेत जो मौलिक अधिकारों के बारे में है, तथा अनुसूची दस के साथ पढ़ा जाना चाहिए ।

मुख्य सचेतक का यह कार्य है कि वह हमारी उपस्थिति सुनिश्चित करे और अनुशासन बनाए रखे । यदि दल ने किसी बात पर कोई रुख अपनाया है तो दल

को संसद् में भी वह दल अपनाना होता है। इस को सुनिश्चित करने के लिए यदि मुख्य सचेतक अपने ही दल के सदस्यों से कुछ कहता है तो इसमें मेरे विचार से संसद् के कार्य-कलापों के सम्बन्ध में विशेषाधिकार का कोई प्रश्न नहीं उठता है।

श्री इन्द्रजीत गुप्त

इस बात की जांच करनी होगी कि क्या दसवीं अनुसूची से कोई नई धारणा सामने आई है जिसका अर्थ है कि किसी विशेष राजनीतिक दल से सम्बद्ध होने से संसद् सदस्य को अब भाषण की वह स्वतन्त्रता नहीं रही, जिसकी उसे संविधान और नियमों के अन्तर्गत गारन्टी दी गई है यदि श्री रामधन द्वारा दिया गया वक्तव्य किसी भी प्रकार से अवमाननापूर्ण, दुष्प्रयुक्त अथवा धमकी देने वाला हो तो यह बात समझ में आ सकती है परन्तु ऐसा आरोप नहीं लगाया गया है.... श्री भगत ने इस बार में व्हिप जारी किया है कि वह अभी भी कांग्रेस दल में हैं और उन्हें निदेश दिए कि वह और आगे न बोलें और अध्यक्ष के विनिर्णय को स्वीकार करें। यह व्हिप है इसका पालन करना पड़ेगा। यह एक अभूतपूर्व घटना है यदि माननीय अध्यक्ष महोदय अपना विनिर्णय देना चाहे तो इस बारे में वह स्वयं फैसला कर सकते हैं। इसका निर्णय उनके विनिर्णय से अथवा विशेषाधिकार समिति को सौंप कर होगा। सहसा सदन में मतदान कराकर इसका निर्णय नहीं किया जा सकता है।

सत्तारूढ़ दल कांग्रेस (आई) के मुख्य सचेतक और संसदीय कार्य मन्त्री श्री एच० के० एल० भगत ने सदस्यों की टिप्पणियों का उत्तर देते हुए निम्नलिखित कहा :

(एक) श्री रामधन और श्री राजकुमार राय दोनों ही निरन्तर अध्यक्षपीठ के आदेशों का उल्लंघन और कार्यवाही में बाधा डाल रहे थे और इस प्रकार वे सभा की अवमानना कर रहे थे। अध्यक्षपीठ के विनिर्णय को आगे चुनौती देने से उन्हें रोकने और सदन की मर्यादा बनाए रखने के लिए व्हिप जारी किया गया था।

(दो) व्हिप का दायित्व न केवल सदस्यों की उपस्थिति और उनको दल के रुख को समर्थन देने तथा मत देने के लिए कहना है बल्कि सम्बन्धित दलों के सदस्य द्वारा सभा की गरिमा और मर्यादा बनाये रखने में अध्यक्ष की सहायता करना है। व्हिप सदन की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

(तीन) सदन में मुख्य सचेतक/व्हिप को अपने दल के सदस्यों को व्हिप जारी करने से कोई नहीं रोक सकता। यह प्रथा है कि सदन में जब मत विभाजन होता है अथवा कुछ मुद्दे अप्रत्याशित रूप से उठाये जाते हैं तो मुख्य सचेतक को अपने दल के सदस्यों को दल की नीति के बारे में स्पष्ट रूप से यह संकेत देना होता है कि वे क्या नीति अपनायें।

(चार) यह कहना सही नहीं है कि व्हिप केवल दल के सभी सदस्यों को निदेश जारी कर सकते है किसी सदस्य विशेष को नहीं। अध्यक्ष के विनिर्णय को बार-बार चुनौती देकर तथा सदन की कार्यवाही मे बाधा डालकर जो सदस्य विशेषाधिकार का हनन करते हैं। सदन की मर्यादा और अनुशासन को भंग करते हैं उनको भी सचेतक अनुदेश जारी कर सकते हैं।

ससदीय कार्य मन्त्री ने अपनी बात को समाप्त करते हुए इस बात को दोहराया कि उन्होंने सविधान के अनुच्छेद 105 मे यथा लिखित सदस्यों की वाक्स्वतत्रता मे पूरा विश्वास है और ससद सदस्य के नाते उनके दायित्व का निर्वाह करने मे उन्हे डराने अथवा उनके कार्य मे बाधा डालने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उन्होंने कहा

"मैं पूर्ण विनम्रता के साथ इस बात को दोहराता हू कि मैं सविधान के अनुच्छेद 105 मे यथालिखित सदस्यों की वाकस्वतत्रता मे विश्वास रखता हूं और वर्तमान मामले मे उनको ससद् सदस्यों के नाते उनके दायित्व का निर्वहन करने से रोकने या बाधा पहुचाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। मेरा उनसे कहने का आशय इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था कि वे सदन मे मर्यादा और अनुशासन बनाये रखने के हित मे अध्यक्षपीठ की अवहेलना करके और आगे न बोलें। माननीय सदस्यों के प्रति मेरी कोई दुर्भावना नहीं है। मेरा आशय केवल सदन के अनुशासन, मर्यादा और गरिमा के उच्च स्तर को बनाये रखना मात्र था"—

वाद-विवाद के अन्त मे अध्यक्ष ने सदन का ध्यान नियम 226 की ओर दिलाया जिसम यह व्यवस्था है कि यदि नियम 225 के अन्तर्गत अनुमति दी जाती है तो सदन प्रश्न पर विचार कर सकता है और विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने वाले सदस्य या किसी अन्य सदस्य द्वारा प्रस्ताव रखे जाने पर सदन उस पर विचार कर सकता है और निर्णय ले सकता अथवा उसे विशेषाधिकार समिति को भेज सकता है। अध्यक्ष ने कहा :—

"इस प्रकार सभा को या तो (क) इस मामले मे निर्णय लेना है अथवा (ख) मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपना है। यदि कोई सदस्य प्रस्ताव रखता है तो (क) अथवा (ख) पर विचार किया जा सकता है।"

परन्तु किसी भी सदस्य ने इस मामले पर सदन द्वारा फैसला करने अथवा जाच तथा रिपोर्ट के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपने के बारे मे कोई प्रस्ताव नहीं रखा। इन परिस्थितियों मे अध्यक्ष के पास उस दिन की कार्य-सूची की अगली मद पर विचार करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

संक्षेप मे, कुछ मुद्दे जो उभरकर सामने आये हैं और जिन पर विचार किए जाने की आवश्यकता है; वे सक्षेप मे इस प्रकार हैं -

(एक) व्हिप का पद ससदीय दल के ढाचे की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। सदन के भीतर वाद-विवाद मे अपने सदस्यों की प्रभावी भागेदारी

और मत विभाजन के महत्त्वपूर्ण अवसरों पर उनकी उपस्थिति सुनिश्चित कर दल व्यवस्था के कुशल कार्यकरण का दायित्व इसे सौंपा गया है।

(दो) यू० के० में, दल के निदेशों को व्हिप का नाम दिया जाता है जो सदस्यों को सभा में उपस्थित रहने के लिए सम्मन की तरह के होते हैं परन्तु वास्तव में वहां पर व्हिप सदस्यों से कहते हैं कि "वह उनके दल के साथ मतदान करें अथवा उन्हें विद्रोही माना जायेगा, शायद दण्ड भी दिया जाए।" यह केवल स्वरूप का अन्तर है। जहां तक भारत में इस स्थिति का सम्बन्ध है, बावनवां संविधान (संशोधन) अधिनियम से सभी संदेह दूर हो गए हैं। जिसमें यह व्यवस्था है कि यदि कोई सदस्य दल द्वारा जारी किए गए किसी नदेश के विपरीत मतदान करता है अथवा मतदान में भाग नहीं लेता है तो वह अनर्हता का पात्र है। अतः व्हिपों के लिए दल द्वारा जारी किए गए निदेशों के अनुसार सदस्यों को मतदान में भाग लेने के लिए कहना पूर्णतः सवैधानिक है। यदि व्हिप की शब्दावली इस प्रकार की हो तो विशेषाधिकार का हनन नहीं होता है।

(तीन) यह एक सुस्थापित मान्यता है कि किसी मामले पर जिसकी शिकायत की गई है, सभा को यह निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार है कि क्या वह विशेषाधिकार हनन का मामला है अथवा सभा की अवमानना का, क्योंकि सभा ही अपने विशेषाधिकारों का एकमात्र प्रहरी है। अध्यक्ष सभा में विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में कोई मामला उठाने की अनुमति देते समय केवल इस बात पर विचार करता है कि क्या वह मामला आगे जांच करने के उपयुक्त है अथवा इसे सभा के समक्ष रखा जाना चाहिए। वर्तमान मामले का बहुत असामान्य स्वरूप होने के कारण तथा चूंकि यह मामला स्वयं सभा के समक्ष हुआ है, अध्यक्ष के पास इससे अच्छा और कोई विकल्प नहीं था कि वह इस सारे मामले को सभा के समक्ष रखें और वह जैसा चाहे वैसा निर्णय ले।

(चार) जिस स्वरूप में व्हिप जारी किए जाते हैं और जिन अवसरों पर विभिन्न प्रकार के व्हिप जारी किए जाते हैं, उनसे पता चलता है कि इस मामले में जारी किया गया व्हिप असामान्य था। वास्तव में सत्तारूढ़ दल और विपक्ष दोनों ने इस बारे में संदेह व्यक्त किया है कि क्या मन्त्री द्वारा दो सदस्यों को जारी किए गए लिखित निदेशों को व्हिप माना जा सकता है? कांग्रेस (आई) दल के श्री शरद दिघे ने कहा है कि उनके विचार से यह व्हिप न होकर केवल निदेश था,

सभा के एक सदस्य को आगे कोई अवमानना न करने के लिए दिया गया एक मित्र का परामर्श । योजना मन्त्री (श्री पी० शिवशंकर) की राय थी कि "तथाकथित व्हिप परामर्श के अतिरिक्त और कुछ नही था ।" संसदीय कार्य मन्त्री ने भी इस बात को पूर्ण स्पष्ट किया कि व्हिप सदस्यो को यह कहने के लिए जारी किया गया था कि वे पीठासीन अधिकारी के विनिर्णय को चुनौती न दें ताकि सभा की मर्यादा कायम रखी जा सके और सदस्यो के वाक् स्वातन्त्र्य के अधिकार को छीनने का कोई प्रश्न ही नही था ।

(पांच) इस मामले मे दल परिवर्तन कानून लागू नही होता क्योकि उस कानून के अन्तर्गत अनर्हता का प्रश्न तभी उठता है यदि मतदान करने अथवा मतदान से विरत रहने के मामले मे निदेशो की अवहेलना की जाये, इस सम्बन्ध मे अध्यक्ष को एक याचिका दी जाए और अध्यक्ष इस प्रकार की अनर्हता के पक्ष मे निर्णय दें ।

विशेषाधिकार के मूल प्रश्न, जिसके बारे में पांच सदस्यो ने नोटिस दिया था, पर सभा मे केवल चर्चा हुई थी । सभा मे कोई प्रस्ताव नही रखा गया था और न कोई घोषणा की गई थी तथा न यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था । तथापि कोई भी व्यक्ति यह अनुमान लगा सकता है कि इसके परिणाम-स्वरूप भविष्य मे इस प्रकार का व्हिप जारी किए जाने की कोई संभावना नही है । जिन कुछ मुद्दो को अनिर्णीत और खुला छोड दिया गया है, वे इस प्रकार हैं :—

(एक) क्या

(क) सदन मे

(ख) दल के केवल कुछ सदस्यों को

(ग) सदन मे अनुशासन बनाए रखने के लिए अध्यक्षपीठ की सहायता करने और अध्यक्षपीठ के विनिर्णय/आदेशों का पालन करने के प्रयोजन से

व्हिप—मौखिक अथवा लिखित—जारी किया जा सकता है ?

(दो) क्या इस प्रकार जारी किए गये व्हिप को

(क) सदन मे सदस्यो के वाक् स्वातन्त्र्य के अधिकार का हनन करने वाला, उन्हें डराने-धमकाने वाला और सदस्य के नाते उनके दायित्वो के निर्बाध निर्वहन मे बाधा उत्पन्न करने वाला

(ख) सदस्यों के विशेषाधिकार का हनन और सभा की अवमानना करने वाला माना जा सकता है ?

संसदीय विशेषाधिकार के मामलों को यों ही नही उठाना चाहिए और जब उन्हें उठाया जाता है तो उन्हें दलगत मामलो के रूप मे न लेकर संपूर्ण सदन और

उसके सभी सदस्यों की प्रतिष्ठा, मर्यादा और अधिकारों के मामलों के रूप में लिया जाना चाहिए। यह स्पष्ट है कि विशेषाधिकार के इस प्रश्न पर सभा में राय दलगत आधार पर विभाजित थी। सम्भवत इसीलिए विशेषाधिकार के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर बहुमत के आधार पर निर्णय नहीं लिया गया और अध्यक्ष ने स्थिति को निपुणता से निपटाते हुए और सदन ने अपनी बुद्धिमत्ता से प्रश्नों को खुला और अनिर्णित छोड़ दिया।

संदर्भ

1. रावर्ट जे० जैक्सन, रिवेल्स एण्ड व्हिप्स, लन्दन, 1968, पृ० 4-5
2. जैक्सन, उद्धृत कृति, पृष्ठ 40-41
3. लार्ड हेलशम के अनुसार "व्हिप सदस्यों को केवल हाउस में आने के लिये कहता है न कि यह कि वे किस प्रकार मतदान करें," दूसरे शब्दों में, व्हिप मतदान करने के लिए बुलावा नहीं है अपितु हाउस में उपस्थित रहने के लिये बुलावा है तथापि आर्ज विन ने हाउस आफ कामन्स में इस विचार का विरोध किया था जिनका यह विचार था कि तीन बार रेखांकित व्हिप दल के निर्णय के प्रति वफादार रहने की आखिरी अपील" है। (जैक्सन, उद्धृत कृति पृष्ठ 169-70)
4. जैक्सन, उद्धृत कृति, पृष्ठ 305
5. केनथ ब्राउनों एड डेविड प्रिंग, पार्लियामेंट एण्ड कांग्रेस, 1972, पृष्ठ 34
6. जैक्सन, उद्धृत कृति, पृष्ठ 216
7. लोक सभा वाद-विवाद, 1 अगस्त, 1973 कालम 4514-29
8. वही 22 दिसम्बर, 1978 कालम 314-20

□□□

17

संसद् और हास्य विनोद

"पार्लियामेंट" शब्द फ्रांसीसी भाषा के पार्लेमो-पार्ले शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है "बातचीत" अथवा "विचार-विमर्श"। क्रिया के रूप में इसका अर्थ होगा "बातचीत करना" अथवा "विचार-विमर्श करना"। वास्तव में एक ब्रिटिश विचारक ने पार्लियामेंट को "बातचीत शाला" की संज्ञा दी है।

संसदीय लोकतान्त्रिक प्रणाली में सरकार का संचालन चर्चा और वाद-विवाद द्वारा होता है। जबकि अन्ततः निर्णय बहुमत के हाथ में रहता है, अल्पमत को अपनी बात कहने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिए। भारतीय इतिहास में एक ऐसा भी समय था जब भारतीय जनता का बहुमत चाहे कुछ भी कहे, ब्रिटिश शासक अपनी मनमानी ही करते थे। एक कहानी है कि किसी अंग्रेज से पूछा गया कि भारत में संसद् भवन का आकार गोल क्यों है, तब उसने विनोदात्मक टिप्पणी की कि जानबूझ कर इसका नक्शा "शून्य" के आधार का बनाया गया है ताकि यह दर्शाया जा सके कि यहां आप निरन्तर बातचीत कर सकते हैं, परन्तु वस्तुतः परिणाम शून्य ही रहेगा, आप चक्कर लगाते रहेंगे और लगभग तीन चौथाई मील चलने के बाद भी आप वहीं पहुँच जाएंगे जहां से आपने चलना शुरू किया था।

संसद् भारी तनाव और दबाव (Stress & Strain) की स्थिति में कार्य करती है। इसमें अनेक कठिन क्षण आते हैं। लोक सभा के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने जो अपने विनोदी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे, एक बार गंभीरतापूर्वक कहा था कि उन्हें अपने रक्तचाप एवं सिरदर्द को सही करने तथा सभा में, विशेषतौर पर तथाकथित "शून्यकाल" के दौरान, शोरगुल का सामना करने के लिए "एस्प्रिन" की गोलियां लेनी पड़ती हैं।

एक बार किसी परिकल्पित संवैधानिक प्रश्न पर व्यवस्था (Ruling) देने के बारे में, इन्हीं अध्यक्ष महोदय ने सभा को बताया कि संविधान में ऐसी स्थिति की परिकल्पना नहीं की गई थी और इसलिए उनके पास कोई उत्तर नहीं है। उन्होंने कहा कि भारत का संविधान तो भद्र पुरुषों ने भद्र पुरुषों के लिए तैयार किया था, उस समय उन्हें क्या पता था कि कभी ऐसे भी प्रश्न उठाये जाएंगे।

सभी अध्यक्षों को एस्पिरिन की गोलियां लेने की आवश्यकता का बुरा अनुभव नहीं हुआ, क्योंकि सभा की रचना तथा स्वरूप बदलता रहता है और अध्यक्षों के दृष्टिकोण और स्वभाव भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

हमारे एक अध्यक्ष महोदय, श्री अनन्तशयनम् अय्यंगर को सदन में क्रियाशील कार्यरत देखते हुए, यात्रा पर आए हुए एक विदेशी गणमान्य व्यक्ति ने टिप्पणी की, "आपका अध्यक्ष वास्तव में बोलता है।" कुछ समय पश्चात् तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने एक पार्टी में इन्हीं अध्यक्ष महोदय को कहा, "अध्यक्ष महोदय, आपका नाम अनन्तशयनम् की बजाय अनन्तवचनम होना चाहिए, अर्थात् निरन्तर बोलने वाला व्यक्ति।" अध्यक्ष डा० बलराम जाखड़—तथाकथित शून्यकाल के दौरान अपने काम में विशेष आनन्द लेते थे। वह प्राय: सदस्यों को विनोद में बताते कि अन्तर्सत्रावधि (Inter session) में वह उदास हो जाते हैं, जीवन नीरस हो जाता है। वह प्राय हाजिरजवाबी एवं विनोदप्रियता (Wit and humour) का प्रभावी इस्तेमाल करते थे। इससे सदन की कार्यवाही में जान पड़ जाती थी। इसके अतिरिक्त, इसमें तर्क की कटुता और विवाद का थोथापन भी हंसी के ठहाकों में लुप्त हो जाता।

एक बार सदन में विपक्ष किसी विवादास्पद विषय पर बहस करना चाहता था। पीठासीन अधिकारी कुछ उत्तेजित सदस्यों को शान्त करने का प्रयास करते हुए एक महिला सदस्य से यह कहना चाह रहे थे कि अध्यक्ष तो सदन के हाथों में है। उनके मुख से निकला, "मैं तो आपकी बांहों में हूँ।" सारा सदन ठहाकों से गूँज उठा। शायद अध्यक्ष और महिला दोनों ही शर्मा गये। इसी प्रकार, एक बार व्यवस्था के एक प्रश्न पर अपना विनिर्णय देते हुए अध्यक्ष ने कहा: मेरा विनिर्णय यह है कि प्रश्न समाप्त होता है और व्यवस्था कायम रहती है।"

एक बार जब अध्यक्ष महोदय का ध्यान सभा में दोपहर बाद झपकी का आनन्द ले रहे एक सदस्य की ओर दिलाया गया तो अध्यक्ष ने विनिर्णय दिया कि सोने की अनुमति है, केवल खर्राटे लेना असंसदीय है।

जनता के सर्वोच्च प्रतिनिधि होने के नाते, संसद् सदस्य देश के विशेष सम्माननीय व्यक्ति होते हैं। यद्यपि संसद् के सदनों की कार्यवाही का संचालन प्रतिष्ठा एवं मर्यादा से तथा नियमों के अनुसार किया जाता है, तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि वे सदैव गम्भीर एवं नीरस बने रहें। हाजिरजवाबी, वाक्पटुता और हास्य-विनोद सदस्यों के वाद-विवाद रूपी तरकश के तीर हैं, विपक्षी को चुप कराने के लिए इनका प्रयोग बड़े प्रभावशाली ढंग से किया जाता है।

वयोवृद्ध सांसद आचार्य कृपलानी कभी अपना और कभी अपनी पत्नी श्रीमती सुचेता कृपलानी का हवाला देकर सभा में खूब ठहाके लगवाते थे। श्रीमती कृपलानी कांग्रेस पार्टी की सदस्या थीं, जबकि श्री कृपलानी विपक्ष के नेता। एक

बार जब श्री कृपलानी कांग्रेस सरकार की आलोचना करने लगे तो एक सदस्य ने इस तथ्य की ओर उनका ध्यान दिलाया कि वे उस पार्टी पर प्रहार कर रहे हैं जिस पार्टी ने उनकी पत्नी को मार्गदर्शन किया है। हाजिरजवाब आचार्य ने, जो स्वयं भी अपने जीवन के अधिकांश भाग में कांग्रेस के सदस्य रहे थे और जिन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष सहित अनेक महत्वपूर्ण पदों पर काम किया था, तत्काल परिहासपूर्ण उत्तर दिया, 'अब तक तो मैं कांग्रेस के लोगों को बेवकूफ ही मानता था। मुझे पता नहीं था कि वे ऐसे बदमाश भी हैं जो दूसरों की पत्नियों को भगा ले जाते हैं।' अनुभवी नेता के दिलचस्प हास्य-विनोद में सत्तापक्ष के लोगों सहित सम्पूर्ण सदन कहकहों से गूंज उठा।

एक ऐसा मंच होने के कारण जहां अत्यन्त विवादास्पद मुद्दों पर चर्चा होती है, यह स्वाभाविक है कि सत्ता और विपक्षी दलों के सदस्यों के बीच संसद में कभी-कभी तीखा वाद-विवाद हो और वो एक दूसरे के लिए चुभने वाले और उत्तेजनात्मक शब्दों का प्रयोग करें। इस प्रकार उत्पन्न राजनीतिक गरमा-गरमी के चरम क्षणों में एक हल्का सा मजाक गरमागरमी को समाप्त करने और सदन का वातावरण सामान्य बनाने के लिए पर्याप्त होता है। उदाहरण के लिए, भारत पर चीन के हमले के समय पण्डित नेहरू ने सदन को यह कहकर आश्वस्त किया, 'हम अपनी सीमा की एक इंच जमीन भी चीन को नहीं देंगे।' यह सुनकर अत्यधिक मुखर सदस्य श्री हरि विष्णु कामत अपने को नहीं रोक सके और उन्होंने खड़े होकर प्रधानमन्त्री से पूछा 'आपके नक्शे में एक इंच कितने मील के बराबर है।' इस हाजिरजवाबी से प्रधानमन्त्री के साथ ही सदन के सभी सदस्य हँस पड़े। पण्डित नेहरू विनोदप्रिय तो थे ही, वह विनोद का आनन्द भी खूब लेते थे। एक बार जब उन्होंने अक्साई चिन के बारे में यह कहा कि यह ऐसा क्षेत्र है जहां पर घास का एक तिनका भी नहीं उगता, तो वयोवृद्ध सदस्य महावीर त्यागी तत्काल खड़े हो गये और उन्होंने अपने गंजे सिर की तरफ इशारा करते हुए कहा 'मेरे सिर पर एक भी बाल नहीं है इसलिए क्या मैं अपना सिर शत्रु को सौंप दूं।' यह सुनकर सभी हँस पड़े और पण्डित नेहरू सबसे पहले हँसने वालों में थे।

एक बार जब बाबू जगजीवन राम सदस्यों की पत्नी-पति के लिए निःशुल्क रेल यात्रा का विधेयक पेश कर रहे थे, तो एक अविवाहित संसद सदस्य ने पूछा कि क्या वह किसी साथी को अपने साथ ले जा सकते हैं। बाबू जी ने कहा 'यह विधेयक पत्नी/पति के लिए है, माशूक के लिए नहीं।'

राज्यसभा में जब एक अविवाहित सदस्य ने अपना और सदन की एक अविवाहित महिला सदस्य का उल्लेख करते हुए कहा कि इस विधेयक से उन्हें कोई लाभ नहीं हो रहा है, तो एक अन्य सदस्य ने सुझाव दिया कि दोनों अविवाहित सदस्य एक दूसरे की समस्या सुलझा सकते हैं।

एक बार एक भारी-भरकम सदस्य ने श्री पीलू मोदी पर यह आरोप लगाया कि वह अध्यक्ष की ओर पीठ करके खड़े हैं, और इस प्रकार वह अध्यक्ष के आसन का अपमान कर रहे हैं, तो श्री मोदी ने अपने बचाव में कहा, "श्रीमान् मेरे तो न आगा है न पीछा, मैं तो गोल मटोल हूं।'

एक बार तत्कालीन विदेश मन्त्री एक मुद्दे की व्याख्या कर रहे थे तो एक सदस्य उठे और उन्होंने कहा, "आप श्री वाजपेयी का 'ब्रेनवाश' क्यों नहीं कर देते,' तब तक एक अन्य सदस्य से श्री मोदी ने पूछा कि "क्या मन्त्री महोदय को मालूम है कि ब्रेन होता कहां है ?" मन्त्री ने उत्तर दिया—"मुझे मालूम है कि उनका दिमाग टखनों में स्थित है।" लेकिन श्री मोदी आसानी से निरुत्तर होने वाले नहीं थे, उन्होंने पलट कर कहा—मैंने आपसे कहा था कि उन्हें यह पता ही नहीं है' कि वस्तुतः दिमाग कहां होता है, इसीलिए उनकी नीतियां असफल हो जाती हैं। हास्य-विनोद अन्तर्राष्ट्रीय मामलों जैसा सख्त नहीं है।

हिन्दू विवाह (संशोधन) विधेयक पर चर्चा करते हुए एक सदस्य ने कहा कि विधेयक प्रस्तुत करते हुए मन्त्री महोदय असमंजस में पड़े हैं। मन्त्री महोदय ने उत्तर दिया—"विवाह भी तो असमंजस की परिणति है।" सदस्य ने छूटते ही कहा—"असमंजस (कन्फ्यूजन) की नहीं, बल्कि संमजस (फ्यूजन) की परिणति है। दोनों में बहुत फर्क है।"

किसी अन्य समय की अपेक्षा प्रश्नकाल के दौरान हमें अधिक मुंहतोड़ उत्तर सुनने को मिलते हैं। एक बार ऐसे विशिष्ट व्यक्ति के बारे में प्रश्न पूछा गया जो भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में अपने विदेश दौरे के दौरान अपनी पत्नी को निजी सचिव के रूप में साथ ले गया था। मुख्य प्रश्न का उत्तर दिये जाने के बाद एक अनुपूरक प्रश्न पूछा गया कि दौरे के दौरान सचिव की उपस्थिति किस श्रेणी में आती है, आवश्यकता की श्रेणी में अथवा सुविधा की श्रेणी में। तुरन्त उत्तर आया—"पत्नी के रूप में आवश्यकता और सचिव के रूप में सुविधा।" इसे सुनकर पूरा सदन ठहाकों से गूंज उठा।

एक अनुपूरक प्रश्न पूछते हुए एक सदस्य ने दूरदर्शन केन्द्र की इस बात के लिए आलोचना की कि वह वन्य जीव जैसे विषयों के लिए भी आयातित कार्यक्रमों पर अधिक निर्भर रहता है जबकि 'प्रदेश में वन्य प्राणियों की कहीं भी कोई कमी नहीं है।' एक दूसरे सदस्य ने इस पर तुरन्त कहा—'संसद में भी वन्य प्राणियों की कोई कमी नहीं है।' हंसी के बीच अध्यक्ष ने चुटकी ली कि इसका कोई प्रतिवाद नहीं कर रहा है।

एक अन्य अवसर पर एक सदस्य ने मन्त्री से पूछा—'सरकार की क्या प्रतिक्रिया है।' मन्त्री ने उत्तर दिया—'हम क्रिया (काम) करने में विश्वास रखते हैं, प्रतिक्रिया व्यक्त करने में नहीं।'

पुन: जब एक सदस्य 'हेरोइन' (मादक द्रव्य) के बारे में बोल रहे थे, एक दूसरे सदस्य ने पूछा—'हेरोइन या हिरोइन' और टिप्पणी की कि उन्हे हिरोइनो की बहुत चाहत है। तथापि, अध्यक्ष महोदय ने कहा कि वह उस अवस्था को पार कर चुके हैं।

तिहाड जेल मे हेरोइन से हुई मौतो के बारे मे एक तारांकित प्रश्न के अनुपूरको के उत्तर देते हुए गृहमन्त्री श्री एस बी. चह्वाण ने स्पष्ट किया—

"... ....लेकिन प्रिलिमिनरी इन्फार्मेशन है कि उन्होंने वहां छिपकली की पूंछ खाई थी।"

इस पर एक सदस्य श्रीमती गीता मुखर्जी ने कहा 'चूंकि सभी छिपकलियो की पूंछ मे हेरोइन नही होती, मैं जानना चाहती हूँ कि उस विशेष छिपकली की पूंछ मे हेरोइन कैसे आ गई?' जब मन्त्री महोदय ने इस पर अपनी अनभिज्ञता प्रकट की, तो प्रो मधु दण्डवते ने टिप्पणी की, 'छिपकली खुद हिरोईन है।'

एक अन्य मामले मे जब श्रम मंत्री ने अपने उत्तर में बताया कि अमुक यूनिट प्रगति के उन्नत चरण में है, तो सदस्य ने प्रगति का वास्तविक चरण बताये जाने पर जोर दिया। इस पर अध्यक्ष महोदय ने पूछा "आप उन्नत चरण नही समझते?" सदस्य ने उत्तर दिया, "नही श्रीमान्, क्या यह प्रसव पीडा की स्थिति है? उन्हे सर्वत्र लेबर प्रौब्लम्स पेश आ रही हैं।"

जब एक सदस्य ने यह कहते हुए एक अन्य सदस्य की प्रशसा करनी चाही कि वह एक अनुभवी (सीजण्ड) सासद् हैं, तो इस पर तुरन्त स्पष्टीकरण मागा गया

"सीजण्ड या सीजनल सदस्य (अनुभवी अथवा मौसमी)।"

एक बार एक सदस्य ने यह शिकायत की कि वे यही प्रश्न बार-बार पूछ चुके हैं तथा हर बार उन्हे वही उत्तर मिला है। अध्यक्ष महोदय ने टिप्पणी की "कितनी स्थिरता है।"

एक बार एक सदस्य, श्री पीलू मोदी ने योजना मत्री से अनुरोध किया कि वे उनके अनुपूरक प्रश्न का उत्तर लम्बे भाषण मे नही, केवल तीन शब्दो मे दें। योजना मन्त्री श्री डी. पी. धर ने जब केवल तीन शब्दो मे उत्तर दिया—"मुझे नोटिस चाहिए" तो सभा मे सभी सदस्य खूब खिलखिला कर हँसे।

जब पश्चिम बगाल मे मिदनापुर मे तेल के ड्रिलिंग कार्य मे व्यक्तियों के रोजगार के सबध मे तारांकित प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न पूछे जा रहे थे, एक सदस्य, श्रीमती फूलरेणु गुहा ने बताया कि मिदनापुर मे तेल की 'ड्रिलिंग' का कार्य चल रहा है। इस पर एक अन्य सदस्य प्रो मधु दण्डवते ने पूछा "क्या ड्रिलिंग जमीन के नीचे की जा रही है।" तब अध्यक्ष महोदय डा० बलराम जाखड ने हँसते हुए पूछा "क्या ड्रिलिंग जमीन के ऊपर भी हो सकती है?"

जब प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता, संसद सदस्य श्री अमिताभ बच्चन ने, जिनका कद छः फुट से अधिक है और जो बैठे होने पर भी नही छिपते, अध्यक्ष महोदय का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया तो अध्यक्ष ने उनसे पूछा कि वे ऐसा क्यो कर रहे हैं, जबकि उनका हाथ अध्यक्ष महोदय के हाथ की तरह काफी लम्बा है, चाहे वह आधा ही उठाया गया हो, सभा में ठहाको के बीच सदस्य ने टिप्पणी की कि वह तो अभी बैठे ही हैं, खड़े नही हुए हैं।

इसी प्रकार जब 13 मार्च, 1986 को "केन्द्र सरकार स्वास्थ्य सेवा औषधालयों के लिए दवाइयों की सप्लाई" संबंधी तारांकित प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न पूछे जा रहे थे तो स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्री श्रीमती मोहसिना किदवई ने बताया "हमने यह तय किया है कि ज्यादातर दवाइयां पैकेज वाली दी जाए, जिन पर टेबलेट की 'एक्सपायरी डेट" वगैरह हो।' तो एक सदस्य, प्रो० मधु दण्डवते ने पूछा

'एक्सपायरी डेट टेबलेट की या पेशेंट की ?'

प्रश्न काल के पश्चात् सभा की कार्य-सूची के अनुसार मद के अन्तर्गत कुछ पत्र सभापटल पर रखे जाते हैं। एक बार लोक सभा के तत्कालीन उपाध्यक्ष ने बताया कि सभा में जो कुछ भी कहा जाता है वह उसकी कार्यवाही वृत्तांत का एक हिस्सा बन जाता है। उन्होंने आगे यह भी टिप्पणी की कि 'यदि मैं यहां अपनी पत्नी का उल्लेख भी करूं तो वह भी संसद् के कार्यवाही वृत्तांत का एक हिस्सा बन जायेगी।' इस पर एक सदस्य ने तुरन्त कहा 'महोदय, अपनी पत्नी का उल्लेख न करें, वरना कोई यह मांग करेगा कि उन्हें सभापटल पर प्रस्तुत किया जाए।' इस पर समूची सभा में हँसी गूंज उठी।

सभा पटल पर रखे जाने वाले पत्रों आदि कार्य के निपटाने के बाद सभा ध्यानाकर्षण प्रस्तावों, ग्रंथ लोक महत्व के विषयों पर चर्चा करती है। इस अवधि के दौरान सभा में प्रायः बड़ी गरमागरम बहस होती है, किन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता। कुछ हल्के-फुलके क्षण भी आते हैं जब हास्य विनोद चलता है।

एक बार एक सदस्य तथा अध्यक्ष महोदय के बीच एक मामले पर झड़प हो गई। सदस्य एक मामले को, जिसकी उन्होंने नोटिस भी दे रखी थी, उठाने का आग्रह कर रहे थे तथा अध्यक्ष महोदय इसकी अनुमति नहीं दे रहे थे। इससे काफी तनावपूर्ण वातावरण पैदा हो गया। एक अन्य सदस्य ने अध्यक्ष महोदय से अनुरोध किया कि वे सदस्य की टिप्पणी के लहजे पर अधिक ध्यान न दें क्योंकि 'सदस्य अपनी पत्नी से भी इसी तरह पेश आते हैं।' तब जाकर कहीं तनाव कम हुआ।

इससे मुझे एक अन्य पत्नी-प्रकरण की याद आती है। लोकसभा के एक बहुत वरिष्ठ सदस्य ने रेल बजट पर बोलते हुए रेलवे द्वारा नियुक्त किये

मानदण्ड क्या है ? मन्त्री महोदय द्वारा यह कहे जाने पर कि यद्यपि व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले आवश्यक तत्त्व सुविदित हैं, तथापि व्यक्तित्व के आकलन सबंधी नियमों का निर्धारण करना कठिन है, एक अन्य सदस्य बीच में बोल पड़े कि 'मेरे विचार से व्यक्तित्व परीक्षा ऐसी है जैसे पहली नजर में प्यार हो जाना।' इस पर उपाध्यक्ष महोदय ने मजाक में कहा, 'जिसके बारे में प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव है, परन्तु उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता।'

कभी-कभी सदन में हास्य विनोद पर बहुत जोर का ठहाका लगता है। कहा जाता है कि किसी विधान मण्डल की प्रेस दीर्घा में बैठा हुआ प्रेस संवाददाता किसी मजाक पर इतने जोर से हंसा कि उसके नकली दांत नीचे सदन में अध्यक्ष पीठ के समीप जाकर गिर पड़े।

आठवीं लोकसभा में एक दिन एक बड़ा विनोदपूर्ण वाद-विवाद हुआ। जब प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने कहा, हमारे दल की सदस्य संख्या आपके सामने है, श्री एच. एम. पटेल ने कहा, 'आगे देखेंगे।' श्री राजीव गांधी ने तब कहा, 'मैं आगे देख रहा हूँ। आप 1990 में देखेंगे . . . तब उस पंक्ति में भी हमारे दल के सदस्य बैठे होंगे।' प्रो० मधु दण्डवते ने ऊपर की ओर इशारा करते हुए कहा, 'इसका कारण यह होगा कि कुछ वर्षों के बाद हम इस पृथ्वी पर नहीं बल्कि उस ऊपरी सदन में चले जायेंगे।' इस पर श्री राजीव गांधी ने तुरन्त उत्तर दिया, 'महोदय, हमें इन्हें उस ऊपरी सदन में भेजने की जल्दी नहीं है। परन्तु हमें खुशी है कि वह यह मानते हैं कि संसद् की वर्तमान अवधि के पश्चात् नई लोकसभा में कांग्रेस पार्टी विपक्षी नेताओं की इन पंक्तियों पर भी कब्जा कर लेगी।" यह दूसरी बात है कि जब नवीं लोक सभा के लिये हुए चुनावों के नतीजे आये और नये सदन का गठन हुआ तो 1990 आने से पहले ही सरकारी और विरोध पक्षों की और पंक्तियों की स्थिति बिल्कुल बदल गई।

पुनः शाम को 5 बजे वर्ष 1986-87 के आम बजट के प्रस्तुतीकरण के लिए सभा की बैठक शुरू होने के समय अध्यक्ष महोदय डा० बलराम जाखड़ ने टिप्पणी की कि 'इस समय सब सदस्य उपस्थित हैं' इसके तुरन्त बाद कवि और संसद सदस्य, श्री बालकवि बैरागी ने कहा—मैं राजा विश्वनाथ प्रतापसिंह को एक शेर पढ़कर सुनाता हूँ—

'यह हक है आपको कि आप चाहे जो करें।
पर कत्ल भी करें तो प्यार से करें।

इस पर अध्यक्ष महोदय ने टिप्पणी की—

'अभी हम और बैरागी जी एक मुशायरे से आ रहे हैं।
आप उनकी बात का ध्यान रखें। आप जो कुछ भी डोज दें, वह शुगर कोटेड होनी चाहिए।'

वित्त मन्त्री का वर्ष 1986-87 का बजट भाषण सबसे लम्बा बजट भाषण बताया गया है। (साय 5 बजे प्रारम्भ होकर साय 7 25 बजे अर्थात् लगभग ढाई घण्टे चला)। एक सदस्य प्रो० मधु दण्डवते ने, जो ऐसा लगता था, कि लम्बा भाषण सुनते-सुनते उकता गए थे, बीच में बोलते हुए कहा—'क्या भाषण की कोई अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं है?' इसके पश्चात् एक अन्य सदस्य श्री सोमनाथ चटर्जी ने पूछा—'कितने पृष्ठ शेष रह गये हैं।' वित्त मन्त्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने उत्तर दिया—'यदि आप सभी प्रस्तावों को स्वीकार कर लें तो मैं इसे इसी समय समाप्त किए देता हूँ।' चुटकी लेते हुए प्रो० मधु दण्डवते ने तुरन्त कहा 'थकान से विचलित हुए सदस्य आपके प्रस्तावों को स्वीकार कर सकेंगे।' इसके पश्चात् प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने परिहासपूर्ण टिप्पणी की कि 'स्पष्टतया, हम जो राहत प्रदान कर रहे हैं, विपक्ष के सदस्य उसे देखकर ऊब गए लगते हैं।'

समूचे विश्व की संसदों के सभी पीठासीन अधिकारी सभा की कार्यवाही के सचालन में सदैव हाजिर-जवाबी और हास्य विनोद का प्रयोग करते हैं। इनकी हाजिर-जवाबी और हास्य-विनोद वास्तव में कार्यवाही को जीवन्त बना देते हैं। राष्ट्रमण्डलीय देशों के अध्यक्षों और पीठासीन अधिकारियों के जनवरी, 1986 में नई दिल्ली में हुए आठवें सम्मेलन में हमें कुछ ऐसी विनोदपूर्ण उक्तियों की झलक मिली थी। गम्भीर और लम्बी चर्चाओं के दौरान सम्मेलन में विनोदपूर्ण क्षण भी आए। सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ प्रतिनिधियों ने अपनी हाजिर-जवाबी और विनोदपूर्ण उक्तियों से प्रतिनिधियों तथा पर्यवेक्षकों का भरपूर मनोरंजन किया। उदाहरण के लिए—

'एक दलीय संसद और वेस्टमिंस्टर प्रणाली' पर चल रही चर्चा के बीच बोलते हुए लोकसभा अध्यक्ष डा० बलराम जाखड़ ने एक चुटकुला सुनाया। उन्होंने कहा—'एक बार एक राजकीय रहस्य चुरा लिया गया। इस पर बहुत शोर-शराबा हुआ और अपराधी को पकड़ने के लिए चारों ओर पुलिस भेजी गई। किसी ने पूछा—राजकीय रहस्य क्या है? उत्तर दिया गया कि यह नहीं बताया जा सकता क्योंकि यह 1990 का चुनाव परिणाम है।'

डा बलराम जाखड़ ने प्रतिनिधियों को एक और मजाकिया किस्सा सुनाया। उन्होंने कहा 'आप कोई विकल्प नहीं बताते। आपको पता है कि एक बार एक सज्जन एक महिला के पास गए और उन्होंने उसके सामने दो विकल्प रखे और कहा कि वह दोनों में से कोई एक विकल्प चुन लें।' महिला ने पूछा—'विकल्प क्या है?' उस व्यक्ति ने कहा—'या तो आप मुझसे विवाह कर लें अथवा मेरी पत्नी बन जायें।'

इसी विषय पर बोलते हुए, जिम्बाबवे की हाउस आफ असेम्बली के अध्यक्ष डा० डी० एन० ई० मुतासा ने यह सुन्दर टिप्पणी की—'वेस्टमिंस्टर प्रणाली एक

विश्वविद्यालय उपाधि के समान है जिसे एक दलीय संसदें सरलता से प्राप्त कर सकती हैं।'

'पीठासीन अधिकारियों की राजनीतिक स्थिति' सम्बन्धी सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए, ब्रिटिश हाउस ग्राफ कामन्स के ग्रध्यक्ष राइट ग्रानरेबल बर्नार्ड वेदरिल ने अपना विश्वास व्यक्त किया कि 'ग्रध्यक्ष को पहले ग्रध्यक्ष होना चाहिए और बाद में राजनीतिज्ञ न कि इसके विपरीत।' उनके ग्रध्यक्ष चुने जाने के बाद पूर्ववर्ती ग्रध्यक्ष मि० जार्ज थामस द्वारा उन्हें दी गई सलाह को उद्धृत किया गया जिन्होंने कहा था—'ग्रब से ग्राप जो मांगेंगे वह मिलेगा, ग्रत: मेरा परामर्श है कि ग्राप जो कुछ मांगें उसके सम्बन्ध में काफी सावधान रहें।'

संसदीय हास्य विनोद के ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। हास्य-विनोद एक ऐसा साधन है, जिससे अनेक तनाव दूर हो जाते हैं तथा उपयोगी वाद-विवाद के लिए तनाव रहित ग्रनिवार्य मन स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि संसद की सभा की कार्यवाही में ग्रौर ग्रधिक हाजिर-जवाबी ग्रौर हास्य-विनोद हो। ग्रधिकाधिक सदस्यों को संसद में शिष्ट हास्य-विनोद तथा उसकी उपयोगी भूमिका की सराहना करनी चाहिए।

□□□

18

लोक सभा में कविता और शेर-ओ-शायरी

कविता और शायरी हमारे भावों की ऐसी अभिव्यक्ति है, जो आदमी की जिन्दगी की सारी उदासीनता और उकताहट को बाहर निकाल कर उसे उल्लास और सहृदयता से भर देती है। उनमें यह ताकत है कि वे बेजान माहौल को जिन्दगी से भरपूर माहौल में तब्दील कर दें, नीरस वातावरण में सरसता ला दें। कभी-कभी जब लोक सभा में गंभीर कामकाज निबटाते-निबटाते सदस्यों को कुछ ऊब होने लगती है और कुछ जहनी तनाव सा पैदा हो जाता है तो शायरी के रूप में दिल की गहराइयों से उभरे माननीय सदस्यों के भाव रंगीनी और खुशबू भर देते हैं और सारा माहौल एक बार फिर खुशगवार हो जाता है। इससे मानव मन की गहराइयों पर नजर डालने और उसे अच्छी तरह समझने में मदद मिलती है। ये छोटे-छोटे शेर और कविता के पद कई सामाजिक बुराइयों पर से पर्दा उठा कर उन्हें बेनकाब कर जिन्दगी का बेहतर और स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करने में सहायक होते हैं। मैंने अक्सर यह अनुभव किया है कि सदन में वाद-विवाद (Debate) से किसी विषय पर चर्चा में इतना असर नहीं होता जितना शेर-ओ-शायरी या फिर कविता की कुछ पंक्तियों से। कवित्व की दो-चार लाइनें दिल और दिमाग को कभी-कभी इतना झकझोर देती हैं कि घंटों की बहस और वाद-विवाद भी उतना असर नहीं करते।

प्रस्तुत लेख में सातवीं और आठवीं लोक सभाओं में शेर-ओ-शायरी द्वारा अभिव्यक्त रसिक सदस्यों के भावों को शामिल करने का प्रयास किया गया है। यह देखने लायक है कि शेर-ओ-शायरी के माध्यम से माननीय सदस्यों की भावाभिव्यक्ति ने किस प्रकार (1) राष्ट्रपति के अभिभाषण के प्रति धन्यवाद प्रस्ताव, (2) स्थगन प्रस्ताव (3) बजट-अनुदान मांगों पर चर्चा, (4) संविधान संशोधन विधेयक और (5) अविलम्बनीय महत्त्व के विषयों जैसे शुष्क विषयों पर चर्चाओं को पुररंगीन बना दिया।

आठवीं लोक सभा में माननीय बालकवि बैरागी, श्री जी. एम. बनातवाला, श्री नरेश चन्द्र चतुर्वेदी, बेगम आबिदा अहमद, श्रीमती मोहसिना किदवई, श्री जैंद ए. असारी आदि जैसे अनेक सदस्य थे जो सदन में अक्सर अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए शेर, कविता या तुकबन्दियों का सटीक प्रयोग कर पूरे माहौल को सरस बना देते हैं। अध्यक्ष डा० बलराम जाखड स्वयं भी सदारत के साथ-साथ ऐसे मौकों पर पीछे नहीं रहते थे। संसद अक्सर भारी तनाव और दबाव की स्थिति में कार्य करती है। इसमें अनेक कठिन क्षण आते हैं। ऐसे में लोक सभा के अध्यक्ष को बड़ी कठिन परिस्थितियों में से गुजरना पड़ता है। कभी साहस से, कभी धैर्यपूर्वक और कभी विनोद करते हुए वे इन परिस्थितियों से जूझते हैं। अध्यक्ष को सक्षम और सूझ बूझ वाला होने के साथ विनोद प्रिय भी होना आवश्यक है।

बजट सत्र के दौरान 27 मार्च, 1989 को जैसे ही सदन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई कुछ विपक्षी सदस्यों ने व्यवस्था संबंधी प्रश्न (Pointed order) उठाया और सदन की कार्यवाही में व्यवधान डालने लगे। अध्यक्ष महोदय ने गंभीरतापूर्वक कहा— "मुझे आपका ऐसा करना बुरा लगता है, हम संसद के बहुमूल्य समय को किस प्रकार नष्ट कर रहे हैं" और ऐसे में उनका व्यथित हृदय आहत होकर निम्न रूप में फूट पड़ा—

यूं रायगां कीजिये न सजदे मेरे
मेरा क्या मैं उठ कर चला जाऊँगा
मगर देखना फिर न कहना पड़े
कि इक सर चाहिए संग दर के लिए

बजट जैसे आंकड़ों के खेल का शुष्क विषय हो और आंकड़ों की चट्टानों में गुलाब की खुशबू आ जाए, यह भी वर्ष 1988-89 के सामान्य बजट के समय देखने में आया। बालकवि बैरागी जी को श्री नारायणदत्त तिवारी द्वारा 29 फरवरी, 1988 को प्रस्तुत बजट की तकरीर का पहला भाग बहुत अच्छा लगा। किन्तु उन्हें डर था कि तिवारी जी अपनी तकरीर के दूसरे हिस्से में जिसके जरिये नये टैक्सों और उनमें रद्दोबदल का ऐलान होता है, नये टैक्स न लगा दे या उनमें बढ़ोत्तरी न कर दें। तिवारी जी को बीच में रोकते हुए बैरागी जी ने कह डाला—

"हम सफर हूं आपका मजनूम हूं मुफलिस भी हूं,
हाय कन्धों पर ही रखना जेब में मत डालना।"

वित्त मंत्री श्री नारायणदत्त तिवारी हाजिर जवाबी में पीछे नहीं थे उन्होंने श्री बैरागी जी द्वारा दर्शायी गई सम्भावना का दो टूक जवाब देते हुए कहा—

"ए दोस्त बता दूं क्या फर्क तुझमें मुझमें है,
तेरा दर्द दर्द तन्हा मेरा दर्द दर्द जमाना है।"

भूतपूर्व राष्ट्रपति और तत्कालीन गृह मन्त्री ज्ञानी जैल सिंह जी तो जब सदन में खड़े होते थे तो अक्सर वे शेर या कविता की दो चार पंक्तियाँ कह कर सब को तर्कहीन बना देते थे । बात मई, 1987 की है । विपक्षी सदस्यों ने मन्त्रि-परिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया और सत्ता पक्ष पर बड़े पैने प्रहार किये । ऐसे में ज्ञानी जी ने विपक्ष के माननीय सदस्यों को सचेत करते हुए कहा—

"तुम तीर मारो सीने पर बेशक,
मगर इतना ख्याल रखना ।
कि सीने में दिल है और
दिल में तुम्हारा मकान ।"

सदन एक ऐसा मंच है जहाँ विविध प्रकार के संवेदनशील मुद्दों पर चर्चा होती है । यह स्वाभाविक ही है कि इन मौकों पर सत्तापक्ष और विपक्ष के माननीय सदस्यों के बीच सदन में कभी कभी तीखा वाद-विवाद उठ खड़ा हो और वे एक दूसरे के लिए चुभने वाले और उत्तेजनात्मक शब्दों का प्रयोग करने लगें । ऐसी गरमा-गरमी के क्षणों में पक्ष और विपक्ष के सदस्यों द्वारा कहे गये कविता के दो बोल सारे माहौल की कटुता को समाप्त कर वातावरण में एक खुशनुमा गुलाबीपन बिखेर देते हैं । जैसे 27 फरवरी, 1982 को राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा चल रही थी जिसमें श्री जी एम बनातवाला ने सरकार पर अल्प संख्यकों की उपेक्षा का आरोप लगाते हुए कहा—

ख्वाब में भी न सोचा था हमने कभी यह
यह आलम भी चमन पर गुजर जाएगा,
बागबां छीन लेंगे लिबासे बहार,
और फूलों का चेहरा उतर जाएगा ।

28 फरवरी, 1984 को भी राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के दौरान देश में बिगड़ती कानून और व्यवस्था की आलोचना करते हुए माननीय सदस्य श्री रशीद मसूद ने कहा—

महसूस यह होता है यह दौरे तबाही है
शीशे की अदालत में पत्थर की गवाही है ।
दुनिया में कहीं इसकी तनशीर नहीं मिलती
कातिल ही मुहाफिज है कातिल ही सिपाही है ।

15 सितम्बर, 1981 को बिहार-शरीफ में हुए दगो मे भारी जान माल की हानि को लेकर मन्त्रि-परिषद् मे अविश्वास का प्रस्ताव लाया गया था तो तत्कालीन गृह मन्त्री ज्ञानी जैलसिंह ने कहा कि विपक्ष के सदस्य सरकार पर लगाये गये आरोपो को साबित करें अन्यथा ऐसे आधारहीन आरोप लगाने से कोई लाभ नही क्योंकि मुझे हर बात मे तो—

> नजर आते हैं इकरार मे इन्कार के पहलू
> महब्बत इस जमाने मे सियासत होती जाती है।

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के अनुदानो की माग, 1981-82 पर 25 मार्च, 1981 को चर्चा के दौरान श्री रशीद मसूद साहिब को शिकायत थी कि रेडियो और टेलीविजन मे देश को ज्यादा फायदा नहीं पहुच रहा है। उनका कहना था कि तत्कालीन सूचना और प्रसारण मन्त्री श्री वसत साठे जैसे काबिल मन्त्री के होते हुए भी कुछ नही हो रहा है। उन्होंने अपनी शिकायत करते हुए शेर पेश किया—

> तेरा जिक्र सुन के तडप गया,
> तेरा नाम सुनके मैं रो दिया
> मुझे एक निस्बते खास है,
> तेरे जिक्र से, तेरे नाम से।

रेल बजट 1982-83 (सामान्य) पर 3 मार्च, 1982 को चर्चा के दौरान श्रीमती मोहसिना किदवई को शिकायत थी कि मेरठ को एक भी नई गाड़ी नही दी गई है। वे चाहती थी कि जब गुल औरो को बटे हैं तो उनकी झोली खाली क्यो—

> गुल फेंके है, औरो की तरफ बल्कि समर भी
> ये खानाए बर अन्दाजे चमन कुछ तो इधर भी

श्रम मन्त्रालय की अनुदान मागें 1982-83 पर 8 अप्रैल, 1982 को चर्चा के दौरान जब विपक्ष के एक युवा ससद् सदस्य श्री हरिकेश बहादुर ने मन्त्रालय के कार्यकरण की कटु आलोचना की तो तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री भागवत झा आजाद ने कहा कि युवा होने पर मेरे मित्र कभी-कभी भटक जाते है, और मन्त्री महोदय ने उनको याद दिलाया—

> सावन मे मरुस्थल भी हरे हो जाते है
> काटे भी बहारो मे महक जाते हैं।
> इस नादान जवानी मे न भूलना तुम
> इस उम्र मे सभी बहक जाते हैं।

श्रमजीवी पत्रकार तथा अन्य समाचार पत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें) और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) विधेयक पर 16 सितम्बर, 1989 को बोलते हुए श्रीमती रामदुलारी सिन्हा ने पत्रकारों के लिए पालेकर एवार्ड को लागू करने की सरकार की दृढ़ता को इन पंक्तियों में व्यक्त किया—

> जमाने भर की मुसीबतें मुझे रुला नहीं सकतीं
> मैं क्या करूं मुझे आदत है मुस्कराने की

उन्होंने आगे कहा कि सरकार बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय में विश्वास रखती है और उन्होंने अपने इस विश्वास की अभिव्यक्ति को सुमित्रानन्दन पंत की इन पंक्तियों में पाया—

> जग पीड़ित रे अति सुख से,
> जग पीड़ित रे अति दुख से,
> मानव जग में बट जाए
> सुख-दुख में और दुख-सुख में।

12 अगस्त, 1985 को बालक नियोजन (संशोधन) विधेयक पर बोलते हुए श्रीमती प्रभावती गुप्ता ने कहा कि बाल श्रमिकों के शोषण की अनन्त कथा-अनन्त कहानी है। उनको भरपेट भोजन नहीं मिलता। उनके पास कपड़े नहीं हैं। वे भूखे नंगे हैं। उन्होंने उनकी हालत को जयशंकर प्रसाद के काव्य "आंसू" में एक पद को उद्धृत कर व्यक्त किया—

> अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना,
> सुख का सपना हो जाना भीगी पलकों का लगना।

बजट सत्र के दौरान जब राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान प्रधानमंत्री की टिप्पणी पर नाराज हो कर विपक्षी सदस्यों ने सदन त्याग दिया तो बाल कवि बैरागी ने उनके रूठने को इस प्रकार लिया—

> साकी से रूठ कर ये मयखाना छोड़ते हैं,
> लगती है जब तलब तो पैमाना तोड़ते हैं,
> तौबा भी कर रहे हैं फिर तोड़ भी रहे हैं,
> ये लड़खड़ाने वाले ऐसा ही दौड़ते हैं।

लेकिन सुलतान सलाउद्दीन ओवैसी को दस्तूर-ए-जबांबंदी पर शिकायत थी—

> यह दस्तूर-ए-जबांबंदी है कैसी तेरी महफिल में,
> यहां तो बात करने को तरसती है जबां मेरी।